आँचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत)
शोध प्रबन्ध

निर्देशक
डा० माताबदल जयसवाल
(भूतपूर्व प्रो० हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

प्रस्तुतकर्त्री
क्षमा टंडन

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

१९९३

विषयानुक्रम

भूमिका

मेरे शोध कार्य का विषय "आँचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति" अपने आप में एक मौलिक विषय है । बचपन में जब कभी पिता जी के साथ किसी सम्बन्धी के यहाँ जाती और सम्बन्धियों द्वारा अपने बच्चों को डॉ० बनाने की बात सुनती तो एक बार मन में चाह उठती कि क्या मुझे भी कभी डा० बनने का सौभाग्य प्राप्त हो पायेगा । एक दिन अपने पूज्य पिता जी से जिन्हें मैं "बाबू जी" पुकारती थी पूछाँ बाबू जी ! क्या मैं डॉ० नहीं बन सकती । उस वक्त मैं हाई स्कूल में पढ़ती थी । चूँकि मैं विज्ञान की छात्रा नहीं थी इसलिए बाबू जी ने कहा बेटा यदि तुम विज्ञान विषय लेकर पढ़ाई करती तो शायद ये सम्भव होता । मैं निराश हो गयी कि जीवन में मैं कभी डाक्टर नहीं कहलापाऊँगी । फिर एक दिन बाबू जी ने समझाया बेटा तुम एम० ए० करने के बाद शोध कार्य करना । इस कार्य को पूरा करने के पश्चात् तुम डॉ० क्षमा टंडन कहला सकोगी । बाबू जी की यही बात मैंने गाँठ बांध ली । बी० ए० करने के पश्चात् जब मैंने आगे पढ़ने की इच्छा व्यक्त की तो धनाभाव के कारण उन्होंने कहा "बेटा दोनों भइयों से पूछों वे नौकरी करते हैं यदि वे चाहें और पैसे से कुछ मदद करें तो तुम आगे पढ़ों, पर जब भाइयों ने कहा कि बी० ए० तो कर लिया अब ज्यादा पढ़ कर क्या करोगी । क्योंकि पढ़ाई में मेरी विशेष रूचि थी अतः मैं दुखी होकर रोने लगी । बाबू जी ने पूछाँ बेटा रोती क्यों हो मैंने रोते- रोते कहा बाबू जी मेरी पढ़ाई छुड़ाई जा रही है । अब मैं कभी भी डॉ० नहीं बन पाऊँगी । बाबू जी ने थोड़ी देर तक मेरा चेहरा देख कर मुस्कुराते रहे

फिर बोले जाओ तुम यूनीवर्सिटी से एम0 ए0 का फार्म ले आओ । अभी तो मैं हूँ बेटा, मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा । यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने मुझसे अकेले में कहा बेटा मैंने बैंक में तुम्हारे नाम से रु0 जमा कर दिये हैं । यदि मुझे कुछ हो जाय तो तुम अपनी पढ़ाई मत छोड़ना । एम0 ए0 करने के पश्चात् मैंने शोध कार्य करने का विचार मन में बनाया ।

डॉ0 बनने की मन की लालसा मन में ही रह जाती कि सौभाग्य वश पूज्य गुरूदेव डॉ0 माताबदल जयसवाल जी के सम्पर्क में आई । एम0 ए0 में मैंने उपन्यास सम्राट प्रेमचंद को स्पेशल पेपर के रूप में लिया था । चूँकि ग्रामीण अंचलों से मुझे विशेष लगाव था । अतः उन्होंने मेरा रूझान ग्रामीण अँचलों की ओर देखते हुए ही मेरा शोध विषय" आँचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति" रखा और कृपा पूर्वक उन्होंने मुझे शिष्यत्व प्रदान किया । मैंने अपना शोध कार्य सोत्साह प्रारम्भ किया , किन्तु दुर्भाग्यवश पारिवा परेशानियों के कारण मेरे अध्ययन कार्य में कुछ व्यवधान आ गया, फिर भी ईश्वर की कृपा से मैं अपना विश्वास एवं आशा को संजोए रही और अवसर पाकर अपने इस कार्य को मूर्त रूप दे सकी ।

मेरे इस शोध कार्य में इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दी संग्रहालय एवं पुस्तकालय, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ एवं भारती भवन पुस्तकालय ने पूरा सहयोग दिया, जिनके प्रति मैं अतीव आभारी

इन पुस्तकालयों के सहृदय कर्मचारियों के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित किये बिना नहीं रह सकती, जिन्होंने सदैव तत्परता से मेरी सहायता की है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रासंगिक रूप में तथा आंशिक रूप में जिन महानुभावों के ग्रन्थों से सहायता ली गई है उनकी शोधकर्त्री हृदय से आभारी है।

अपने पूज्य गुरुदेव का आभार प्रदर्शित करने की नहीं हृदय की गहराई में अनुभव करने की आवश्यकता है। अपनी प्रिय मित्र मीरा जी का शोध कर्त्री हृदय से आभार मानती है जिन्होंने मुझे दुविधा के क्षणों में अनमोल सुझावों से कृतार्थ किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने में सहयोग देने वाले अपने आदरणीय पति श्री त्रिलोकी नाथ जी एवं प्यारी बेटी स्वयम के प्रति भी आभार व्यक्त किये बिना नहीं रह सकती जिन्होंने पग पग पर मेरी सहायता की।

शोध कर्त्री अपने सभी पूज्य बड़ों एवं छोटों को जिन्होंने इस प्रबन्ध की पूर्णता में सहयोग दिया है हृदय से आभारी है। यदि सुधी जनों को मैं अपने इस शोध प्रबन्ध के द्वारा अल्प सन्तोष भी दे सकी तो अपना श्रम सफल समझूंगी।

(क्षमा टंडन)
सन् 1993

हिन्दी उपन्यासों का विकास आंचलिक उपन्यासों के विशेष संदर्भ में –

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों का प्रारम्भ सन् 1950 के पश्चात् से माना जाता है। सन् 1950 के बाद हिन्दी उपन्यासों में नया समारोह, नया विश्लेषण नए प्रश्नों के माध्यम से आया। हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों का आरम्भ अथवा उसका बीज रूप श्री वृन्दावन लाल वर्मा के " अमर बेल " उपन्यास में प्राप्त है। आंचलिक भाषा का स्वरूप "मृगनयनी" झांसी की रानी लक्ष्मी बाई इत्यादि में देखने को मिलता है। आंचलिक भाषा के प्रयोग के साथ-साथ बुन्देल खंड का आंचलिक जीवन, लोक गीत, अंध विश्वास आदि का स्वरूप उनमें निहित है।

आंचलिक जीवन का यह चित्रण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास की कोई नई और मौलिक उपलब्धियाँ नहीं है। प्रत्येक युग में लिखे गये अनेक उपन्यासों में युग जीवन के यथार्थ को प्रकट करने के विचार से आंचलिक जीवन के चित्रण का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया ही जाता है। विश्व की किसी भी भाषा में लिखा गया उपन्यास हो उसमें [illegible] के अनुरूप ही आंचलिक जीवन का दृश्य देखने को मिल जाता है।

जिसमें आंचलिक जीवन को आंशिक रूप से अभिव्यक्ति हुई है इस उपन्यास में मुंगेर जिले के मलयपुर गाँव का प्रभाव पूर्ण चित्र अंकित है । आंचलिक जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए तत्कालीन विभिन्न परिस्थितियों का संकेत किया है । प्रकृति की पार्श्व भूमि में वहाँ के जन जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए उपन्यासकार ने वहाँ गाये जाने वाले लोकगीतों का भी समायोजन किया है । साथ ही लोकभाषा के प्रयोग द्वारा इसे प्रभाव पूर्ण और स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न किया है । 1914 में लिखे गये मन्न द्विवेदी द्वारा लिखित उपन्यास "रामलाल" में ग्रामीण अंचल को स्वाभाविक झांकी प्रस्तुत कर सामाजिक यथार्थ को निरूपित किया गया है । आँचलिक जीवन के यथार्थ को उकेरने के लिए लेखक ने वहाँ के मेले, त्योहारों, पर्वों आदि का भी उल्लेख किया है। ग्रामीण अंचल की अपनी समस्यायें, आस्थायें, मान्यतायें, लोक विश्वास, अन्ध परम्परायें तथा जीवन में अपने सुख दुख होते है। इन सभी का चित्रण लेखक ने अपने उपन्यास में यथा सम्भव किया है । आँचलिकता की इस अभिव्यक्ति को विवेचित करते हुए डॉ० बदरी प्रसाद ने अपनी पुस्तक "हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परम्परा" में "रामलाल" को हिन्दी का पहला और श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास माना है । यद्यपि इस उपन्यास में आंचलिकता को प्रकट करने वाले तत्व तो हैं पर इसे आंशिक रूप में ही आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी है ।

"हिन्दी उपन्यासों में आंचलिकता का उदय एक विशेष आन्दोलन द्वारा हुआ यह आन्दोलन विश्व साहित्य में गुंफित है । पश्चिम में यूरोपिय उपन्यासकार मेरिया-एजवर्थ [1767 - 1849] सरवाल्टर स्कॉट [1771 से 1832] और थामस हार्डी [1840 - 1928] के उपन्यासों के साथ अमेरिका के उपन्यास की परम्परागत रूढ़ि से मुक्त होने के लिए भी अमरीकी उपन्यासकारों ने भी अपने आँचलिक जीवन का सम्बल अपनाया । अमरीकी उपन्यासकार मार्कट्वेन [1835 - 1910] अरनेष्ट हेमिंग्वे [1898] में उपन्यास की आँचलिकता कोजिसस्तर तक उभारा वहाँ तक निःसंदेह उसमें एक विशिष्टता समाहित है ।"[1]

भारत में उपन्यासों में आचलिकता का प्रवेश प्रगति की एक कड़ी है । " विकास की विभिन्न सीढ़िया पार करता हुआ मानव जब परिवेश से शनैः - शनैः दूर होने लगा तब उसका जीवन भी आँचलिकता से रिक्त होने लगा । आगे चलकर तो वैज्ञानिक प्रगति की नींव पर बसे शहरों की घुटन एवं व्यस्तता में उसे पूर्व का उन्मुक्त एवं प्राकृतिक जीवन याद आने लगा और प्रकृति की ओर पुनः लौटने का आन्दोलन ही चल पड़ा । यह आन्दोलन रोमांटिक मूवमेंट से संबद्ध है। इस रोमांटिक आन्दोलन को ही आंचलिक उपन्यासों का प्रेरणा स्रोत एवं जीवन स्रोत माना जाता है । `डैविडस आफ मैन" के मतानुसार भी साहित्य में प्रादेशिकता संसार व्यापी रोमांटिक आन्दोलन की ही अभिव्यक्ति है । इस कारण

1- हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि- आदर्श सक्सेना पृ0सं0 4 ।

उन सब राष्ट्रों के साहित्य में जो इस आन्दोलन से प्रभावित थे इसके दर्शन हो जाते है "।[1]

यूरोपिय एवं हिन्दी आँचलिक उपन्यासों के जन्म की परिस्थितियों में काफी साम्य है दोनो का जन्म कृत्रिमता और शहरी बासीपन से उबकर हुआ है।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों के विषय में पंडित नन्द दुलारे बाजपेयी जी ने भी लगभग ठीक ऐसा ही विचार व्यक्त किया है।

" जब सामाजिक उपन्यास में नागरिक जीवन को चित्रित करते-करते उपन्यासकार थक गये और जब पाठकों का समुदाय उन घिसे पिटे और अंततः रूढ़ नागरिक चित्रणों से ऊब उठा तब नये अज्ञात जीवन और दूरवर्ती प्रदेशों के अपरिचित क्षेत्रों से सम्बन्धित उपन्यास लिखे गये। इसलिए ये उपन्यास विशेष सामान्य नागरिक जीवन या नागरिक जीवन की प्रति छवि नहीं बनना चाहते "।[2]

आंचलिक जीवन मुख्यतः ग्रामीण ही होता है और आँचलिक उपन्यास इस स्थानिक यथार्थ की सफलता एवं समग्रता के साथ अनुभव की प्रामाणिकता को लेकर प्रस्तुत हुए हैं।

1- हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि-आदर्श सक्सेना पृ0 सं0 62।

2- प्रकाश बाजपेयी-"हिन्दी के आँचलिक उपन्यास" पृ0 सं0 2। नन्द दुलारे बाजपेयी द्वारा लिखित भूमिका।

नन्द दुलारे बाजपेयी जी का मत बड़ा ही अकाट्य है तथा उससे पूर्ण सहमति है कि " नागरिक जीवन के चित्र तो क्रमागत सामाजिक उपन्यासों में रहते ही हैं, यदि आंचलिक उपन्यासों में भी वही वस्तु रखी जायगी तो इस नई उपन्यास विधा की विशेषता क्या होगी ? प्रश्न विधा का नहीं परम्परा का भी है। आँचलिक उपन्यास वस्तुतः सामाजिक उपन्यासों की प्रतिक्रिया में बल्कि विद्रोह में निर्मित हुए है "।[1] रामदरश मिश्र ने आँचलिक उपन्यासों के विषय में लिखा है -"अंचल के जटिल जीवन चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएं खींचता है, कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो चार बिन्दु अपनी तूलिका से झाड़ देता है। अनेक पर्व उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने नये जीवन मूल्यों जातियों आदि से लिपटा हुआ अंचल का जीवन अभिव्यक्ति के लिए नये माध्यम की अपेक्षा करता है।"[2]

हिन्दी में आँचलिकता की चर्चा फणीश्वर नाथ रेणु की कृति "मैला आँचल" के प्रकाशन के साथ प्रारम्भ हुई।

" यह भी आश्चर्य कीबात है कि आँचलिकता शब्द स्वयं फणीश्वर नाथ "रेणु" का गढ़ा हुआ शब्द है। जिसका प्रयोग हिन्दी में "रेणु" ने ही सर्वप्रथम "मैला आंचल "की भूमिका एवं नामकरण में ही किया है " यह है मैला-आंचल एक आँचलिक उपन्यास" ।[3] डॉ0 शम्भु नाम सिंह,

---

1- प्रकाश बाजपेयी-"हिन्दी के आंचलिक उपन्यास"पृ0सं0 2।
2- स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना- ज्ञान चन्द्र गुप्त पृ0 33।
3- फणीश्वर नाथ"रेणु" मैला आँचल भूमिका भाग।

प्रकाश चन्द्र गुप्त, नलिन विलोचन शर्मा आदि ने ऐसे कथा कृतियों की एक लम्बी चौड़ी सूची भी तैयार कर दी जिसमें बाबू शिवपूजन सहाय के उपन्यास "देहाती दुनियाँ [1926] से लेकर "रेणु" की परती:परिकथा" [1950] तक को गिन लिया गया। "रेणु" जी के पूर्व प्रकाशित उपन्यासों में लगभग आधे दर्जन उपन्यासों पर आँचलिकता की जो विशेषताएं आज आरोपित की जा रही हैं उसे इस आँचलिक शब्द के प्रयोग के पूर्व क्यों नहीं आँचलिक कहा गया इस विषय में मुझे [डा० बेचन को] फणीश्वर नाथ रेणु की एक मुलाकात की बात याद आती है। "उन्होंने मेरा ध्यान आँचलिक शब्द की ओर आकृष्ट करते हुए बताया था कि उनके द्वारा आँचलिक शब्द "बाय दी वे" प्रयुक्त हुआ है। इसके पीछे लेखक का कोई पूर्वाग्रह नहीं है और न किसी प्रकार की रूढ़िवादिता। .... हिन्दी के आलोचक उसे ले उड़े। और हिन्दी के कथाकारों का क्या कहना सभी आँचलिक कथाकार बनना चाह रहे हैं। 'मैला-आँचल' के बाद लगभग दर्जनों उपन्यास आँचलिकता का लेबल लगाकर प्रकाशित हो गये। ..... रेणु की सफलता का कारण आँचलिकता नहीं है बल्कि रेणु की शक्तिशाली शैली ही आँचलिकता की सफलता है।"[1]

"रेणु" जी के मैला आँचल तथा परती-परिकथा कलंक मुक्ति आदि उपन्यास आँचलिक उपन्यास हैं। नागार्जुन जी विशुद्ध आँचलिक उपन्यासकारों की कोटि में आते हैं। बलचनमा," "बाबा बटेसर नाथ," 'वरुण के बेटे,'

1- डॉ० बेचन- आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास"पृ०सं०202-203।

आदि उनके आँचलिक उपन्यास हैं । अन्य सभी आँचलिक उपन्यासों का वर्णन आगे के अध्याय में विस्तार से किया गया है ।

आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ -

आँचलिक उपन्यासों की विशेषताओं का चित्रण करने से पूर्व आँचलिक शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। आँचलिक शब्द की व्याख्या विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी है। जिनका अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अँचल किसी क्षेत्र विशेष को कहा जाता है, ये क्षेत्र विशेष अधिकतर गाँव ही हुआ करते हैं इन्हीं क्षेत्र विशेष की जनता के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, आचार-विचार के आधार पर जो उपन्यास लेखकों द्वारा लिखे जाते हैं उन्हीं उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास कहा जाता है। अधिकांश उपन्यासकारों ने गाँवों को ही अपने कथानक का विषय बनाया है। नागरिक जीवन को लेकर भी कुछ आँचलिक उपन्यासों की रचना हुई है किन्तु नागरिक जीवन परख आँचलिक उपन्यासों को ग्रामीण आंचलिक उपन्यासों की तुलना में उतनी ख्याति नहीं प्राप्त हो पायी। सच तो यह है कि अँचल एक गाँव हो सकता है, एक महानगर भी या फिर शहर का एक मोहल्ला भी [जैसे को अमृत लाल नागर का "बूंद और समुद्र" उपन्यास जो लखनऊ के चौक मुहल्ले पर आधारित है] हो सकता है। और इन सब से दूर सघन बनों की बस्ती भी हो सकती है।

आँचलिक शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम फणीश्वर नाथ "रेणु" ने अपने "मैला आँचल" उपन्यास की भूमिका में किया है - यह है "मैला आँचल एक आँचलिक उपन्यास।"[1]

1- फणीश्वर नाथ रेणु - "मैला -आँचल" भूमिका भाग ।

हिन्दी में आँचलिक शब्द अपनी सार्थकता सूचित करता है । यह शब्द उन उपन्यासों के लिए प्रयुक्त है जिनमें आँचलिक जीवन का चित्रण यथा-सम्भव पूर्ण समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया हो या यों कहें कि सीमित देश असाधारण चित्रण यथार्थवादी विशेषताओं से युक्त रचना ही आँचलिक कृति है ।

हिन्दी कथा साहित्य में आँचलिक उपन्यास वह विशिष्ट धारा है जिसकी पिछले कुछ वर्षों में बहुत उन्नति हुई ।

डॉ० रामदरश मिश्र ने आँचलिक उपन्यासों के विषय में लिखा है "आँचलिक उपन्यासों का प्रयोग अँचल की सम्पूर्णता और समग्रता से कथा का निरूपण करना है । उपन्यासकार की दृष्टि एक मात्र अँचल की सम्पूर्ण घटनाओं के सूक्ष्म निरीक्षण पर ही केन्द्रित रहती है । इस दृष्टि से अँचल को ही उपन्यास का नायक कहा जा सकता है" ।[1]

राधेश्याम कौशिक के शब्दों में - "वास्तव में आँचलिक उपन्यास की पिकनिकी दृष्टि से किसी स्थान की बाहरी रंगीनी, सहलहाट बटोरने वाली चेष्टा और भौगोलिक दृष्टि से भूमि का सर्वेक्षण करने वाले प्रयत्नों दोनों से अलग देखना होगा । अँचल को देखना यानि कि उसके समग्र जीवन को देखना । जीवन बाहर भी है भीतर भी है । दोनों एक दूसरे से सम्पृक्त है । मनो-वैज्ञानिक कथाकार जीवन को भीतर के सम्पूर्ण सामंजस्य में देखना चाहता है ।

1- डॉ० राम दरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ०सं० 188 ।

देहाती अँचल, वन्य अंचल , पहाड़ी अँचल आदि में जीवन और प्रकृति का गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता हैं "[1]।

डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने आँचलिक उपन्यासों की व्याख्या इस प्रकार की है । " उपन्यासकार किसी अँचल , गाँव, कस्बे, या मोहल्ले को परिवेश बनाकर वहाँ के लोगों का आचार-विचार, जीवनपद्धति , संस्कृति, लोकभाषा, धर्म एवं दृष्टिकोण का सूक्ष्म वर्णन करता है, तो वह आँचलिक उपन्यास ही है ।[2] डॉ० रणवीर शंग्रा के शब्दों में " आँचलिक उपन्यास जिस प्रदेश जाति या अंचल को छूता है उसकी भौगोलिक स्थिति और वहाँ के लोगों के धर्म, संस्कृति , रीतिरिवाज, प्रकृति, विकृति का ऐसा मूर्त व सांगोपांग चित्रण करता है कि उस क्षेत्र या अँचल का जनजीवन अपनी सम्पूर्ण विविधता में साकार हो उठता है । यही नहीं वह अपनी विविधता में अनन्य भी बन जाता है "[3]।

राधेश्याम कौशिक के अनुसार -

" जिन उपन्यासों में किसी विशिष्ट प्रदेश के जन जीवन का समग्र विवरणात्मक चित्रण हो उन्हें आँचलिक उपन्यास कहा जाता है " ।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि आँचलिक उपन्यास उन उपन्यासों को कहा जाता है जिनमें किसी अँचल विशेष के जन-जीवन का समग्र चित्रण पूर्ण यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

1- डॉ० राम दरश मिश्र-"हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ०सं० 189 ।
2- डॉ० राधेश्याम कौशिक अधीर- हिन्दी के आँचलिक उपन्यास पृ०सं० 13
3- समसामयिक हिन्दी साहित्य - पृ० सं० 205 ।

1- आँचलिक उपन्यासों मे लोक संस्कृति का चित्रण महत्वपूर्ण स्थान रखता है और यह लोक संस्कृति आँचलिक उपन्यासों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसी लोकसांस्कृतिक तत्व ने आँचलिक उपन्यासों को आंचलिकता का स्वरूप दिया है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत पात्रों के रहन-सहन, खान-पान वेशभूषा, रीति रिवाज, धार्मिक स्थिति, लोकभाषा इत्यादि आते हैं, जिनका चित्रण आंचलिक उपन्यासों में विशेष रूप से पाया जाता है। आँचलिक उपन्यासकार लोकजीवन को जितनी निकटता एवं व्यापकता से देखता और उपन्यासों में अवतरित करता है उतना अन्य उपन्यासकार नहीं करता। किसी भी अँचल के लोगों के धार्मिक विश्वास दूसरे स्थान के लोगों के विश्वासों से किसी न किसी सीमा तक अलग होते हैं। उनकी प्रथाएं भी धार्मिक विश्वासों की भाँति आँचलिक विशेषताओं से युक्त होती हैं। इन विश्वासों और प्रथाओं का पात्रों के चरित्र विकास में महत्वपूर्ण योग होता है जो पात्रों के वार्तालाप तथा उपन्यासकार के कथन दोनों में देखा जाता है। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग भी आँचलिक उपन्यासों में यत्र तंत्र देखने को मिलता है। ध्वनि रूपकों का एक उदाहरण निम्नलिखित है "धिनागो धिन्ना, तिरनागो तिन्ना। धिनक धिन्ना तिरकट दम्था। आहे चलहू सखि सुख धाम चलहू... धिन्ना तिन्ना नधि धिन्ना।"[1]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -परती: परिकथा पृ०सं० 105।

2- किसी विशेष अंचल का चित्रण आँचलिक उपन्यासों की विशेषता है । प्रकृति चित्रण एवं परिवेश चित्रण आँचलिक शैली की विशेषता है । डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी ने लिखा है -" अंचल विशेष के प्रति प्रबल मोह ही लेखक को आँचलिकता की ओर प्रेरित करता है । उसके वर्णनों में उसकी चित्तवृत्तियाँ केन्द्रित सी हो जाती हैं, उसकी एक-एक बारीकी उसके कणकण से उसका प्रत्यक्ष और आत्मीय सम्बन्ध होता है। फलतः उसकी रचनाओं में अंचल सौन्दर्य दीप्त होकर पाठक को अंगीभूत कर लेता है"[1] । आँचलिक उपन्यासकार क्षेत्र विशेष के जनजीवन का फोटोग्राफिक चित्रण करता है यही विशेषता उसे सामान्य उपन्यासों से पृथक करती है । इसी अंचल विशेष की प्रधानता के कारण आंचलिक उपन्यासों का नामकरण हुआ है ।

3- आँचलिक उपन्यासों में भौगोलिक स्थिति का चित्रांकन उसकी अपनी विशेषता है। इन उपन्यासों के लिए एक ऐसे क्षेत्र को चुना जाता है, जिसकी भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं असामान्य प्रकार की होती हैं। ये विशेषताएँ अधिकतर पिछड़े हुए एवं अज्ञात क्षेत्रों एवं जातियों में परिलक्षित होती है । अतः आँचलिक उपन्यास पिछड़े हुए और अनजान अँचलों व समाजों से सम्बन्ध रखता है। समाज अपनी भौगोलिक परिस्थितियों की उपज होता है, अतः अँचल के भूगोल का वहाँ के निवासियों के रहन-सहन, खानपान, रीति-रिवाज आदि पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, यह प्रभाव उस समाज पर पड़ता है जो अपेक्षाकृत असभ्य होता है । भौगोलिक स्थिति के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण

1- महेन्द्र चतुर्वेदी "हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण" पृ०सं० 194 ।

और अँचल की जलवायु के प्रभाव का दिग्दर्शन कराया जाता है । अतिवृष्टि और अनावृष्टि के कारण होने वाले विनाश का भी आँचलिक उपन्यासों में बड़ी कुशलता के साथ वर्णन किया जाता है। आँचलिक उपन्यासों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्रकृति के नाना रूपों को देखकर उपन्यासकार तदनुकूल अपने मनोभावों को अपनी लोक भाषा के माध्यम से लोकगीत, मुहावरों, कहावतों रूप में प्रकट करते हुए उसी में लीन हो जाते हैं । भौगोलिक स्थिति का अंकन और प्रकृति के बिखरे हुए चित्र आँचलिक उपन्यासों के जीते जागते पात्र हो जाते हैं । सन्तुलित रूप से भौगोलिक स्थिति के चित्रण से उपन्यास की रोचकता तो बढ़ती है साथ ही प्रकृति चित्रण पात्रों का धरती से लगाव व्यक्त करता है। डॉ० विवेकीराय के शब्दों में - " इसी भौगोलिक इकाईयों में प्रसारित विविध वर्णी ग्राम छवि जो इस विशाल भारत देश की मौलिक विशेषता है, नये कथा साहित्य में नवीन आभा के साथ उजागर हुई "[1]।

डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव के शब्दों में -" आँचलिक रंगों के आधिक्य से एक नूतन प्रवृत्ति का उभार इस रूप में लक्षित किया है कि अपनी विशिष्ट विशिष्ट भौगोलिक संस्कृति और जीवन पद्धतियों को लेकर कोई भूभाग अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ एक अलग इकाई के रूप में प्रत्यक्ष हो उठता है "[2] ।

1- विवेकी राय "स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन "पृ० सं० 104 ।

2- शिवनारायण श्रीवास्तव -"हिन्दी उपन्यास" पृ०सं० 315 ।

4- यथार्थवादी दृष्टिकोण आँचलिक उपन्यासों की विशेषता है। इस यथार्थ का आभास इस कारण होता है कि अंचल विशेष की स्थिति एवं समस्याओं का प्रभावशाली ढंग से निरूपण किया जाता है। ये स्थिति एवं समस्याएं वहाँ की जानी पहचानी परन्तु अपने आप में विशिष्ट होती हैं। जो उपन्यासकार मानव जीवन एवं समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है और अपनी रचना के विषय को काल्पनिकता से दूर रखकर वास्तविक संसार से

लेता है उसे ही यथार्थवादी लेखक हम कह सकते हैं। किसी भी विशेष अंचल या क्षेत्र की जनता का रहन-सहन, भाषा बोली, रीतिरिवाज, वेशभूषा तीज त्योहार अंध- विश्वास, टोना-टोटका आदि का सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन करना ही वास्तव में यथार्थवादी दृष्टिकोण है।

"रांगेयराघव के उपन्यास - " कब तक पुकारू" की सुख राम एवं प्यारी की कथा का आधार यह सामाजिक यथार्थ है कि करनट जरायमपेशा जाति होती है, जिसमें मर्द औरतों को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धनोपार्जन करते हैं। उनमें सैक्स के आधार पर कोई बुराई नहीं मानी जाती। ये खानाबदोश होते हैं, और प्रमुखतः सम्पन्नवर्ग द्वारा शोषित होते हैं।

मैला आँचल में किसी नायक का निर्माण नहीं हुआ है बल्कि मेरीगंज वास्तव में जैसा है वैसा ही पाठकों के सम्मुख लेखक ने चित्रित कर दिया है। उसका नायक व्यक्ति न होकर मेरीगंज गाँव ही है।

5- आँचलिक उपन्यासों की भाषा विशिष्टता लिए हुए होती है

आँचलिक उपन्यास विशिष्ट और अपेक्षाकृत अल्पज्ञात जीवन की अभिव्यक्ति करता है । अतः यह स्वभाविक ही है कि उसकी भाषा विशिष्ट हो । यह विशिष्टता भाषा के अल्पज्ञात रूप से भी प्राप्त होती है । इन उपन्यासों में लोकभाषा का प्रयोग होता है । यह प्रयोग पात्रों के संवादों और उपन्यासकार के कथन दोनो में देखा जाता है । विशिष्ट भाषा का प्रयोग उपन्यास की संस्कृति का परिचायक है । विशिष्ट अँचल के अनुकूल ही उपन्यासकार स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग करता है । स्थानीय रंगीनियों कोबिखेरने के लिए आँचलिक उपन्यासकार अपनी रचना में जनपदीय भाषा की लालिमा एवं माधुर्य का प्रयोग करता है,किन्तु ये जनपदीय भाषाएं सामान्य भाषाओं की तरह खुलकर अपने विचार नहीं प्रकट कर सकती । इसलियथार्थवादी भाषा का संचार तो होता है पर कहीं-कहीं कथा के प्रवाह, सम्प्रेषण शीलता का तादात्म्य-रूप अथवा तारतम्य क्षय भी होता है, वस्तुतः यहाँ उपन्यासकार नहीं अँचल बोलता है । लेखक का उद्देश्य ही अँचल को उसकी सम्पूर्णता में उद्घाटित करना होता है और आँचलिक उपन्यासकार यह अनुभव करता है कि बिना भाषा में उतनी गहराईलाये आँचलिकता की सफल अभिव्यंजना नहीं हो सकती ।

"आँचलिक उपन्यास आंचलिक जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करते हुए उनमें निहित संस्कृति को प्रत्यक्ष करता है। उपन्यासकार कथा में वहाँ के यथार्थजीवन का पुट देने के लिए आँचलिक भाषा, उच्चारण तथा वहाँ के निवासियों के वार्तालाप की विशिष्टता की अवतारणा करता है । उसका उद्देश्य सामान्य पाठक समाज के समक्ष अँचल को प्रस्तुत करना होता है ।

अतः पाठकों की सुविधा को दृष्टि में रखते हुए लेखक एक सीमा तक ही आँचलिक भाषा का प्रयोग कर सकता है"।[1]

6- ग्रामीण जनजीवन का चित्रण आँचलिक उपन्यासों की विशेषता है यों तो शहरी जीवन को लेकर भी आँचलिक उपन्यास लिखे गये हैं पर ऐसे उपन्यासों की संख्या अल्प है। ग्राम हमारी प्राचीन संस्कृति के प्रतीक है। प्राचीन संस्कृति के सभी उपकरण हमें शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन में अधिक दिखाई देते हैं। प्राचीन परम्पराओं के प्रति विश्वास शहरों की अपेक्षा गाँवों में अधिक दिखाई देता है, । उदाहरण के लिए पर्व त्यौहार और मेले आदि के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीत, लोकनृत्य, कहावतें, मुहावरें आदि गाँवों के जीवन में आज भी दिखाई देते हैं। आँचलिक उपन्यासों में स्थान-स्थान पर लोकतत्व का भी प्रदर्शन होता है। यह ग्रामीण जन जीवन की अपनी विशेषता है।

इन उपन्यासों में ग्राम्य जीवन का आडम्बर से रहित यथार्थ रूप दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि आँचलिक उपन्यासों का वर्णविषय अधिकांशतः ग्राम जीवन ही है जिसके अन्तर्गत किसी ग्राम क्षेत्र के जाति विशेष के रहन सहन, भाषा बोली, आचार-विचार आदि का वास्तविक रूप चित्रित किया जाता है। आँचलिक उपन्यासकार प्रायः उपेक्षित ग्रामीण जनजीवन के वास्तविक स्वरूप का निरूपण करता है।

7- गाँवों में गरीब जनता पूँजीपति वर्ग द्वारा शोषित होती है। जैसा कि कहा जाता है कि उपन्यास समाज का प्रतिबिम्ब होता है।

1- शशि भूषण सिंहल " हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ पृ०सं० 122 ।

उपन्यासकार समाज में रहता है, और उस समाज का यथार्थ चित्रण करता है। अँचल के लोगों की आर्थिक स्थिति का चित्रण भी आंचलिक उपन्यासों में परिलक्षित होता है। गरीब जनता और कृषक वर्ग इन पूँजीपतियों के शोषण का शिकार रहते है। गाँवो में पूंजीपतियों का एकाधिकार रहता है। "मैला-आँचल" तथा "परती-परिकथा" इन उपन्यासों में पूंजीवादी प्रथा बहुत ही स्पष्ट रूप में सामने आयी है। आँचलिक उपन्यासकार अपने उपन्यासों में ग्रामीण जनजीवन के चित्रण के साथ - साथ यह भी दिखा देते है, कि वहाँ की जनता खेती बाड़ी, लघु उद्योग, मछली पकड़ना इत्यादि के माध्यम् से किस प्रकार से जीवन यापन कर रही है उसकी आर्थिक स्थिति कैसी है, साथ ही वह उसे किस प्रकार नये प्रयोगों के माध्यम से उन्हें परिवर्तित करके उन्नतिशील बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

8- आँचलिक उपन्यासों में नवचेतना या जनजागरण का बोध भी पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार परिलक्षित करता है, ये नवचेतना आँचलिक उपन्यासों की महत्वपूर्ण विशेषता है। जिसके माध्यम से ग्रामीण अनपढ़ जनता में स्वयं जागृत होने की भावना उत्पन्न होती है। आँचलिक उपन्यासों में लोक तंत्रात्मक विचार धारा, गाँधी-वादी विचार- धारा, क्रांतिकारी विचार धारा का यथास्थान चित्रण देखने को मिलता है।" आँचलिक उपन्यासों की आत्मा लोकतंत्रात्मक होती है और इस दृष्टि से वह वर्तमान युग के अत्यधिक अनुकूल है। उसके मूल में यह विश्वास निहित होता है कि साधारण

स्त्री पुरुष भी साहित्य निरूपण के योग्य है । वस्तुतः वर्तमान साहित्य की सम्पूर्ण गति इसी दिशा में है असाधारण से साधारण की ओर "[1]।

आंचलिक पात्र अंचलों को जानबूझ कर या अनजाने अपनी प्रगतिशीलता से प्रभावित करते हैं । इस प्रकार के पात्रों में मैला आँचल के प्रशांत, ममता, परती-परिकथा में जित्तन, इरावती आते हैं । प्रगतिशील पात्र चाहें आँचलिक हों या अन आँचलिक समाज में नई चेतना का प्रवाह करते हैं तथा उसके पुनरनिर्माण में प्रयत्नशील होते हैं । इन प्रगतिशील पात्रों के प्रभाव से गाँव बदलने लगा है । देवेन्द्रसत्यार्थी के "ब्रह्म पुत्र " उपन्यास में तो देवकांत दिलांग मुख तथा गांङ्गुली में ऐसी नवजागृति की लहर दौड़ा देता है कि सारे समाज को वैचारिक काया-पलट हो जाती है । क्रांति की आग में सारा अँचल भभक उठता है । सामाजिक-पुनरुद्धार का प्रारम्भ होता है । अतुल, आरती, रखालकाकाआदि पात्र श्रमदान से ब्रह्मपुत्र की बाढ़ के विरुद्ध अभियान चलाते हैं । "बलचनमा" उपन्यास में किसान वर्ग जागृत हो उठता है, साथ ही अपने अधिकार के लिए जमींदारों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन विशिष्टताओं द्वारा आँचलिक उपन्यासों के पात्र अंचलों को प्रभावित करते हैं परिणामतः अंचलों की काया पलट होने लगती है ।

1- डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी -" हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण -पृ० सं० 195 ।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकार और उनके उपन्यास

1-फणीश्वर नाथ रेणु एवं उनके आंचलिक उपन्यास -

आंचलिक उपन्यासों के इतिहास में उत्कर्ष का काल फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यासों से प्रारम्भ होता है । हिन्दी के आंचलिक उपन्यास जगत में रेणु जी नई पीढ़ी के कथाकारों में सर्वाधिक लोक प्रिय हैं । हिन्दी के किसी भी उपन्यास कार को अपनी कृति पर ऐसी लोक प्रियता नहीं मिली है जितनी की रेणु जी के " मैला आँचल " को मिली है । इस उपन्यास की आंचलिकता के सम्बन्ध में स्वयं रेणु जी ने मैला आंचल को एक आंचलिक उपन्यास कहना पसंद किया है , लेखक का अपना कथन है " यह है " मैला आंचल " एक आंचलिक उपन्यास कथांचल है पूर्णिया । पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है। मैंने इसके हिस्से के एक ही गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस किताब का कथा क्षेत्र बनाया है"[1]।

रेणु जी के विषय मे श्री विवेन्द्र नारायण सिंह का मत है -

" एक श्रेष्ठ उपन्यास कार के सभी गुण उनमें हैं वे व्यंग्य के धनी हैं उनकी कल्पना शक्ति विलक्षण है । मिट्टी और मनुष्य से उन्हें गहरी मोहब्बत है । अपने पात्रों को वे वास्तविक दुनियां में स्थापित भी कर पाते हैं अथवा यों कहिये कि वास्तविक दुनियाँ से अपने पात्रों को सीधा उठा लेते हैं और सबसे बढ़कर वे कि अस्थानिकता में रस लेने की कला से वाकिफ हैं" ।

1- मैला आंचल भूमिका भाग

1- मैला आँचल

आंचलिक उपन्यासों की श्रृंखला में "मैला आंचल " फणीश्वर नाथ "रेणु" का प्रथम आंचलिक उपन्यास है जो 1954 में राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ मैला आंचल बिहार के पूर्णियां जिले के एक अंचल से सम्बन्धित उपन्यास है। लेखक का मुख्य उद्देश्य एक अंचल के समग्र जीवन को चित्रित करना है। अतः उस अंचल की तत्कालिक राजनीतिक एवं सामाजिक दशा, कृषक, पुलिस, भूमि सम्बन्धी समस्याओं, शासक इत्यादि सभी समस्याओं पर लेखक प्रकाश डालता है। यह उपन्यास आज के युग की जनवादी भावना और नये औपन्यासिक मूल्यों के लिए प्रसिद्ध है। इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र खेतों में काम करने वाले किसान मठों में गुजारा करने वाले अनपढ़ गवांर सीधे साधे जमींदार के हथकंडो से अपरिचित हैं। मैला आंचल के चरित्रों को कोसी अंचल के अन्तर्गत रखकर चित्रित किया जाना चाहिए – वहाँ की धरती का असर और उसमें हो रहे निर्माण का प्रभाव लेकर ये चरित्र उभरे हैं।

" जान पड़ता है कि कोसी अंचल की कुछ वर्षों की सारी जीवन गति ही उपन्यास में उठाकर रख दी गई है स्वभावतः यह उपन्यास वर्णात्मक और दीर्घ सूत्री न होकर असंख्य चल चित्रों की समाहित योजना पर आश्रित है। विशेषता यह है कि ये सम्पूर्ण चल चित्र एक अखंड और अव्याहत पूर्णता का निर्माण करते हैं और इनमें कहीं भी सन्धियाँ या रिक्त स्थल नहीं रह पाए हैं। इसे पढ़कर समाप्त करने पर हमारे समक्ष कोसी अंचल की सम्पूर्ण प्राकृतिक और मानवीय छायावली ही नहीं झलक उठती बल्कि उस छायावली के साथ कलाकार की अनुभूतिशीलता और अदम्य आस्था और अर्न्तदृष्टि की झाकें लगती है।

इस प्रकार की रचनात्मक दृष्टि और मौलिकता से समन्वित कोई चरित्र हिन्दी में कदाचित वर्षों से चित्रित नहीं हुए" ।[1]

2- परती परिकथा

फणीश्वर नाथ-रेणु" लिखित 'परती परिकथा' एक मौलिक एवं विशिष्ट प्रकार का उपन्यास है इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1957 में राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 8 नेता जी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली से हुआ है । इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बिहार प्रदेश का ही परानपुर गाँव है । ग्रामीण वर्गों का अनेक पहलुओं से अंकन इस उपन्यास में हुआ है । रेणु जी ने गाँव के विकास शील स्वरूप का अंकन इस उपन्यास मे किया है । उन्होंने जन जीवन के यथार्थ मे से प्रगति की भविष्योन्मुखता का चित्रण किया है । एक अंचल विशेष के विभिन्न बिखराव को "रेणु" जी ने बड़ी कुशलता के साथ इस उपन्यास में समेटा है ।

'परती परिकथा' के शिवेन्द्र मिश्र सामन्ती युग के प्रतीक हैं । शिवेन्द्र का पुत्र जितेन्द्र स्पष्ट देखता है कि सामन्ती परम्परा टूट रही है। वह नये आलोक को पहचान कर परिस्थिति से समझौता कर लेता है । "ताजमनी" अद्वितीय सुन्दरी है, आधुनिक नारद के रूप में गरूड़धुज झा है मुंशी जलधारी लाल " कलम के हथार करतब जानते है भिम्मल मामा की अपनी एक अलग भाषा है, लुत्तों राजनीति जानता है प्रेम कुमार दीवाना कलात्मक प्रेम के प्रतीक हैं। इतने सारे पात्रों को लेखक ने बिना किसी का पक्ष लिए

1- आलोचना, नंद दुलारे बाजपेयी ।

बड़ी कुशलता के साथ उभारा है । "परती-परिकथा" उपन्यास कथाओं का एक समूह है । जिसमें विशाल परती धरती की अन्तर कथाएं भरी हैं । परती जमीन को ही इस कथा का नायकत्व मिला है । तथा अनेकों पात्र जैसे लुत्तो, जित्तन ताजमनी, भिम्मल मामा, इरावती इत्यादि एक एक अन्तर कथा के प्रमुख स्रोत है ।

इस उपन्यास में भारत के सबसे पिछड़े गाँव परानपुर के लोगों के आचरण और विश्वासों उनके रूढ़ि जर्जर जीवन ... उनकी आंकाक्षाओं और संकल्पों के विराट संघर्ष की कहानी कही है, जिसकी संचालन शक्ति नियति नहीं बल्कि वर्तमान युग की विकासोन्मुखी चेतना है दुलारी दाय की परती तोड़ने की चेष्टा नये भारत के निर्माण कार्य का प्रतीक है - हर व्यक्ति, समाज का हर वर्ग, राजनीति का हर दल, उसमें अपने आचरण और अपनी वर्तमान भूमिका का सही चित्र देख सकता है ।

3- कलंक मुक्ति -

फणीश्वर नाथ रेणु द्वारा रचित यह एक बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध उपन्यास है जो रेणु जी की मृत्यु के बाद सन् 1986 में प्रकाशित हुआ । "रेणु जी ने इस उपन्यास के विषय में लिखा है " इसमें चित्रित "वर्किंग विमेन्स होस्टल " का चकलाघर में बदल जाना भारतीय शासक वर्ग के पतनशील चरित्र और झूठे लोकतंत्र की विडम्बनाओं का कच्चा चिट्ठा है । जो अपने साथ में एक चीखता हुआ सवाल बन गया है कि इस सबके लिए जिम्मेदार कौन ? और उपन्यास की

प्रत्येक पंक्ति इस प्रश्न का उत्तर देती है । दूसरी ओर है – बेला गुप्ता, त्याग कर्त्तव्य और बलिदान की प्रतिमूर्ति । संघर्षशील अपराजिता । एक संजीवनी ...... पुण्या .... पवित्रा ...... पापहरा धरा बेला कब राष्ट्रीय अस्मिता में बदल जाती है पता नहीं लगता । केवल प्रश्न ही शेष रह जाता है वहाँ – इधर की तरह तरंगायित कि क्या उस समाज का विध्वंस आवश्यक नहीं जिसमें मनुष्य अपनी अस्मिता को सुरक्षित नहीं रख पाये? जहाँ उसका अस्तित्व स्वयं उसके हाथों से छीन लिया जाये ? और यदि ये प्रश्न जन मानस को मथने लगते है तो निश्चय है कि कलंक मुक्ति की सम्भावनाएं भी विद्यमान है " ।

इस उपन्यास का संसार नारी जीवन के क्रूरतम् अन्तर्विरोधों का संसार है जिसे रेणु जी ने बड़ी सहजता, आत्मीयता और सूक्ष्मता के साथ रचा है ।

नागार्जुन एवं उनके आंचलिक उपन्यास –

आंचलिक उपन्यास जगत में रेणु जी की भाँति नागार्जुन का भी नाम आंचलिक उपन्यास कारों में लिया जाता है । उपन्यास कार नागार्जुन देहात की सामन्ती संस्कृति और लोक जीवन के बीच से उठे हुए साधारण मानव हैं । उन्होंने हिन्दी को न केवल नये-नये शब्द और मुहावरे दिये बल्कि एक नई शैली भी दी जिसे नागार्जुनी शैली कहा जा सकता है और जिस शैली में मैथली भाषा की पूरी आबादी बोलती है । नागार्जुन ने मैथली मिश्रित हिन्दी का प्रयोग सर्व प्रथम किया इनसे पूर्व मैथली मिश्रित हिन्दी का प्रयोग हिन्दी साहित्य में सम्भवतः कभी नहीं हुआ ।

उनके उपन्यासों में "रति नाथ की चाची", "बलचनमा," "बाबा बटेसर नाथ", "वरूण के बेटे" में, बिहार के दरभंगा जिले के जन जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है।

1- " रति नाथ की चाची " नागार्जुन का पहला हिन्दी उपन्यास है इस उपन्यास का प्रथम संस्करण 1948 में किताब महल इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है, जिसमें वे विकृत सामन्ती संस्कारों एवं जीवन व्यवस्था के चित्र उतारते हैं। प्रकाशक ने उपन्यास के आरम्भ से पहले उसकी आंचलिकता का संकेत किया है। एक कुलीन परन्तु दरिद्र विधवा ब्राह्मणी का यह परिचय ऐसा है कि आपका हृदय नारी के प्रति श्रद्धालु और अनुभूति पूर्ण हो उठेगा।

2- "बलचनमा " नागार्जुन का एक प्रमुख आंचलिक उपन्यास है जो 1952 में किताब महल से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में नागार्जुन जी ने भूमि सम्बन्धी प्रश्नों को उठाया है साथ ही किसान संघर्ष को कथा का विषय बनाया है। 'बलचनमा' में लेखक ने भारतीय जीवन के ऐसे पात्र को लिया है जो कभी भारतीय साहित्य का विषय नहीं बना था। नागार्जुन के उपन्यासों से ही मालूम पड़ता है कि भारतीय किसानों एवं जन साधारण के अन्दर जो एक बहुत बड़ी शक्ति छिपी है जिसे लोग जनता की ताकत कहते आये हैं पर जिसका दिग्दर्शन इतने प्रत्यक्ष रूप मे भारतीय जनता को जगाने के लिये लेखकों ने नहीं कराया किन्तु नागार्जुन ने पूरे आत्म-विश्वास के साथ इस कार्य को किया और खुले आम ये एलान कर दिया कि भूमि हीन किसान जाग रहे हैं उनमें राजनैतिक चेतना आ गयी है। बलचनमा में एक ओर देहातों और किसानों का शोषण तथा उन पर

अत्याचारों के लम्बे दौर से फूटती हुई नई सामूहिक चेतना का स्वाभाविक परिणाम है किसान आन्दोलन दूसरी ओर विभिन्न राजनैतिक दलों के कार्य क्रमों एवं कार्य कर्ताओं की तिरछी धुरियां मिलती है कांग्रेसी समाज वादी एवं कम्युनिस्ट पार्टी तीनों के कार्य कलाप देखने को मिलते हैं। इस तरह बलचनमा में आंचलिक तथा राजनैतिक तत्वों का मेल होता है । आत्म कथा शैली पर लिखा गया ये उपन्यास विशेष अंचल {दरभंगा जिला} और विशेष वर्ग {किसान मजदूर} पर केन्द्रित है । इस उपन्यास में जनपदीय भाषा का प्रयोग हुआ है साथ ही किसानों के खेती बारी , काम-धन्धों, रूढ़ि रस्मों, खान-पान आदि का वर्णन किया गया है । बलचनमा में गाँव और घर का वर्णन, भैसों की रक्षा के उपाय, चौधरी लोगों की पट्टियों का विवरण, जमींदारों के गाँव का निरूपण, आश्रम की जिन्दगी का चित्रण गौने की रस्मों का वर्णन, पालकीय यात्रा का वृतान्त, देहात के घर की अन्तर सज्जा, वधू की अगवानी का शोभा चित्र, जनेऊ की रस्म का विधान आदि का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। कुसंस्कारों, धार्मिक आडम्बरों एवं अन्ध विश्वासों को उभारने के लिए बलचनमा की दादी, ओझा, छोटे मालिक के बूढ़े पंडित, फकीर मेकी पूल बाबू, दासों ठाकुर, बाबा जोग दास आदि चुने गये हैं । लोक संस्कृति एवं लोक कौशल का मार्मिक स्पर्श करने वाले पात्रों में बलचनमा की पत्नी लुमनी, धनवन्ती दाधी, चुन्नी की बीबी, कहार, जुलाहे आदि है ।

3- "वरुण के बेटे " नागार्जुन का तीसरा आंचलिक उपन्यास है जो 1966 में लिखा गया इसके द्वितीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1975 में राजपाल

एण्ड संस दिल्ली से हुआ । 'वरुण के बेटे' का कथांचल बिहार प्रदेश का ही मलाही गोंडियारी नामक गांव है । सम्पूर्ण कथा का प्राण मल्लाहों और मछुओं का जीवन है। मछुओं के दुख सुख की सीधी सादी कथा वस्तु इस उपन्यास का आधार है । गढ़-पोखर सदियों से इन मछुओं की जीविका का सहारा था, देश को तो स्वाधीनता मिली मगर गढ़ पोखर जैसा महान जलाशय अब भी जमींदारों की व्यक्तिगत जायदाद बना रहा । अपने अधिकारों के लिए मछुए आगे बढ़ आये जमींदारों के खिलाफ एक-एक मछुआ उठ खड़ा हुआ ।

4- "बाबा बटेसर नाथ'- को बरगद वृक्ष के अंचल की कथा कहा जा सकता है । बाबा बटेश्वर नाथ के चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन 1978 में राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि0 8 नेता जी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली से हुआ । इस उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन के पश्चात आयी हुई परिस्थितियों का चित्रण है । ग्रामीण जीवन का सफल अंकन इसमें हुआ है । किसानों का संगठन बरगद की ममता को लेकर होता है , बट वृक्ष जो असंख्य भारतीयों के विश्वास और शांति एवं शरण का प्रतीक है इसका चयन लेखक की मार्मिक कला की परख का परिचायक है ।

5- "नई पौध "- नागार्जुन का नवीन उपन्यास है नई पौध के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1957 में किताब महल इलाहाबाद से हुआ । जिसमें मैथिली समाज के विवाह आदि का चित्रण है । समाज की पुरानी परिपाटी और रूढ़ियों के विद्रोह में नई पीढ़ी अपना कदम बढ़ाती है । भारतीय जीवन के सामन्ती अवशेषों का उन्होंने अंकन किया है ।

नागार्जुन के इन उपन्यासों को पढ़ कर लगता है कि उन्होंने मिथिला के गाँवों का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया है, वहाँ के स्त्री पुरुषों की मनोदशा, उनकी पुरानी परम्पराओं, किसानों और जमींदारों के संघर्ष नई राजनैतिक चेतना के साथ-साथ वहाँ की शस्य-श्यामल भूमि के प्राकृतिक दृश्यों का भी इन उपन्यासों में चित्रण मिलता है ।

मिथिला अंचल की भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति के जीवन्त चित्र इनके उपन्यासों में मिलते हैं ।

शिव प्रसाद सिंह -

अलग-अलग वैतरणी -

"अलग-अलग वैतरणी" शिव प्रसाद सिंह द्वारा लिखित सर्वश्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास है यह उपन्यास सन् 1967 में लिखा गया । इसके तृतीय संस्करण का प्रकाशन सन् 1977 में लोक भारती प्रकाशन 15 ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद से हुआ । अपने इस उपन्यास में लेखक ने उत्तर प्रदेश के करैता गाँव के लोक जीवन का चित्रण किया है और एक प्रकार से कहा जाय तो यह वर्णन न केवल करैता गाँव का ही है अपितु समस्त भारतीय गाँवों के प्रतिनिधि के रूप में इस गाँव को लेखक ने चुना है।इस उपन्यास को पढ़ने के पश्चात् गाँव का यथार्थ रूप सामने आ जाता है । करैता की समस्या समस्त भारतीय गाँवों की समस्या है। स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज का सशक्त यथार्थवादी एवं व्यंगात्मक चित्र इसमें उभरा है । विशेष कर जमींदारी उन्मूलन के बाद की विकृतियाँ इन उपन्यास में दृष्टिगोचर होती हैं । एक ओर सुरजू सिंह जैसे लोगों की और दूसरी ओर मीरपुर के बाबू बंसी लाल जैसे लोगों की पार्टियाँ प्रकाश में आई तथा नये-नये सामाजिक, राजनीतिक चेहरों में गुंडा गर्दी अपना विस्तार करने लगी । कहानियों के इस कथा जाल में एक केन्द्रीय कथा लेखक ने रखी है । जमींदार का पुत्र विपिन की कथा जो शहर से पढ़ाई पूरी करके गाँव में लौटा है तथा उसके मन में अपने गाँव को एक आदर्श रूप प्रदान करने के सपने हैं । उसके मित्रगण डॉ० देवनाथ तथा मास्टर शशिकान्त उसके सहयोगी हैं ।

परन्तु उपन्यास का परिवेश इतना भीषण है कि वह इन अच्छे लोगों को धक्के मार कर दूर हटा देता है और शेष रह जाती है गाँव में नरकीय घुटन, स्वार्थपरता, एवं आदर्श हीन नैतिकता । इन सबको लेकर गाँव टूट रहा है और यहाँ रहते वे हैं जो यहाँ नहीं रहना चाहते किन्तु कहीं जा नहीं सकते । यहाँ से जाते अब वे हैं जो यहाँ रहना चाहते हैं पर रह नहीं सकते । विपिन का गाँव छोड़कर नगर में चला जाना गाँव का अन्त है । जाते-जाते विपिन एक सवाल छोड़ जाता है कि फिर गाँव का क्या होगा ।

"अलग-अलग वैतरणी" में ग्राम संस्कृति का नवीन रूप बहुत स्पष्टता से अंकित हुआ है जो बाबुओं के गाँव से लगी चमटोल में वह निखार पाता है । उपन्यास कार ने बहुत ही तटस्थता से इस अस्पर्श्य क्षेत्र को स्पर्श करके चमटोलों का जीवन चित्रण किया है । गाँव की पटनहिया भाभी, कनिया और पुष्पा की पीड़ा का बड़ा ही हृदय द्रावक वर्णन हुआ है । इस उपन्यास में शिव प्रसाद सिंह ने जैपाल सिंह के अभिजात जमींदार से लेकर "फ्लल ऍट पार्टी" तक का और प्रजातांत्रिक प्रयोग विकृति से लेकर शिक्षा जगत की विकृतियों तक का अत्यन्त कुशल चित्रण किया है ।

ब्रह्म पुत्र देवेन्द्र सत्यार्थी -

"ब्रह्म-पुत्र " देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा लिखा गया एक प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है जो सन् 1956 ई0. में प्रकाशित हुआ है । इस उपन्यास मे लेखक की दृष्टि हिन्दी भाषी प्रदेश को पार करके एक अहिन्दी भाषी प्रान्तों के ऐसे लोगों के जीवन की ओर गई है जिसका उस प्रान्त में भी अपना विशिष्ट स्थान है । दिसांग मुख गाँव का लोक जीवन लेखक ने उपन्यास में वर्णित किया है । ब्रह्म-पुत्र नदी पुत्रों का जीवन जो सदैव ब्रह्म पुत्र के उल्लास और कोप का लक्ष्य बनते हैं और हमेशा उसके सामने नतमस्तक रहे हैं जिनके दिलों में उस ब्रह्म पुत्र के लिए अत्यधिक श्रद्धा एवं स्नेह है और यही ब्रह्मपुत्र वहाँ के लोगों का जीवन, उनकी जीविका, उनका काल उनकी मृत्यु सब कुछ है । जितना किसान का धरती के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है वैसे ही ब्रह्म पुत्र का उनके जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है । उनके विविध हर्ष, शोक, भय, श्रद्धा आदि की भावनाएं उनके गीतों में अवतरित होती है ।

दिसांग मुख गाँव में लेखक प्रवेश करता है जहाँ चहल पहल का केन्द्र स्टीमर घाट है । धरती पर ब्रह्म पुत्र, उसमें नीचे अनगिनत मछलियाँ, उपर उड़ती सारसों की पंक्तियाँ, प्राकृतिक परिवेश से परिपूर्ण हाथियों वाले मनमोहक देश की छवि को लेखक ने उपन्यास में उतार कर रख दिया है।उपन्यास पढ़ने पर ऐसा लगता है मानों पाठक उस स्थान में स्वयं विचरण करके सब कुछ अपनी आँखों से देख रहा हो ।

इस उपन्यास में पराधीनता के अंधकारमय युग, जिसमें क्रान्ति और राष्ट्रीय आन्दोलनों के सूत्र पात होते हैं तब से लेकर गांधी युग, स्वतंत्रता प्राप्ती और वर्तमान मोह भंग तक की स्थितियों को चित्रित किया गया है ।

इस उपन्यास में पात्रों की बहुल्यता है।अनेक प्रकार के पात्र उपन्यास में दिखाई पड़ते हैं । जिनमे कल्याण , भगत, नील मणि, रखाल काका, अब्दुल कादिर, धर्मानन्दी जैसे बूढ़े पात्र भी है और देवकान्त, अतुल, नीरद, मुकन्, प्रभात जैसे युवक भी, रतन नापित, देश भक्त नागा लड़की गुइडालों, अंग्रेज लड़की लिली, मछुआ पुत्री आरती, जुन्तारा , बादल मल्लाह और भी न जाने कितने पात्र है जो सभी मिलाकर उपन्यास के लोक जीवन के चित्रण का माध्यम बनते हैं । इन पात्रों की अपनी-अपनी प्रवृत्तियां है, कुछ पात्र अधिक जागृत है और देश की विविध समस्याओं से लेकर अपने गांव के छोटे बड़े प्रश्नों पर यदा-कदा अपने विचार व्यक्त करते हैं युवक वर्ग में तो नीरद, अतुल, देवकांत , जादू, मुकन्, प्रभात सभी क्रियाशील हैं । बूढ़ों के समुदाय में रखाल काका ही ऐसे हैं जिनकी दृष्टि कुछ अधिक व्यापक है । बाकी सभी पात्र अपने ही जीवन में केन्द्रित रहने वाले हैं । बूढ़ा धर्मानन्दी भी अन्य सामान्य पात्रों से अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व रखता है। कल्याण भगत, दकियानूसी विचारों के प्रतिनिधि हैं । नील मणि को यहीं चिंता है कि उसके बाद उसका पुत्र अतुल ही गांव का बूढ़ा बनकर अपने बाप दादों की परम्परा को कायम रखे । धन-सिंह और रतन नापित की दुकानें तो गांव का

समाचार केन्द्र हैं । उनका वार्तालाप भी उपन्यास में कहीं-कहीं जान डाल देता है ।

"दूध गाछ"

'दूध गाछ' उपन्यास भी देवेन्द्र सत्यार्थी द्वारा लिखा गया उपन्यास है जो आँचलिक उपन्यासों की कोटि में आता है । यह उपन्यास ब्रह्म पुत्र की ही परम्परा का उपन्यास है ।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र आदिवासी संथाल है । संथाली में दूध गाछ माँ का प्रतीक होता है । उपन्यास के प्रमुख पात्र गोविन्दम आदि का विकास एवं चरित्रांकन कौशल पूर्ण है, तथा स्वभाविक है । शंख -धर ~~स्टैंड्स~~ उपन्यास की अनुपम सृष्टि है । उपन्यास के दोनों पात्र अपने परिवार की सीमा से ठीक वैसे ही उपर उठे हैं जैसे कीचड़ में कमल उपर उठा रहता है । यदि मूर्तिकार का परिवार शंख धर को अपनी सीमाओं में न बांध सका तो वैश्या मैना के चोचले भी पुत्री अभिनेत्री इरा को उनके आदर्शों से नीचे नहीं उतार सके । शंखधर का मातृत्व को प्रकट करने वाली मूर्ति इसको देना और उसका प्रेम प्राप्त कर लेना जिसमें उसका स्वभाव और शास्त्रीय संगीत भी सहायक हुआ अत्यन्त स्वभाविक एवं मनोवैज्ञानिक भी है । संगीत की मधुरतम धारा का प्रयोग करते हुए फैयाज खां का भी वर्णन आया है । स्थान-स्थान पर लोक गीतों के प्रयोग से भी किंचित चरित्र विकास में सहायता मिलती है । उपन्यास की भाषा बड़ी रोचक और भावुकता पूर्ण है जिसमें संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ती है ।

उदय शंकर भट्ट -

उदय शंकर भट्ट नाटक कार एवं उपन्यास कार है।उन्होंने अनेक उपन्यासों की रचना की है किन्तु भट्ट जी का "सागर लहरे और मनुष्य " उपन्यास एक महान कृति है।ये उपन्यास सन् 1956 में लिखा गया है । उपन्यास के शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि ये उपन्यास मछुओं के जीवन पर लिखा गया उपन्यास है। बम्बई के बरसोवा के लोगों का लोक जीवन इसमें वर्णित है । भट्ट जी ने उपन्यास लिखने के पूर्व मछुओं से विशेष सम्पर्क किया अपनी पुस्तक "साहित्य के स्वर" में भट्ट जी ने लिखा है कि उन्होंने अपने पात्र को अपने अनुभव और समाज से निर्मित किया है।भट्ट जी लिखते है - " बम्बई के मजदूरों को शराब पिलाकर उनसे दोस्ती की । बम्बई के मछलीमारों पर उपन्यास लिखते समय मैनें मछली की बू से सिर झन्नानें और निरन्तर मतली आने पर भी उनकी बनाई चाय पी है । .... इन्हीं दिनों रोंगटे खड़े करने वाली मछली मारों की नाव में यात्रा की बात भी याद आती है । जब मैं समुद्र की तेज लहरों के छपाके से नहाता, हवा के थपेड़े खाता उनकी नाव में दस बारह मील दूर समुद्र में गया था । मौत तो उस समय जैसे हर लहर के साथ मुँह बाए चली आ रही थी छोटी नाव अगाध-जलराशि, तेज लहरे, नागिन की तरह फुफकारती यह सब दृश्य आज भी जब याद करता हूँ तो डर लगता है ।"[1]

1- भट्ट जी द्वारा लिखित "साहित्य के स्वर" पृ०सं० 129

भट्ट जी द्वारा लिखी हुई इन बातों से ज्ञात होता है कि उन्होंने उपन्यास लिखने के पूर्व मछुओं के सम्पर्क में रह कर उनके लोक जीवन को बहुत करीब से देखा एवं अनुभव किया था तथा उस अनुभव के आधार पर उन्होंने उपन्यास की रचना की ।

'सागर लहरे और मनुष्य'" -

इस उपन्यास में समुद्र तटीय ग्राम जीवन और वहाँ के दुर्दम, संघर्षरत मछुआरों का सागर लहर जीवन अंकित है।बम्बई का बरसोवा गांव मछुआरों की बस्ती है । इस उपन्यास में साधारण जन समाज का वर्णन न होकर एक विशेष जाति वर्ग का चित्रण हुआ है । गाँव की नगरोन्मुखता को एक नये आन्तरिक स्तर पर इस उपन्यास में प्रस्तुत पाते है, सच बात तो यह है कि यह उपन्यास मछुआ दम्पति विट्ठल और बंसी की बेटी रत्ना की कहानी कहता है रत्ना पढ़ लिख कर परम्परागत मछुआ जीवन की विषमताओं और कुण्ठताओं से विरक्त होकर सभ्य जीवन बिताने के लिए संघर्ष करती है।वह अपने गाँव के सच्चे प्रेमी यशवन्त को छोड़कर बम्बई के धनवान माणिक की ओर आकर्षित होती है किन्तु उस सभ्य समाज में पहुँच कर भी उसे सभ्य वातावरण नहीं मिलता । एक डाक्टर पांडु रंग को छोड़कर उसे वहाँ भी सभ्य वेश में नर पशु ही मिलते हैं ।

उपन्यास के सारे पात्र बम्बइयां भाषा ही बोलते हैं । रत्ना का पिता विट्ठल, रत्ना की माँ बंसी, रत्ना का आदर्शवादी मछुआ प्रेमी यशवन्त, रत्ना का पहला पति माणिक जिसके प्रेम जाल में फंस कर रत्ना मछुओं

की बस्ती, यशवन्त और पुराने जीवन को छोड़कर नये जीवन की तलाश में बम्बई जाती है । रत्ना की मददगार सहेली सारिका जो मध्यवर्गीय तुच्छताओं के कारण प्रेम के लिए नहीं बल्कि पैसे के लिए एक अपरिचित से शादी करने में आना कानी नहीं करती, माणिक की पत्नी दुर्गा , धूर्त वकील धीरूवाला, जो रत्ना को दो बार शादी का प्रलोभन देकर और शराब पिलाकर उसके साथ अनजाने में बालात्कार करता है और अन्त में सच्ची मनुष्यता का प्रतीक डा० पांडुरंग जो धीरूवाला से गर्भवती रत्ना की लोक निंदा की परवाह न करके सच्चे हृदय से प्यार करता है और रत्ना को अपनाकर लोकनिंदा से बचाता है । इन सभी पात्रों को भट्ट जी ने इतनी कलात्मकता से आँका हैं कि वे सभी सजीव हो उठे है ।

लेखक का उद्देश्य मछुआ लोगों के जीवन का चित्र उतारना है। आन्तरिक और वाह्य दोनो पक्षों का । उपन्यास पढ़ने से ऐसा लगता है कि हम प्रत्यक्ष बम्बई के समुद्र तट पर बसे मछुवों को देख रहे हैं।जीवन का जीता जागता वैसे का वैसा रूप यहाँ मिलता है ।

'शेष- अशेष'-

भट्ट जी का दूसरा आंचलिक उपन्यास शेष- अशेष सन् 1960 में लिखा गया जिसे आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जाती है । भट्ट जी ने इस उपन्यास में न केवल स्त्री प्रसंग की चर्चा की हैं बल्कि उन्होंने इस बात का भी रहस्योद्घाटन किया है कि स्वतंत्रता संग्राम की जो लड़ाई भारत वर्ष में लड़ी

जा रही थी साधुओं की जमात भी उससे पीछे नहीं थी। वैसे क्रान्ति कारियों का साधु वेश में छिपना सर्व विदित है पर साधुओं का सक्रिय रूप से आन्दोलन में भाग लेना सर्वविदित नहीं । भट्ट जी ने अत्यन्त विश्वसनीय ढंग पर साधुओं के उस कार्य एवं सहयोग की चर्चा की है जो उन लोगों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोल को बढ़ाने में दिया गया था । कुल मिला कर भट्ट जी की इस कृति को सफल आंचलिक रचना माना जा सकता है ।

"कब तक पुकारूँ"–

रांगेय राघव का " कब तक पुकारूँ " उपन्यास एक प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन 1958 में राजपाल एण्ड संस दिल्ली से हुआ । "कब तक पुकारूँ" नटों के जीवन पर लिखा गया उपन्यास है इस उपन्यास के भूमिका भाग में राजस्थान के जरायम पेशा करनट जाति का परिचय है । पूरे उपन्यास में लेखक ने व्यक्तिगत जीवन की एक घटना का वर्णन किया है । लेखक का परिचय वयोवृद्ध सुखराम करनट से एक दुसाध्य चिकित्सा के सिलसिले में होता है सुखराम ठाकुरवंशी है और उसकी लड़की चंदा अतीत के एक रहस्यमय इतिहास की भटकती आत्मा है।वह बार-बार किसी अधूरे किले की ओर ललक रही है ।

राही मासूम रज़ा -

आधा-गाँव -

आधा -गाँव सन् [1966] राही मासूम रज़ा द्वारा लिखित एक आंचलिक उपन्यास है । इस उपन्यास के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1966 तथा चतुर्थ आवृत्ति का प्रकाशन सन् 1980 में राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 8 नेता जी सुभाष मार्ग नई दिल्ली से हुआ । इस उपन्यास मे लेखक ने अपने ही गाँव गंगोली जो कि गाज़ीपुर जिले के अन्तर्गत है, वहाँ के लोक जीवन को चित्रित किया है। इस उपन्यास में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग किया गया है। उपन्यास में हिन्दू और मुसलमानों को पात्र बना कर कहानी कही गयी है । मुस्लिम परिवारों के ही सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के उत्थान पतन को लेखक ने अंकित किया है । उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में जमींदार युग का उल्लसित रोमांस, मजलिस, मरसिया, ताजिया, सेहरा आदि का वर्णन है।किन्तु उपन्यास के उत्तरार्द्ध में ग्रामीण जीवन की टूटन उदासी और उजड़न का चित्रण हुआ है।उत्पीड़न और विक्षोभ की स्थिति में गांव के लोग अनर्गल गालियाँ बकने लगते हैं ।

श्री लाल शुक्ल -

'राग - दरबारी'-

श्री लाल शुक्ल का राग दरबारी एक प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास है जो सन् 1969 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में शिव पाल गंज गाँव में स्थित इन्टर कालेज और वहाँ की गंदी राजनीति को तथा लक्ष्य-हीन राष्ट्रीय जीवन को लेखक ने व्यक्त किया है साथ ही व्यंग्य शैली में गाँव के विकास जो राजनीतिक नेता शाही और नौकरशाही के बीच दम तोड़ रहा है उसका वर्णन किया है।

यह सारे देश का उपन्यास है क्योंकि इसके माध्यम से लेखक ने जिन बुराइयों पर प्रकाश डाला है वे सारे देश में फैली हुई हैं। उपन्यास के अंत में रूप्पन गलत नहीं कहता है कि शिवपाल गंज सारे मुल्क में फैला हुआ है।

इन प्रमुख आंचलिक उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य कई छुट पुट आंचलिक उपन्यास भी लिखे गये हैं। जिनमें लोक लाज खोई " 1963 में सुरेन्द्र पाल द्वारा लिखा गया है। इस उपन्यास में जैनाथ पुर गाँव का लोक जीवन हवलदारिन मौजी का औपन्यासिक रेखांकन है। गाँव के मनोरंजक नारी ग्राम सेवक और बी०डी०ओ० चमटोल का रोमांस, कागजी विकास और आत्मभिमान की गिरावट आदि समस्त बिखरे सन्दर्भों की एक सूत्रता मौजी में निहित करके लेखक ने उपन्यास को आंचलिकता का रूप दिया है।

यादवेन्द्र शर्मा " चन्द्र "

"दिया जला दिया बुझा'-

हिन्दी के आंचलिक उपन्यास कारों में यादवेन्द्र शर्मा का नाम उल्लेखनीय है।लेखक ने अपनी सृजन प्रेरणा के सम्बन्ध में लिखा है " कि सन् 1954 नवम्बर में मेरा बहुचर्चित "सन्यासी और सुन्दरी" प्रकाशित हुआ इसके साथ ही राजस्थान के सामन्त समाज पर मेरा उपन्यास" दिया जला दिया बुझा" छपा।इन दोनों उपन्यासों ने मुझे उपन्यास कार के रूप में ख्याती दी-[1]

राजस्थानी लोक जीवन को इन्होंने अपने उपन्यासों में उतारा है। यह उपन्यास एक गाँव की कहानी है। राजस्थान के एक गाँव की जहाँ जागीरदार अपने को दूसरा ईश्वर ही समझता था। उसके कुत्सित और विलास मय जीवन की झांकी इस उपन्यास में देखने को मिलती है।

इस उपन्यास में राजस्थान के लोक जीवन को कई गीतों में प्रति-ध्वनित किया गया है। कहीं पनघट की ओर जाती हुई नारी का अहलाद पनि हारी में गुंजता है।

ससुरे जी चिणायां कुवां वावड़ी
ए पनि हारी ए लो।

तो कहीं कन्या की बिदाई का करूण गीत हृदय को द्रवित कर देता है।

1- आधुनिक हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास डॉ0 बेचन पृ0 संख्या 227 ।

ओजी गोरी रा लफरिया

घड़ी एक लगाकर थामों जी ढोला ।

इस उपन्यास में लेखक ने सामन्तवाद की यथार्थ तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत की है । इसमें अंचल विशेष के लोगों की रुचि, आचरण और भाषा शैली का बड़ा सटीक चित्रण हुआ है ।

शिव प्रसाद सिंह "रूद्र"-

<u>बहती गंगा -</u>

बहती गंगा शिव प्रसाद मिश्र रूद्र द्वारा लिखा गया एक आंचलिक उपन्यास है। यह उपन्यास सन् 1952 में लिखा गया इसके चतुर्थ संस्करण का प्रकाशन 1978 में राधा कृष्ण प्रकाशन अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली से हुआ। इस उपन्यास में नायक काशी नगरी को बनाया गया है। जिसमें काशी नगरी की सामाजिक, राजनैतिक जीवन के उतार चढ़ाव को लेखक ने बड़ी ही कुशलता के साथ अंकित किया है। यह उपन्यास काशी के इतिहास के अन्दर कुलांचे भरती हुई काशी की जनता की भ्रम जालिक भंगिमाओं का उपन्यास है। इसमें काशी की लगभग दो शताब्दियों का इतिहास सत्रह तरंगो के माध्यम से बताया गया है। 'बहती गंगा' में शारीरिक वीरोचित पौरुष संदेश को लेखक दाता राम नागर तथा भंगड़ भिक्षुक के रूप में दे सका है।

इस उपन्यास में लेखक ने जिस समाज का चित्रण किया है। उसे उसने बड़े नजदीक से देखा है तथा उसी के रस उद्भाषित भी हैं। इसी कारण से जितने भी चित्र उपन्यास में आये हैं वे अत्यन्त सजीव एवं यथार्थ हैं। भाषा पर तो मानों लेखक का सहज स्वभाविक अधिकार है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने उपन्यास के विषय में लिखा है " उपन्यास में ऐतिहासिक घटनाओं और व्यक्तियों की गाथा, अंग्रेजों के अत्याचार, उसके विरूद्ध काशी की वीर जनता की प्रतिक्रिया उनकी देश भक्ति, घर फूंक मस्ती, हृदय की कोमलता व साहस चित्रित

है । इस बहती गंगा के भूमिका भाग में लिखित सीता राम जी के मत से " इस बहती गंगा की सबसे बड़ी विशेषता है इसकी भाषा जिसमें तनिक मिलावट नहीं, सीधी मुहावरेदार, सरस सूक्तियों और लहरियादार शब्दावली से भरी भावों के साथ ऐसी झूमती इठलाती, बलखाती लचकती झूलती मचलती है कि आप एक एक वाक्य को दस-दस बार पढ़े तो जी न भरे "[1] ।

1- बहती गंगा, पृ0 भूमिका भाग

अमृत लाल नागर -

'बूंद और समुद्र'-

"बूंद और समुद्र " अमृत लाल नागर का बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास है जो सन् 1955 में पूर्ण हुआ था । बूंद व्यक्ति और समुद्र समाज का प्रतीक है । नागर जी ने अनेक बूंदों के स्वरूप को उद्घाटित कर अन्ततः समाज रूपी समुद्र में उनकी लीनता स्वीकार की है । " उपन्यास की भूमिका में लेखक ने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण दोष भरा चित्र खींचने की बात कही है ।"[1]

इस उपन्यास में शहरी जीवन होते हुए भी पूर्ण आंचलिक वातावरण सुरक्षित है । नागर जी के इस उपन्यास में नागरिक आंचलिकता है ।

प्रकाश चन्द्र मिश्र का कथन है - " उनके इस प्रयास का ही परिणाम है कि बावजूद एक नागरिक परिवेश के उपन्यास अपनी आंचलिकता में वैसा ही सजीव आकर्षक प्रकट बन सका है जैसा ग्राम्य जीवन की भूमिकाओं को लेकर लिखे गये अन्य आंचलिक उपन्यास" [2]"बूंद और समुद्र" मध्यवर्गीय नागरिक समाज व्यवस्था के बनते बिगड़ते और बदलते हुए भारतीय परिवार का महाकाव्य है।इस भारतीय परिवार का केन्द्र नारी है। नारी के विभिन्न रूप देखने कोइस उपन्यास में मिलते है । ताई जिसे पति ने छोड़ दिया है । जादू टोने में विश्वास करने वाली मुहल्ले भर के लड़कों और बड़े बूढ़ों के भी

1-'बूंद और समुद्र अमृत लाल नागर'पृ0 भूमिका भाग
2-'अमृत लाल नागर का उपन्यास साहित्य'—प्रकाश चन्द्र मिश्र
पृ० सं० १०२।

कौतुहल का केन्द्र है, कृष्ण की परम भक्त, साथ ही जीव मात्र से प्रेम और हिंसा का अद्भुत सम्मिश्रण हैं। नन्दो जो घर में कुटनी का काम करती है। पुराने चाल की निष्ठावान किन्तु रूढ़िवादी कल्याणी। कहीं लाले की घर वाली " एटम बम की तरह बीच चौक में फूटकर मम्मी के घर को हिरोशिमा बना देती है "। कहीं नन्दो रण क्षेत्र में आकर वाक् युद्ध करती है। इसके साथ ही पुरुषों का वर्ग अपनी विशिष्ट मर्दानी संस्कृति के साथ दर्शाया गया है। पीपल के नीचे का चबूतरा, हुक्के, नीम की दातुनें, अखबार गजक और मूंग फली बेचने वाले, कुल्फी की तारीफ गोल दरवाजे पर कटोरों और रानी कटरे में जाकर खाओं और तारीफ ये कि जरा भी न गले, तीतरों को घुमाता हुआ परसोत्तम सेक्रेटेरियट के बाबू गुलाब चंद, लखनऊ की खास गाली को उपनाम की तरह अपने वाक्यों में जड़ने वाले लाला मुकुन्दी मल मुहल्ले से लेकर विश्व तक की समस्याओं पर वाद विवाद, कथा बांचते हुए पंडित जी।

उपन्यास की बूढ़ी ताई लखनऊ के रईस की छोड़ी गई पहली पत्नी हैं। जीवन की परिस्थितियों ने उनके मन में विचित्र ग्रन्थियाँ उत्पन्न कर दी हैं। ताई जादू टोने से मानव मात्र का संहार करने पर तुली हुई सी दिखाई पड़ती हैं। भारतीय समाज का सारा अंध विश्वास और मनुष्य से घृणा करने वाली सारी हिंसा मानों सिमिट कर ताई में केन्द्रित हो गयी है। बच्चे बड़े व बुजुर्ग सब ताई को छेड़ते व चिढ़ाते हैं और ताई सब को कोसना जानती है। पलंग की पाटी मे सेन्दुर मलने, तकिये में काला डोरा पिरोकर सुई खोंसने, आटे के पुतले बना कर मारण मंत्र चलाने आदि की जो क्रियायें होती

रही हैं उनकी सूत्रधार ताई हैं । ताई में हिंसा की भावना इतनी तीव्र है कि पति के अपराध के लिए वह जादू द्वारा उसके नाती के प्राण लेने का प्रयत्न करती हैं ।

पुरूष पात्रों में सज्जन व महिपाल दोनों कलाकार हैं दोनों रईस घराने के हैं ।

पात्रों की बहुलता एवं प्रसंग विविधता होने पर भी उपन्यास में आंचलिकता सुरक्षित रही है क्योंकि पात्रों के परस्पर वार्तालाप में भाषा उनके अंचल विशेष से सम्बन्धित ही प्रयुक्त हुई है । डा० सत्यपाल चुघ भी अप्रत्यक्ष रूप में इसमें आंचलिकता स्वीकारते हुए कहते हैं "बूंद और समुद्र में वर्णन चिन्तन और विश्लेषण के साथ वार्तालाप समुचित मात्रा में ही नहीं आए महत् विशिष्टता भी रखते हैं ।"

राम दरश मिश्र - "पानी के प्राचीर"

पानी के प्राचीर" राम दरश मिश्र द्वारा लिखित एक आंचलिक उपन्यास है। जो 1962 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास की कथा स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व की है। पांडेपुरवा नामक काल्पनिक गाँव की कहानी इस पूरे भूभाग की कहानी है। सारे पात्र काल्पनिक हैं किन्तु उनके दर्द इस पूरे प्रदेश के यथार्थ दर्द है।

'लोक ऋण'– विवेकी राय –

लोक ऋण विवेकी राय जी द्वारा लिखित उपन्यास का प्रथम संस्करण विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी से सन् 1977 में हुआ । लेखक ने उपन्यास की कथावस्तु में तीव्र गति से बदलते गाँवों की स्थिति तथा उन गाँवों की अनछुई कथाभूमि समसामयिक की आधार भूमि पर चित्रित किया है । वस्तुतः "देवऋण", पितृऋण और ऋषिऋण से पृथक लोकऋण नये का नवीन जीवन मूल्य जिसके परिप्रेक्ष्य में बदलते गाँव की अनछुई कथाभूमि की गंभीर आशावादी अनास्था वादी समसामयिक पहचानवाली एक मनोरंजककृति "लोकऋण"[1]।

लेखक ने उपन्यास के अन्तर्गत वर्तमान समय में होने वाले परिवर्तन को यथार्थवादी की दृष्टि से देखा है । लेखक का यह दृष्टिकोण मूलतः रचनात्मक है ।

उपन्यास में ग्रामीणों की स्वार्थवृत्तियों संकीर्ण विचारों अहंभावों का प्रासंगिक उल्लेख महत्वपूर्ण है । इस कृति में स्वार्थान्ध उठापटक में व्यस्त मिथ्या विद्रोह और आत्मीकृति में मुख्य गुत्थ गाँव में एक ओर सर्वथा नये गाँव का चित्र, सामाजिक मूल्यों की स्वीकृति शेष गाँव का चित्र उभर कर सामने आ जाता है । लेखक ने उपन्यास की कथावस्तु में रामपुर गाँव के आंचलिक लोक जीवन एवं उसके यथार्थ को चित्रित करने के लिए आरम्भ

1– लोकऋण विवेकीराय, प्रकाशक द्वारा लिखित आमुख से ।

में ही प्रकृति की पार्श्व भूमि का जो चित्र अंकित किया है वह स्वभाविक और प्रभावपूर्ण है । गांधी जयन्ती के अवसर पर कई वर्षों के बाद ग्रामीण जनों का एकत्रित होना और परस्पर एक दूसरे के साथ मिलकर विचार विमर्श करना अँचल के लोक जीवन की यथार्थता का परिचायक है। लेखक ने इस यथार्थता को चित्रित करने के लिए समय के साथ बदलते हुए गाँव के बदलाव का सजीव चित्रांकन किया है । परिवर्तनों के प्रभाव स्वरूप क्रमशः गाँव भी बदलता जा रहा है। वही गाँव जहाँ बड़े धूम धाम के साथ कभी पुस्तकालय की स्थापना की गयी थी, वहीं अब लोगों के मन में केवल उदासीनता और मौनता शेष है । " कभी समय था कि गाँव में उत्थान की एक नयी जबरदस्त लहर आयी तब पढ़ने लिखने और साहित्य के आस्वादन की एक विचित्र हवा थी । भैंस के चरवाह उसकी पीठ पर बिरहा न गाकर बच्चन की "मधुशाला" की पंक्तियाँ गाते थे । गाँव के पटवारी मुंशी सोहबत लाल के दरवाजे पर चन्द्रकान्ता पढ़ी जाती थी और अनेक अनपढ़ लोग उसे चाव से सुनते थे । पुस्तकालय में आयी नयी पुस्तकों और पत्रिकाओं के लिए माँग ऐसी जबरदस्त होतीकि तू - तू मैं - मैं की नौबत आ जाती । समाचार पत्र आते और पढ़कर लोग उस पर बहस करते । अब सब गया । पुस्तक पढ़ने की हवा गई । अखबार और पत्रिकाएं गयीं । रामायण भजन गया । अब गाँव में राजनीति है चुनाव है, पंचायत राज्य है, नयी खेती और अखंड मनहूसी है "।[1]

1- लोक ऋण - विवेकी राय पृ०सं० 7-8 ।

वस्तुतः उपन्यास की कथावस्तु में गाँव तथा गाँव के भीतर सर्वथा एक नये प्रकार के गाँव की तस्वीर स्वभाविक रूप में चित्रित हुयी है। यह गाँव नयी तस्वीर गाँव के अंचल विशेष की मौलिकता यथार्थता और आंचलिक यथार्थता का सजीव अंकन लोकजीवन की आंचलिकता को द्योतित करने वाले तात्त्विक संदर्भों का उपन्यास में यथा स्थान अधिकांश में समायोजन हुआ है। अस्तु लोक व्रण मौलिक अभिव्यंजना, नवीन जीवन दृष्टि, यथार्थवादी विचार दर्शन तथा नये रचना शिल्प के कारण आंचलिक उपन्यास रचना की दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

'अग्नि बीज'-

मार्कण्डेय कृत "अग्नि बीज" स्वतंत्रता के बाद, 1953-54 के आस पास के ग्रामीण सन्दर्भों में उभरते पात्रों की सामाजिक, राजनीतिक चेतना की विकास यात्रा को रेखांकित करने वाले कथानक का पहला उपन्यास है। "मार्कण्डेय" लिखित "अग्नि बीज" भी एक आंचलिक उपन्यास है। इसका प्रथम संस्करण 1981 में नया साहित्य प्रकाशन 2 डी मिंटो रोड इलाहाबाद से हुआ। " उपन्यास की कथावस्तु में आजादी के बाद की नवचेतना और उसके विकास को चित्रित करने के लिए लेखक ने लम्बी कथायोजना निर्धारित की है। समग्रता "अग्नि बीज" एक लम्बी कथा योजना का पहला उपन्यास है "[1]।

उपन्यास में मुख्यतः एक ही गाँव और उसके आंचलिक जीवन यथार्थ को लेखक ने वर्णित किया है। स्वतंत्रता परवर्ती जनचेतना के रेखांकन के लिए उसने ग्राम विशेष के तीन चार तरूणों को चुना है। यद्यपि उपन्यास के पात्र तो उस ग्राम्यांचल के हैं, लेकिन उनकी अभिव्यक्ति के द्वारा अंचल विशेष के जिस स्वरूप की झांकी लेखक ने प्रस्तुत की है, वह प्रतिनिधिक है गाँव के लोक जीवन के यथार्थ का यह चित्रण ऐसा है जो इस गाँव तथा अँचल का ही जीवन यथार्थ नहीं है अपितु सम्पूर्ण समाज जीवन की विभिन्न सामयिक विसंगतियों, विषमताओं और जटिलताओं की भी सशक्त अभिव्यक्ति

1- "अग्नि बीज" मार्कण्डेय प्रथम संस्करण सन् 1981 नया साहित्य प्रकाशन इलाहाबाद।

प्रकाशक का कथन इस वास्तविकता को प्रकट करने में पूर्णता समर्थ है -
" समकालीन परिस्थितियों की पहचान के लिए जनता के जीवन को प्रमुख
कसौटी के रूप में प्रस्तुत करके अग्निबीज उस बोझ को आसान ही नहीं
बनाता वरन् आपको पूरे समाज की वर्ग विसंगतियों के बीच ला खड़ा
करता है "।[1]

लेखक ने उपन्यास में हरिजनों तथा उनके बच्चों की दयनीय
दशा का वर्णन किया है। लेखक ने ग्राम्यांचल में गांधीवादी विचार धारा
की व्यापक और प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। गाँव के ये पिछड़े
और दीनहीन व्यक्ति चरखे और तकली से सूत कातना चाहते हैं लेकिन इन
लोगों को भूपतियों के बेगार से छुट्टी नहीं मिल पाती। भूपतियों द्वारा
उनका शोषण किया जाता है। लेखक ने उपन्यास की नारी पात्र भागो
बहिन के द्वारा इस तथ्यात्मकता की ओर लोगों का आकर्षित किया है।
" आदर्श कोरी कल्पना की नींव पर नहीं टिक सकता। आप बस यह मानकर
चलते हैं कि आदमी को ऐसा करना चाहिये। हरिजन यदि सूत कातें तो
उनकी बहुत सी समस्याएं सुलझ जायेंगी। पर आपने कभी यह भी सोचा
है कि वे कब कातें, कैसे कातें सुबह से शाम तक उनका पूरा परिवार भूपतियों
के दरवाजे पर खटने के लिए बाध्य है। अपने बच्चों को स्कूल भेजने पर
उनकी पिटाई इसलिए कीजाती है कि सारे हरिजन बच्चे स्कूल चले जायेंगे
तो मालिकों के जानवर कौन चरायेगा" ।[2]

1- अग्निबीज मार्कण्डेय, भूमिका, प्रकाशक का वक्तव्य।
2- अग्निबीज मार्कण्डेय, पृ० सं० ।। ।

यह उपन्यास ग्राम्यांचल के लोक वातावरण में राष्ट्रीय भावना का उदय तथा जन जागरण का विकास समसामयिक जीवन यथार्थ की सजीव झांकी प्रस्तुत करता है । उपन्यास की कथा वस्तु में यदि एक ओर देश के उत्थान के लिए ग्रामीण संदर्भों में उभरते पात्रों की राजनीतिक और सामाजिक चेतना का चित्रण है तो दूसरी ओर उस अंचल की लोकतात्विक चेतना की भी आंचलिक पृष्ठभूमि में अभिव्यक्ति हुई है।

वस्तुतः मार्कण्डेय जी ने 'अग्नि बीज' की कथावस्तु में ग्रामीण परिवेश के अन्तर्गत 53 - 54 के आस पास के ग्रामीण संदर्भों में उभरती सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना का निरूपण किया है ।अंचल की बोली में नित्य प्रति प्रयुक्त होने वाले शब्दों के द्वारा जिस अपनत्व भावना की अभिव्यक्ति उपन्यास की कथावस्तु में हुयी है वह आंचलिकता की सिद्धि के लिए महत्वपूर्ण तथा सहयोगी संदर्भ है, अस्तु "अग्निबीज" एक नवीन आंचलिक उपन्यास है ।

"फागुन के दिन चार "

बेचन शर्मा उग्र का एक आंचलिक उपन्यास है । इस उपन्यास के लेखक ने बम्बई और काशी जनपद जैसे दो मुख्य स्थानों में घटित घटनाओं को उपन्यास का विषय बनाया है। उपन्यास का नायक जागरूक है जो उपन्यास की सभी बिखरी कथाओं को एक सूत्रता प्रदान करता है । वह काशी में स्थित भदैनी का निवासी है । काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से एम0 ए0 पास उच्च कुलीन रत्नशंकर का नाती तथा एक भटका हुआ युवक है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध काशी खंड तक ही सीमित है जिसमें पैंतीस वर्ष पहले की काशी के आचार विचार तथा उसके घाटों पर बुढ़वामंगल को जमने वाली भीड़ बजरों पर नाच और घूमना आदि स्थानीय वातावरण उपन्यास के माध्यम से सजीव हो उठे हैं जिसे ऐतिहासिक सत्य के रूपमें स्वीकार किया जा सकता है ।

उपन्यास के उत्तरार्द्ध में बम्बई के फिल्म जगत के घिनौने चित्र हैं,जो मिस मरियम रोज के माध्यम से उपस्थित किये गये है साथ ही लेखक ने राजनीति के माध्यम् से व्यंग चित्र भी खींचे है ।

भैरव प्रसाद गुप्त का " सत्ती मैया का चौरा" एक आंचलिक कृति है । इस उपन्यास में आजमगढ़ क्षेत्र के पास की घटना को उपन्यास में वर्णित किया है । उत्तर प्रदेश के इस अंचल की कुछ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याएं है । लेखक ने पूरे गाँव की आत्मा को एक परिवार की तीन पीढ़ियों की पीठिका पर चित्रित किया है ।

इसी प्रकार राजेन्द्र अवस्थी ने भी दो आंचलिक उपन्यास लिखे सूरज किरण की छाँव " और "जंगल के फूल " शैलेश मटियानी ने हौलदार" और बोरी वाली से बोरी बन्दर तक " मार्कण्डेय ने "सेमल के फूल " आदि उपन्यासों में आंचलिक जीवन को चित्रित किया है। हिमालय कथा माला पर आधारित "मुक्तावली" [सन् 1958] और "नेपाल की वो बेटी" [सन् 1959] बलभद्र ठाकुर के दो आंचलिक उपन्यास है।

"मुक्तावली " में मणिपुर अंचल को लिया गया है और लोक सांस्कृतिक स्तर पर नयी हवा और जनवादी चेतना की प्रतिष्ठा की गई है।

"नेपाल की वो बेटी "

इस उपन्यास में नेपाली डुटियाल जाति का चित्रण है। इसमें नेपाली वीरांगना हेमा का चित्रण नवोदित स्वाधीन चेतना के संदर्भ में किया गया है। सामन्तवादी शासन के लौह पाश से जकड़ा जहाँ एक ओर नेपाली जनजीवन एक दम जड़वत है वहीं दूसरी ओर हेमा की प्रगतिशील और निर्भीक साहसिकता समस्त प्रकार की जकड़न को चुनौती देती दिखाई पड़ती हैं।

लोक संस्कृति

लोक संस्कृति पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि "संस्कृति" शब्द क्या है इस विषय पर विचार करें । संस्कृति और सभ्यता ये दो भिन्न-भिन्न शब्द हैं, किन्तु प्रायः इन दोनों का एक साथ ही प्रयोग होता है । संस्कृति तथा सभ्यता के तत्व भिन्न-भिन्न होते हैं यद्यपि दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । संसार के सभी विकासशील देशों में औद्योगिक सभ्यता एवं व्यवस्था का विकास हो चुका है किन्तु उन देशों की संस्कृति भिन्न- भिन्न है । तात्पर्य यह है कि सभ्यतः एकरूपता की ओर उन्मुख होती है, और संस्कृति भिन्नता की ओर । सभ्यता का सम्बन्ध युग की आर्थिक व्यवस्था से है किन्तु संस्कृति धर्म, साहित्य, कला विचार प्रक्रिया आदि से जुड़ी होती है । अतः जिन देशों में आर्थिक उपार्जन के साधन एक से हैं वहाँ की सभ्यतः मूलतः समान हो सकती है, किन्तु प्रत्येक राष्ट्र, प्रदेश, समाज तथा प्रत्येक परिवार और मनुष्य की संस्कृति भिन्न हो सकती है । अभिप्राय यह है कि संस्कृति एक व्यक्ति तक सीमित होती है । प्राचीनकाल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है, यहाँ की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान रही है । अतः गाँव ही संस्कृति काकेन्द्र था । किन्तु औद्योगिक व्यवस्था में सभ्यता एवं संस्कृति का बिन्दु नगर हो जाता है । इसलिए कहा जा सकता है कि औद्योगिक व्यवस्था से दो सांस्कृतिक केन्द्र दो सांस्कृतिक वर्ग तथा दो संस्कृतियाँ सामने आयीं शहरी एवं ग्रामीण ।

सांस्कृतिक मूल्यों को उच्च-वर्ग प्रतिष्ठित करता रहा है, किन्तु सांस्कृतिक मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा शिक्षित मध्यम वर्ग ही साहित्य, कला एवं दर्शन के माध्यम से करता है । उस मध्यमवर्ग के सहयोग के बिना उच्च वर्ग सांस्कृतिक नियंत्रण नहीं कर सकता है ।

'संस्कृति' शब्द की व्याख्या अनेकों प्रकार से की गयी है । इसके साधारण से लेकर शास्त्रीय प्रयोग तक विवाद का विषय बने हुए हैं ।

इस विषय में सबसे बड़ा द्वंद संस्कृति और सभ्यता के अर्थ को लेकर है । "टायलर " ने "गुस्टाफ" द्वारा पहली बार प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अभिप्रायों को गठित कर आज के सामाजिक विज्ञानों को एक नयी संकल्पना दी । अपनी पुस्तक में वे कहीं संस्कृति कहीं सभ्यता और कहीं संस्कृति या सभ्यता जैसे प्रयोग करते हैं, किन्तु आगे चलकर मानव विज्ञान दर्शन आदि में इनके पार्थक्य की स्वीकृति पर बल दिया जाने लगा। यह बात अलग है कि साधारण प्रयोगों में तथा कभी-कभी उच्चतर ज्ञान के क्षेत्र में लेखकों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के कारण इनका एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग बना हुआ है ।

साधारणतः संस्कृति द्वारा जिस विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गयी है, वह एक सीमा तक सभ्यता द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है। इसलिए डॉ0 देवराज की तरह एक झटके में यह नहीं कह दिया जा सकता कि संस्कृति" मानव व्यक्तित्व और जीवन को समृद्ध

करने वाली चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियाएं या मूल्यों का अधिष्ठान मात्र हैं " ।[1] डॉ0 देवराज जो कुछ संस्कृति के विषय में कहते हैं वही सभ्यता शब्द के सम्बन्ध में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहीं जा सकती है ।

इस विवाद से छुटकारा पाने का उपाय यही है कि "टायलर" द्वारा स्वीकृत संस्कृति की व्यापक व्याख्या को स्वीकार कर लिया जाय । "टायलर" इसे {संस्कृति को} " वह जटिल इकाई मानते हैं जिसके अन्तर्गत ज्ञान, विश्वास, कला, आचार विधि, रीति और अन्य वे क्षमताएं और अभ्यास सम्मिलित हैं जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है "[2] । इस प्रकार वे ये प्रतिपादित करते हैं कि संस्कृति सामाजिक परम्परा से एकत्रित चिन्तन, व्यवहार, और अनुभव अर्थात् मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार की समस्त रीतियों एवं रिवाजों का एक रूप है ।

मैलिनोवस्की ने संस्कृति की जो परिभाषा दी है वह उनके पूर्ववर्ती मानव वैज्ञानिकों की विचार धारा से भिन्न होते हुये भी टायलर की परिभाषा से बहुत भिन्न नहीं है ।

"संस्कृति के अन्तर्गत पैतृक शिल्प, तथ्यों वस्तुओं तकनीकी प्रक्रियाओं धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है ।"[3]

1- साहित्यकोश - 1958 ई0 प्रथम संस्करण
2- लोक साहित्य और संस्कृति - डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद पृ0सं0 83
3- लोक साहित्य और संस्कृति -डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद पृ0सं0 83

वस्तुतः मानव के विचार प्रयोजन और मूल्य ही उसके क्रियात्मक व्यवहारों और उपलब्धियों का रूप ग्रहण करते हैं।अतः संस्कृति के दो भागों में विभक्त कर देखने की आवश्यकता है व्यक्त और अव्यक्त, आन्तरिक और बाह्य ।

व्यक्त और बाह्य संस्कृति रीतियों प्रथाओं, आचारों, कलाओं और विभिन्न प्रकार के शिल्प तथ्यों की समष्टि है, तो अव्यक्त और आन्तरिक संस्कृति इन रूपों में मूर्त होने वाले मूल्यों और प्रयोजनों का समाहार ।

संस्कृति मानव समाज के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता होती है । इसी के माध्यम से मनुष्य परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है । इस संस्कृति का वास्तविक अनुभव मनुष्य को तभी होता है,जब वह अपने से पृथक संस्कृतियों के सम्पर्क में आता है । हर संस्कृति का अपना विशिष्ट चरित्र होता है और वह उसे दूसरी संस्कृति से पृथक कर देता है ।

समाज में कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो बिना मीनमेख के परम्परा को सहज क्रिया के रूप में स्वीकार कर लेते हैं और दूसरे व्यक्ति जो इस परम्परा के प्रति सजग और उसके पक्ष विशेष में अभिरुचि रखने वाले होते हैं । ऐसे व्यक्तियों को परम्परा का सक्रिय वाहक कहा जाता है । वे परम्परा का अंधानुकरण नहीं करते बल्कि उसका अनुसरण करते हुए भी उनकी दृष्टि रचनात्मक होती है ।

लोक-साहित्य और संस्कृति -

लोक साहित्य में संस्कृति के अंकन का तात्पर्य यह नहीं कि लोक साहित्य संस्कृति के अध्ययन का माप दंड है। इसमें संस्कृति का प्रतिफलन सदैव ज्यों का त्यों नहीं होता है। कभी इसमें संस्कृति का यथावत अंकन होता है, कभी छद्म तथा कभी रूपान्तरित एवं कभी विपर्यस्त, इसी लिए उचित तो यह है कि लोकसाहित्य के माध्यम् से किसी संस्कृति के प्रत्यक्ष अवलोकन के प्राप्य तत्वों से उसकी संगति की परीक्षा करें । ऐसा न करने पर उसके सम्बन्ध में बहुत से भ्रान्त निर्णयों को सत्यमान लेने की गलती की जा सकती है ।

कोई भी लोकसाहित्य ऐसा नहीं है जिसमें परस्पर विरोधी कहावतों का अस्तित्व न हो । अतः हम कह सकते हैं, कहावतें मानव के विचारों के कोष हैं । इसलिए उनमें आपस में विरोध मिलता है । यह भी कहा जा सकता है कि उनमें आपस में विरोध का कारण उनकी संक्षिप्तता है। उनका पारिस्परिक विरोध मुख्यतः सामाजिक जीवन में आदर्श और यथार्थ में संगति के अभाव के कारण उत्पन्न होता है, और कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसमें दोनो में शत प्रतिशत संगति विद्यमान हो ।

लोक शब्द की व्याख्या -

लोक संस्कृति पर अलग से विचार करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि लोक तथा संस्कृति इन दोनों शब्दों पर अर्थगत थोड़ा बहुत

प्रकाश अवश्य डाला जाए । संस्कृति क्या है इस विषय पर पिछले पृष्ठों पर विचार प्रस्तुत किया जा चुका है । अब "लोक" शब्द पर भी थोड़ा विचार करना और उसके विभिन्न अर्थ जो विद्वानों और साहित्यकारों द्वारा लिखे गये हैं उन पर भी प्रकाश डालना एक शोधकर्त्री के लिए मेरे विचार से आवश्यक है ।

लोक और जन ये देखने में दो भिन्न-भिन्न शब्द है किन्तु सामान्यतः इन दोनों का अर्थ एक ही है । सम्पूर्ण जन साहित्य की आधार भूमि लोक संस्कृति से ही प्रेरणा लेती है । अतः लोक संस्कृति एवं जन साहित्य का बड़ा निकट का सम्बन्ध है । लोक संस्कृति की आधार शिला पर ही जन साहित्य का भवन खड़ा होता है । यहाँ तक कि जन का प्रयोग भी साधारण जनता के सम्बन्ध में और लोक का भी सामान्य जन के अर्थ में हुआ है । व्यास जी ने महाभारत में लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के ही अर्थ में किया है -

"अज्ञान तिमिरांधस्य लोकस्य तुविचेष्टतः।
ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्।"[1]

इसी तरह गीता में लोक संग्रह शब्द का प्रयोग भी साधारण जन के लिए ही किया गया है -

---

1- महाभारत आ0 पं0 1/84 पृ0 सं0 23

"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोक संग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि" ।।[1]

[गीता]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने "लोक" शब्द का विश्लेषण करते हुए बताया है कि -" लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि गाँवों और नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है " । ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वालों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृतिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं । और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएं आवश्यक होती हैं उन्हें उत्पन्न करते हैं ।"[2]

यदि डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की बात को अपने शब्दों में व्यक्त करें तो कह सकते हैं कि लोक" शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है जो अकृतिम है और जो वास्तविकता के अधिक निकट है तथा सरल जीवन के अभ्यस्त होते हैं । जिनमें दिखावे एवं टीप टाप रहने और प्रदर्शन की भावना नहीं होती और जो उच्च एवं धन सम्पन्न वर्ग की आवश्यकता की वस्तुएं अपनी मेहनत मजूरी से उत्पन्न करते हैं ।

1- गीता - 3/20
2- जनपद, वर्ष 1, अंक 1, पृष्ठ0 65 ।

लोक साहित्य आदिम समाज साहित्य की तुलना में अधिक विकसित समाज का साहित्य है। लेकिन फिर भी यह बात विशेष महत्व की है कि लोक साहित्य में भी आदिम मानव समाज के तत्व मिलते हैं।

भारतीय दृष्टिकोण -

लोक शब्द की व्याख्या के पश्चात् इसके शब्दगत अर्थ का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है।

भारतीय साहित्य में इस शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से तो इसके अनेक रूप वैयाकरणों ने बताए हैं। साथ ही साहित्य में लोक का प्रयोग भी अनेकार्थी है। "ऋग्वेद पुरुष सूक्त में लोक शब्द का प्रयोग जीव तथा स्थान दोनों के लिए हुआ है"।[1] पाणिनी कृत "अष्टाध्यायी" में पतंजलि के महाभाष्य में तथा मुनि भरत के नाट्य शास्त्र में लोक शब्द का प्रयोग शास्त्रेतर तथा वेदेतर और सामान्य जन के सम्बन्ध में हुआ है। लोक - परपाटी का अर्थ लोक में साधारण मानव वर्ग में प्रचलित परिपाटी से हैं। गीता में लोक से इतर वेद की सत्ता स्वीकार भी की गयी है। गीता में प्रयुक्त लोक संग्रह शब्द का तात्पर्य भी साधारण जनता के आचरण व्यवहार तथा आदर्श से है। प्राकृत तथा अपभ्रंश में लोक जनता तथा लोक अपवाद शब्द भी साधारण जनता की ओर ही संकेत करते हैं।

1- ऋग्वेद, 3,53, 12

संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य में भी "लोक" शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। हिन्दी सन्त साहित्य में कहीं तो लोक का प्रयोग पृथ्वी एवं मृत्यु लोक के सन्दर्भ में हुआ है कहीं लोक का प्रयोग सारे संसार के अर्थ में भी व्यापक रूप से किया गया है। कहीं लोक शब्द लोक परम्परा का अर्थ देता है। कबीर लोक को लोक वेद की परम्परा में बहता हुआ मानते है और सतगुरू को ही उद्धार करने वाला मानते है।

"पीछे लागा जाई था लोक वेद के साथ"।

"लोक'शब्द का प्रयोग जन-साधारण एवं जन समाज के भी अर्थ किया गया है।

हिन्दी भक्ति साहित्य में भी 'लोक' शब्द साधारणतः उपर्युक्त अर्थों का ही परिचय देते हैं। तुलसीदास साहित्य में "लोक "शब्द स्थान वाची प्रयोगों के अतिरिक्त लोक का प्रयोग वेद परिपाटी के विपरीत लोक परिपाटी अर्थात् साधारण मानव वर्ग की परिपाटी के सम्बन्ध में भी अनेक बार हुआ है।

गोस्वामी जी योग्य स्वामी की रीति बताते हुए लिखते हैं -

लोकहु वेद सुसाहिब रीती।
विनय सुनत पहिचानत प्रीती।[1]

1- गोस्वामी तुलसीदास - रामचरित मानस पृ०सं० 273।

प्रथाएं, विश्वास, अनुष्ठान आदि ही लोक संस्कृति के केन्द्र हैं । विस्तृत अर्थ में लोक संस्कृति के अन्तर्गत वे सारी परम्परागत विश्वास रीति रिवाज आजायेंगे जो मानव समूहगत हैं जिस पर किसी का प्रभाव नहीं दिखाया जा सकता है ।

आधुनिक समाज में लोक संस्कृति को नागरिक संस्कृति से अलग करने वाला यह तत्व परम्परा का ही लोक तत्व है । जो प्रथाओं, अनुष्ठान, विश्वास आदि को जन्म देता है। अथवा यह कहा जा सकता है कि सभ्य समाज में पाये जाने वाले ये अनुष्ठान और प्रथाओं के परम्परागत तत्व ही हैं जो लोक संस्कृति की स्थिति की सूचना देते हैं ।

इस प्रकार लोक संस्कृति में या लोक वार्ता में परम्परा का तत्व बहुत अधिक प्रधान है । इसमें आदि मानव की सीधी तथा वास्तविक अभिव्यक्ति मिलती है ।

लोक संस्कृति का दायरा या क्षेत्र काफी विशाल है । जैसा कि मैरिट ने इसके क्षेत्र के सम्बन्ध में बताते हुए लिखा है -"इसके अन्तर्गत उस समस्त जन संस्कृति का समावेश माना जा सकता है जो पौरोहित्य, धर्म तथा इतिहास में परिणति नहीं पा सकी है जो सदा स्वतंवर्द्धित "।[1]

इस प्रकार लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत आने वाली समस्त अभिव्यक्तियाँ लोक तत्व युक्त होंगी । सोफिया बर्न ने लोक वार्ता का क्षेत्र निम्न वर्गों द्वारा स्पष्ट किया है ।

1- भारतेन्दु युगीन हिन्दी साहित्य में लोकतत्व- पृ०सं० 32 /

1- लोक विश्वास और अंध परम्पराएँ

2- रीति-रिवाज तथा प्रथाएं

3- लोक साहित्य

इन तत्वों के आधार पर ही हम जन मानस के हर्ष विषाद सुख-दुख तथा उसकी अनुभूतियों का दर्शन करते हैं । जन संस्कृति और लोक संस्कृति का अनुमान लगा पाते हैं इन्हीं लोक तत्वों में साधारण मानव का स्वर गूँजता है ।

<u>लोक जीवन और लोक संस्कृति -</u>

साहित्य एक विस्तृत विषय है, और लोक संस्कृति का क्षेत्र भी कम विस्तृत नहीं है । लोक संस्कृति से तात्पर्य साधारणतया जन संस्कृति जनपदीय संस्कृति या ग्रामीण संस्कृति से होता है । यह एक ऐसी संस्कृति है जिसका अपना वैशिष्टय होता है साथ ही जो शास्त्रीय नहीं है । एक ऐसे प्रदेश की संस्कृति जिसमें शिक्षा की किरणें आज तक नहीं पहुँच पाई है, नागरिक या सभ्य संस्कृति के प्रवाह से जो अछूती है, लेखन कला का जिसे आज तक ज्ञान नहीं हुआ है, केवल मौखिक रूप से ही जिस संस्कृति में भावों का आदान प्रदान होता है उसकी समस्त अभिव्यक्तियाँ लोक-संस्कृति का विषय होगीं ।

यदि साहित्य को मानव मन का दर्पण कहें तो उसमें परिव्याप्त लोक-संस्कृति को उसकी सूक्ष्मतम् अनुभूतियों का अतरंग इन्द्र धनुषी आभा का

मूल कहा जाना उचित ही होगा ।

अब हमलोग जीवन और संस्कृति के विषय में विचार करते हैं तो हमें सर्वप्रथम उन रूढ़ियों के मर्म को जान लेने की आवश्यकता पड़ती है जो जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समाई हुई है और जो उनकी संस्कृति की नीव या आधार है ।

जिन बातों की मानव जीवन से निकटता है वे संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं । लोक जीवन का संस्कृतियों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । इन संस्कृतियों के अनेक रूप हैं ।

संस्कृति एक अनेकार्थी शब्द है। वैदिक विचार धारा के अनुसार जीवन के सोलह संस्कारों से युक्त मानव संस्कृत कहा जाता है और संस्कृत से युक्त तत्व है संस्कृति । इन्हीं संस्कारों की परिणति किसी रूप में जब एक स्थायित्व ग्रहण कर लेती है, तो वह भी संस्कृति ही कही जाति है ।

"संस्कृति किसी मानव समाज की दीर्घ साधना की पदार्थ माध्यम से सूक्ष्म परिणति है। सभ्यता के विकास में ऐतिहासिक परम्पराओं के अवशेष अपना अस्तित्व तो बनाए रखते हैं पर अपना अर्थ खोने लगते हैं । जैसा मानव विज्ञान के अन्य तत्वों के साथ होता है । संस्कृति के अवशेष तत्व अपना अर्थ बदलने लगते हैं । दूसरे अर्थ को ग्रहण करते-करते तदनरूप कुछ रूप बदलने लगते है। इस मानव विकास में संस्कृति दो प्रवृत्तियों से संयुक्त होकर बनती है ।

पहली मूल परम्परा को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति

दूसरी परम्परा में संशोधन सम्वर्द्धन की प्रवृत्ति

ये दोनों ही आपस में विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं पर सांस्कृतिक तत्वों की विशेषता है कि प्रत्येक धारा अपने-अपने मूल तत्व को उस नवीन अन्विति में भी पूर्ण लुप्त नहीं होने देती'।

साहित्य में लोक-संस्कृति का विस्तार इतना गहरा और सूक्ष्म है कि उसमें सदैव विद्यमान रहने पर भी वह प्रायः प्रतीत नहीं होता। जन जीवन के अन्य व्यापारों की भाँति साहित्य में भी सहज अभिव्यंजना को महत्व दिया गया है। साहित्य और लोक संस्कृति एक अविभाज्य तत्व है । साहित्य में लोक संस्कृति का फैलाव एक चिरस्थाई एवं शाश्वत सत्य है ।

उपन्यास और लोक संस्कृति का चोलीदामन का साथ है । उपन्यास लोक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में झाँकने की शक्ति रखता है । वस्तुतः वह लोक जीवन का प्रतिबिम्ब है । उपन्यास का धरातल, आधार परम्परा की युगों की वह कथा समृद्धि है जिसमें मानव जीवन के तीनों तापों संतापों को सहन करने की क्षमता है। वस्तुतः उपन्यास कल्पना का माध्यम लेकर चलता है । किन्तु वह कल्पना मानव जीवन की सहज क्रियाओं से नजदीकी सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार उपन्यास शाश्वत् सत्य के शब्द चित्र प्रस्तुत करता है ।

<u>उपन्यासों में लोक संस्कृति -</u>

उपन्यासों में जो वर्ण्य विषय या कथा वस्तु पाई जाती है । वे सभी लोक संस्कृतिक तत्व के अध्ययन और शोध की सामग्री है। जब कभी साधारण जन लोकनृत्य और संगीत में तल्लीन हो जाता है या प्राचीन काल से चले आने वाले तीज त्योहार, मेलों, खेलों आदि में सुध बुध भूल जाता है, या हँसी खुशी में मग्न हो जाता है । एक वर्ष के बीतने पर नये वर्ष के आगमन पर त्योहारों के माध्यम से खुशियाँ मनाता है, तब हमें सदा से चले आने वाले अपने राज्य के मध्य लोक सांस्कृतिक तत्व के दर्शन होते हैं।

अट्ठारहवीं सदी की आलोचिका "क्लैरारीव ने लोक संस्कृति के विषय में यह अभिमत दिया है -

" उपन्यास लोक जीवन और लोक व्यवहारों का एक वास्तविक चित्र है । उसमें उस काल का भी प्रतिबिम्ब पाया जाता है जिसमें कि वह लिखा जाता है । इसके विपरीत रोमांस, अथवा मात्र कल्पना की रोमानी कृतियाँ एक ऐसे जीवन का वर्णन करती हैं जो न कभी रहा है और न कभी रहेगा ही । वे शानदार और ऊँची भाषा का प्रयोग करते हैं । किन्तु उपन्यास ऐसी बातों के साथ हमारी चिरपरिचित सम्बन्ध का ध्यान रखता है जो कि हमारी आँख के सामने हर दिन गुजरती हैं और जो कि हमारे मित्र के या हमारे जीवन में कभी भी घट सकती है और उपन्यास की सम्पूर्णता इस बात में है कि वह हर दृश्य को ऐसे सहज एवं सरल रूप

मै प्रस्तुत करे कि वे हमें इतने सम्भाव्य जान पड़े कि हम यह मानने को तैयार हो जॉय कि वह समग्र वर्णन सच्चा है "।[1]

आर०एस० स्कॉट जेम्स ने अपने ग्रन्थ " द मेकिंग आफ लिटरेचर में लिखा है -" उपन्यास सचमुच ही नित्य प्रति के साधारणतम् तथ्यों को छूता रहता है और वह इस कार्य में साहित्य की अन्य विधाओं से अधिक घनिष्ठता [लोक जीवन से अधिक सानिध्य] रखता है ।"[2]

उपन्यासों में लोक संस्कृति के तत्व होते हैं, और उनका उपन्यासों से गहरा सम्बन्ध है । उपन्यासों में लोक मानस अवतरित होता है । वस्तुतः उपन्यास की धारणा में हमें वैसा ही विकास मिलता है जैसा स्वयं मानव की धारणा में होता है । उपन्यासकार को अपने उपन्यास के लिए सम्पूर्ण सामग्री लोक क्षेत्र से लेनी पड़ती है और उनमें से उसे उस सामग्री को छाँटना पड़ता है जो अधिकाधिक गूढ़, अस्पष्ट और समस्या रूप में होती है। इस भूमि को वह त्याग नहीं सकता । इसलिए उपन्यासों में लोक सांस्कृतिक तत्वों का होना स्वाभाविक है ।

1- लोक साहित्य और संस्कृति -डॉ० दिनेश्वर प्रसाद-पृ०सं० 156 ।
2- आर० एस० स्कॉट जेम्स- "द मेकिंग ऑफ लिटरेचर"पृ० सं० 14 ।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में सामाजिक तत्व- भाग ।

{क} वर्ण व्यवस्था जाति पाँति और छुआ-छूत सम्बन्धी तत्व -

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में सामाजिक तत्वों के अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था जाति पाँति एवं अस्पृश्यता सम्बन्धी तत्वों का परम्परागत एवं परिवर्तित स्वरूप बड़ी ही सहजता के साथ निरूपित किया गया है । वर्ण व्यवस्था सामाजिकता का प्रमुख आधार है । भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में भी इसका प्रतिफलन स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। भारतीय ग्रामीण समाज में वर्ण व्यवस्था के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है । हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में वर्ण व्यवस्था के इन परिवर्तित स्वरूपों को उद्घाटित कियागया है ।

ब्राह्मणों का समाज में सर्वोपरि स्थान था । ब्राह्मण लोग दूसरी जाति वालों के साथ भोजन करना भी पसन्द नहीं करते थे हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वर नाथ "रेणु" के शब्दों में -

" बामनों ने तो साफ इनकार कर दिया है । यदि बामनों के लिए अलग प्रबंध नहीं हुआ तो सरवतंप्पटन में नहीं आयेंगे "[1] ।

देवताओं के पूजा पाठ, मंदिरों में भजन, पूजन, धर्म तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्य ब्राह्मणों के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते थे किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के

1- फणीश्वर नाथ रेणु - मैला -आंचल पृ0 सं0 27 ।

उपरान्त ग्रामीण समाज में ब्राह्मण वर्ग कीउच्च परिकल्पना का विशेष महत्व नहीं रह गया । धर्म के स्थान पर अर्थ की प्रधानता बढ़ गयी । हिन्दी के आंचलिक उपन्यास"लोक- परलोक" में ठाकुर विक्रम सिंह अर्थलोलुपता से प्रेरित होकर धर्म के नाम पर माल खाने वालों के सम्बन्ध में कहते हैं –

" हम सब मिल जाये तो इन बामनों को माता के मंदिर से निकाल दें । छः हजार की आमदनी है बेईमानत, और ठाकुरों में रुपया बट जाये तो बहुत से घर न पलें क्यों ऐसे बैरे खाएँ ? मैं तो जब किसी बामन को देखता हूँ तो देह में आग लग जाती है । ये साले बिना बात के हमारा माल चरते हैं "[1] ।

" भोजन होय तो बामनों को दान का मौका आये तो ये लें । मैं तुमसे पूछता हूँ माता का मंदिर ठाकुरों का है कि नहीं ? जितना चढ़ावा चढ़े वह सब ठाकुरों को मिलना चाहिये । लेकिन बिरचो खाएँ तो बे बामन और हम लो टुकुर-टुकुर देखो रहते हैं ।"[2]

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में भारत वर्ष के विविध ग्रामीण अंचलों में वर्ण व्यवस्था के इन परिवर्तित स्वरूपों का प्रतिफलन स्थान-स्थान पर किया गया है ।

1- उदय शंकर भट्ट - लोक-परलोक "पृ0 सं0 27 ।

2- उदय शंकर भट्ट - लोक-परलोक पृ0 सं0 24 ।

उदय – शंकर भट्ट ने अपने आंचलिक उपन्यास "लोक परलोक" में परम्परा से चले आ रहे वर्ण व्यवस्था के परिवर्तित स्वरूप का सर्वाधिक वर्णन किया है। अतीत में पदमपुरी ग्राम [जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गंगा नदी के तट पर स्थित है] में ब्राह्मण एवं क्षत्रीय दो वर्णों का आधिपत्य था परन्तु समसामयिक युग में ये दोनों वर्ण जर्जर अवस्था में जीवन यापन कर रहे हैं। उपन्यासकार के शब्दों में –

"जमींदार ठाकुरों का किसी समय बड़ा दबदबा था। उनसे पहले ब्राह्मणों का भी काफी प्रभाव रहा है। पर अब दोनों ब्राह्मण और ठाकुर यौवन बीते बुढ़ापे की तरह लड़खड़ा रहे हैं "[1]।

वर्ण व्यवस्था मे एक ओर जहाँ ब्राह्मण वर्ग का सम्मान घटता जा रहा है वही दूसरी ओर शूद्र वर्ण की सामाजिक स्थिति में अभिवृद्धि हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण सामाजिक वर्ण व्यवस्था के परम्परागत निम्नस्तरीय वर्ण के अन्य वर्गों में अपने को उच्च मानने एवं प्रदर्शित करने की भावना उत्पन्न हुई। हिन्दी के आंचलिक उपन्यास कारों ने अपने उपन्यास जगत में इस निम्न वर्ग में उद्बुद्ध नवीन चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की।

लोक – परलोक उपन्यास में जमींदार की पत्नी मेहतरानी को किसी बात पर डाँट फटकार लगाती है तो मेहतरानी तेवर बदल कर उत्तर देती है –

1– उदय शंकर भट्ट –" लोक परलोक" पृ0 सं0 5 ।

" देखो जी, काम करते, पैसा लेते तुमारी ऐसान नाएं । खुशी होय, तो बेर गरज परे तो काम कराओ चाहें मति कराओ । हम चले " ।[1]

" रोटी लग गई है इन नीचन कूं । जमींदार बोहरे की औरत ने हाथ बढ़ा-बढ़ा कर कहा तो बड़बड़ाती जमादारिन कूड़े का ढेर छोड़कर चली गयी और कह गयी नीच होंगे तुम जो मुफ्त को ब्याज खाते, और भीख माँगतो, हम नाय अब नीच "[2]।

इस नवीन चेतना की अभिव्यक्ति को भट्ट जी ने अपने उपन्यास में जगह-जगह उद्घाटित किया है । उदय शंकर भट्ट के शब्दों में -

" सब वर्गों में कोई चेतना थी तो केवल अपने को बड़ा मानने में । लोधे औरअहीर अपने को क्षत्रीय कहलाना पंसद करते । बढ़ई विश्वकर्मा ब्राह्मण बनकर जनेऊ पहनने लगे । चमार जाटव कहला कर गर्व का अनुभव करते । एक तरह से सारे गाँव में बुराई का विष फैल गया था ।[3]

वस्तुतः आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए इस निम्न वर्ग को सदैव ही शोषण का शिकार बनना पड़ा है। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त इस वर्ग में नवीन चेतना और जागृति के पीछे अनेकों समाज सुधारकों का एवं भारत सरकार का विशेष हाथ रहा है । गांधी जी द्वारा चलाये गये अछूतोंद्धार आन्दोलन ने भी इस नवीन जागृति में सक्रिय भूमिका निभायी है । भारतीय

1- उदय शंकर भट्ट - लोक परलोक " पृ०सं० 109 ।
2- उदय शंकर भट्ट - लोक परलोक " पृ० सं० 109 ।
3- उदय शंकर भट्ट-" लोक परलोक " पृ० सं० 117 ।

संविधान में इस वर्ग के विकास के लिए अनेकों सुविधाएं प्रदान की गयी हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत सरकार ने इस दलित एवं पिछड़े वर्ग को सब वर्गों के समान उपर उठाने का निरन्तर प्रयास किया है। जिसके परिणाम स्वरूप अनेकों वर्षों से शूद्र कही जाने वाली ये जाति आज प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है।

" धरती परिकथा" की हरिजन मलारी पढ़ लिख कर अध्यापिका के पद को प्राप्त कर परम्परागत ब्राह्मण का कार्य अपने हाथों में ले लेती है"[1]। 'आधा गाँव' उपन्यास में परसराम (हरिजन) एम0एल0 ए0 होकर परम्परागत क्षत्रीय (प्रशासक) का कार्य करता है "।[2]

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि समसामयिक भारतीय ग्रामीण समाज में परम्परा से चले आ रहे वर्ण व्यवस्था के बंधन टूट रहे हैं तथा उनके स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है साथ ही ग्रामीण जनता समाज में समानता केअधिकार को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो रही है।

जाति- पांति एवं अस्पृश्यता सम्बन्धी तत्व -

वर्ण व्यवस्था की भांति जाति- पांतिएवं छुआछूत सम्बन्धी तत्वों का भी परम्परागत एवं परिवर्तित स्वरूप हिन्दी के सभी आंचलिक उपन्यासों में बड़ी ही सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ देखा जा सकता है। भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार जाति व्यवस्था ही है। इन ग्रामीण

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" - धरतीपरिकथा-पृ0 सं0 135 ।
2- राही मासूम रज़ा " आधागाँव " पृ0सं0 351 ।

समाज की जातियों में अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध पाये जाते हैं। जिसमें प्रमुख भोजन सम्बन्धी, विवाह सम्बन्धी एवं अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्ध हैं। उच्च जाति वाले व्यक्ति निम्न जाति वाले व्यक्तियों के साथ भोजन करना अपनी जाति का अपमान समझते हैं।

'मैला आँचल' उपन्यास में महंथ सेवा दास के भंडारा करने पर बाभनों ने तो ग्वालों के साथ खाने से साफ इनकार कर दिया साथ ही "सिपाहिया टोला के लोग भी नहीं खायेंगे। हीबरन सिंघ का बेटा आकार कह गया ग्वाला लोगों के साथ एक पंगत में बैठ कर नहीं खायेंगे ..."[1]।

यद्यपि नागरिक समाज में भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध का कोई महत्व नहीं है परन्तु ग्रामीण समाज में ये प्रतिबन्ध विशेष महत्व रखता है और यदि किसी जाति के व्यक्ति द्वारा यह प्रतिबन्ध टूटता है तो उनका समाज उन्हें दंडित करके बिरादरी से बहिष्कृत करता है। इसका उदाहरण 'मैला आँचल' उपन्यास में दृष्टव्य है। "रेणु" जी के शब्दों में -

"बिरंची एक बार राज की गवाही देने के लिए कचहरी गया था तो तहसीलदार ने पूड़ी जिलेबी खिलाई थी। गांव में न जाने कैसे ये हल्ला हो गया कि बिरंची ने तहसीलदार का जूठा खाया है। ...जनेऊ देने के लिए जाति के पंडित जी आये थे। बिरंची के सिर पर सात घंटे तक धेला सुपाड़ी रखने की सजा दी गयी थी। खालि सुपारी पर केला भर पानी।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -"मैला आँचल पृ० सं० 27।

जरा भी ढेला हिला एक बूँद भी पानी गिरा कि ऊपर से झाड़ू की मार । तहसीलदार क्या कर सकते हैं ? जाति बिरादरी का मामला है इसमें वे कुछ नहीं बोल सकते । आखिर पाँच रुपैया जुरमाना और जाति के पंडित जी को एक जोड़ा धोती देकर बिरंची ने अपना हुक्का पानी खुलवाया.... पुड़ी जिलेबी का स्वाद याद नहीं "[1] ।

ग्रामीण समाज की दृष्टि में जाति पाँति सनातनी चीज है इस बात के विषय में राम दरश मिश्र ने अपने आंचलिक उपन्यास" पानी के प्राचीर" में लिखा है -

"नीरू के विवाह के सम्बन्ध मे संध्या अपनी चाची से कहती है हाँ चाची आजकल पढ़े लिखे लोग दूसरी जाति में विवाह करते हैं, तुम्हें ताज्जुब क्यों होता है ? जाति पाँति तो झूठे बन्धन हैं । .... प्रत्युत्तर में चाची जाति व्यवस्था के पक्ष में कहती हैं -

"आज कल जो न हो जाय बिटिया । मगर नाही नीरू ऐसा नहीं करेगा । जाति-पाँति सनातनी चीज है वह किसी के तोड़े से टूटेगी भला ... उत्तर में नीरू भी कहता है -

"नहीं माँ मैं तो अपनी ही जाति की लड़की ले आऊँगा । वह बड़ी अच्छी है माँ वह छः में पढ़ती है। सुन्दर और सुशील लड़की है "।[2]

1- फणीश्वर नाथ- रेणु" -मैला आँचल" पृ0 सं0 28 ।
2- राम दरश मिश्र- पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 67 ।

मैला आँचल उपन्यास में मेरीगंज की ग्रामीण जनता में जाति व्यवस्था के प्रति विशेष लगाव है, जिसे रेणु जी ने वाणी प्रदान की है। उपन्यासकार के शब्दों में –

" मेरी गंज गाँव में प्रत्येक व्यक्ति को उसके नाम एवं जाति के साथ ही जाना जाता है। डॉ० प्रशांत कुमार मेरीगंज ग्राम में अनुसन्धान कार्य एवं जनता के उपचार हेतु आता है तो वहाँ की ग्रामीण जनता उससे नाम के साथ जाति पूछती है – डा० प्रशांत कुमार
जात ?

नाम पूछने के बाद ही लोग पूछते हैं जात ? जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाति के बारे में पूछा है। लेकिन यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है। प्रशांत कभी हँसकर कहता है– जाति ? डाक्टर। डाक्टर जाति डाक्टर। बंगाली या हिन्दुस्तानी? डॉ० जबाब दे देता है बिहारी। जाति बहुत बड़ी चीज है। जाति-पाँति न मानने वालों की भी जाति होती है। सिर्फ हिन्दू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण हैं ?.... कौन ब्राह्मण गोत्र क्या है ? मूल कौन है ?.... शहर में कोई किसी से जाति नहीं पूछता शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना। लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका काम नहीं चल सकता "[1]।

1– फणीश्वर नाथ "रेणु" – मैला आँचल पृ०सं० 51–52 ।

ग्रामीण समाज में रहने वाली जातियों की संख्या काफी है । ये जातियाँ आपस में एक दूसरे को निम्न जाति का समझती है और दूसरी जाति को नीचा दिखाने में गर्व का अनुभव करती है प्रत्येक जाति की अलग-अलग टोलियाँ होती है जो दूसरी जाति की टोली का शोषण करने के लिए क्रियाशील रहती है ।

मैला आँचल के उपन्यासकार फणीश्वर नाथ "रेणु " के शब्दों में-

"राजपूत और कायस्थों में पुश्तैनी मन-मुटाव और झगड़े होते आये हैं । ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते हैं । अभी कुछ दिनों से यादवों के दल ने भी जोर पकड़ा है । जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी । इसके विपरीत समय-समय पर यदुवंशियों ने खुली चुनौती दे दी । बात तूल पकड़ने लगी थी । दोनों ओर से लोग लगे हुए थे । यदुवंशियों की कायस्थ टोली के मुखिया तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक ने विश्वास दिलाया, मामले मुकदमें की पूरी पैरवी करेंगे । जमींदारी कचहरी के वकील बसन्तोबाबू कह रहे थे, यादवों को सरकार ने राजपूत मान लिया है । इसका मुकदमा तो धूम धाम से चलेगा । खुद वकील साहब कह रहे थे " [1] ।

ग्रामीण समाज में प्रत्येक जाति को अपनी ही जाति वालों में विवाह करने का विधान पाया जाता है किन्तु हिन्दी के आंचलिक उपन्यास

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" - "मैला आँचल "पृ०सं० 15 ।

साहित्य में जाति व्यवस्था के यौन सम्बन्धों की स्थापना सम्बन्धी प्रतिबन्ध एवं उसके खंडन के अनेक स्थल देखने को मिलते है ।

जल टूटता उपन्यास की पारवती और हंसिया जो क्रमशः ब्राह्मण एवं चमार जाति के हैं । दोनों विपरीत जाति के हैं परन्तु आयु में समानता होने के कारण ये दोनों छिपे-छिपे यौन सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे । किन्तु समाज के सामने आने पर पारबती उसे गाली देने लगती है । हसिया [चमार] को बदले में मिलती है - लात घूसों की पिटाई । जिस हंसिया के साथ थोड़ी देर पूर्व ही पारबती कहीं दूर दूसरी दुनियाँ में भाग जाना चाह रही थी वही हंसिया लात खा रहा था । जो आता था चार लात मारता था लेकिन वह कुछ नहीं बोल रहा था, चुपचाप लात खाता हुआ सारा का सारा इल्जाम अपने ऊपर ओढ़ रहा था"।

इसी उपन्यास में कुंज ब्राह्मण बदमी के साथ जो कि विधवा है समाज से छिप कर यौन क्षुधा तृप्त करता हुआ देखा जाता है ।

दूसरी जगह पर दल सिंगार जिसकी पत्नी मर चुकी है विधवा झगवा के साथ यौनसम्बन्ध स्थापित करते हुए उमाकांत पाठक द्वारा देख लिये जाते हैं ।-2

उमाकान्त जब इस बात का पर्दाफाश समाज के समक्ष करते हैं तो आक्रोश में आकर झगवा समाज की प्रतिष्ठित जाति के लोगों की बखिया उधेड़ने से नहीं चूकती । झगवा के शब्दों में -

---

1- डॉ0 राम दरश मिश्र- जल टूटता हुआ " पृ0 सं0 353।

2- डॉ0 रामदरश मिश्र - जलटूटता हुआ पृ0 सं0 88 ।

छिपे-छिपे तो यहाँ पर सब चलता है । कलवा क्या कोई कलवा है ? गाँव-गाँव मोहल्ले-मोहल्ले कलवा फैली हुई है, और ये बामन लोग किसे-किसे नहीं जानती मास्टर साब ? दीनदयाल बाबा से कोई छूठी हाँडो बची है ? जब से दुलहिन मरी है ये यह सब करते घूम रहे हैं । और मास्टर साब धीरे-धीरे लोग यह भी कहने लगे हैं कि अपने छोटे भाई की जोरू से भी .... [1] ।" पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में -

बैजनाथ अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए विधवा बिंदिया जो कि दूसरी जाति की है उसको रखैल बनाकर अपने पास रख लेता है किन्तु गाँव वाले बैजनाथ के इस कृत्य से क्षुब्ध हो जाते हैं परिणाम स्वरूप बैजनाथ पाँडे को गाँव वालों को भोज देना पड़ता है तब कहीं सब शान्त होते हैं[2] । उधर मुखिया बिंदिया चमारी के घर को तहस नहस करने का प्रयत्न करते है[3]। किन्तु गाँव के युवक गण समाज से छिपकर बिंदिया चामारी से यौनवासना शान्त करने के लिए आकुल रहते हैं । बैजनाथ पाँडे को चमार बनाने के आरोप को सुनकर तथा अपने घर को उजड़ता देखकर बिंदिया समाज के सामने आक्रोश में आकर सब बाते खुल्लमखुल्ला लोगों से बता देती है [4]।

अस्पृश्यता सम्बन्धी तत्व -

ग्रामीण सामाजिक जीवन में अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्ध के अनुसार

1- डा0 रामदरश मिश्र - "जलटूटता हुआ" पृ0सं0 325 ।
2- डॉ0 रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर पृ0सं0 82 ।
3- डॉ0 रामदरश मिश्र - " पानी के प्राचीर पृ0सं0 86 ।
4- डॉ0 रामदरश मिश्र - पानीके प्राचीर पृ0सं0 88 ।

उच्च जाति वाले, निम्न जाति वालों को स्पर्श नहीं करते और यदि कहीं उच्च जाति वाले निम्न जाति वालों को छू लेते हैं तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है तथा उनका जाति से बहिष्कार कर दिया जाता है । निम्न जाति वालों को अस्पृश्य समझ कर समाज उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखता है । हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्ध तथा उनके विघटन केअनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं ।

"रेणु" जी के "परती परिकथा" आंचलिक उपन्यास में सुवंश मलारी का जीवन बीमा करता है। सुवंश का बड़ा भाई उससे अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहार करता है। सुवंश को अपनी थाली में भोजन करने से इनकार कर देता है ।[1] हिन्दी के आंचलिक उपन्यास साहित्य में एक ओर अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्धों का प्रत्यक्ष स्वरूप देखने कोमिलता है तथा दूसरी ओर भोजन एवं यौन सम्बन्धी प्रतिबन्धों की भाँति अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी शिथिल होते हुए दिखायी देते हैं ।

आंचलिक उपन्यास 'मोगरा' में –" मंगलू ने अपने मकान के निचले हिस्से को चरनदास चमार को किराये में दे दिया है। यह चमार सरकार के बूते पर हमारे गाँव में मुर्गी पालेगा । राम राम इतना अंधेर अब मंगलू के घर कौन जायेगा ? ब्राह्मण पाड़ा में उसने चमार को बसा लिया । उसने छुआ छूत का विचार नहीं किया । उसके घर में मोटियारी बहिनी विवाह के लिए

1– फणीश्वर नाथ रेणु – "परती परिकथा" पृ०सं० 242 ।

बैठी हुई है । कल उसके घर में भात खाने के लिए कौन राजी होगा ? मनुष्य के उपर दुख तो आता है । पर उसे अपने धरम करम को बरकरार रखना चाहिये "[1] ।

मंगलू के विषय में गाँव के लोग आपस में जोर-जोर से बहस करते हुए टीका टिप्पणी करते हैं, जो कि गाँव वालों को यह मंजूर नहीं है कि अछूत चमार चरनदास उनके गाँव में मुर्गी पाले । परन्तु वास्तविकता तो यह है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार ने अछूतों के उद्धार के लिए संविधानमें हरिजनों को समता का अधिकार प्रदान किया है एवं उन्हें भी समाज में वे सारी सुविधाएं प्रदान की है जो अन्य जातियों को प्राप्त है ।

आंचलिक उपन्यासों में ऐसे अनेक स्थल हैं जिसमें अस्पृश्यता सम्बन्धी प्रतिबन्ध के विघटन का स्वरूप देखने को मिलता है ।

विश्व के अन्य देशों की भाँति भारतीय जनता को भी आर्थिक प्रगति के पथ पर लाने के लिए जातिवाद की सामाजिक समस्या को समाप्त करने के लिए एवं मानवीय समानता के आधार पर भारतीयों की सामाजिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए हमारी भारतीय सरकार ने समाज की दृष्टि में गिरी हुई इस अछूत एवं दलित जाति को शैक्षिक व्यावसायिक राजनैतिक एवं संवैधानिक सुविधाएँ प्रदान की हैं । सरकार द्वारा किये गये कार्यों के फलस्वरूप अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों में एक नवीन चेतना जागृत

1- शिवशंकर शुक्ल - मोंगरा पृष्ठ0 13 ।

हुई है। इस नवीन चेतना को हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में यथा स्थान अभिव्यक्त किया है ।

"माटी की महक " आंचलिक उपन्यास में सच्चिदानंद धूमकेतु ने सरकार द्वारा किये गये इस संशोधन को वाणी प्रदान की है -

"भारत को गणतंत्र राज्य घोषित किया गया । हमारा नया संविधान बना । संविधान के अनुसार हरिजनों को समता का अधिकार दिया गया । चौपाल में उनकी चर्चा होने लगी । हरिजनों के टोले में लटन संविधान द्वारा दिये गये अधिकारों की चर्चा करने लगा और जहाँ तक समझ पाया था लोगों को समझाने लगा ।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त संविधान में दलित वर्ग को समता का अधिकार प्राप्त होने के कारण एक ओर जहाँ उच्च वर्ग द्वारा हरिजनों का शोषण घट रहा है वहीं दूसरी ओर ये अछूत-वर्ग जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं । ब्राह्मण एवं ठाकुरों की उच्च स्थिति के ह्रास के विषय में "लोक परलोक आंचलिक उपन्यास में उदय शंकर भट्ट ने लिखा है -

"उधर से एक ठाकुर आया तो कहने लगा- अरे न कोई बामन है न ठाकुर, नायँ तो वाई ग्राम मे मजाल है कोई सिर तो उठाई जातो। खोदिके न गढि दये जाते सारे -[2] ।

इसी तरह के विचार मैला आँचल के कथाकार"रेणु जी ने भी व्यक्त किये हैं ।

1- सच्चिदानन्द धूमकेतु - माटी की महक" पृ0 सं0190 ।
2- उदय शंकर भट्ट - लोक परलोक" पृ0 सं0 81 ।

" अरे वो जमाना चला गया जब राजपूत और बामन टोली के लोग बात-बात में लात जूता चलाते थे । याद नहीं है ? एक बार टहलू पहलवान का गुरू घोड़ी पर चढ़कर आ रहा था। गाँव के अंदर यदि आता तो एक बात भी थी । गाँव के बाहर ही सिंघ जी ने घोड़ी पर से नीचे गिराकर जूतों से मारना शुरू कर दिया था - "साला दुसाध घोड़ी पर चढ़ेगा.. अब ये जमाना नही है "[1] ।

सरकार द्वारा हरिजनों को दी गयी सुविधाओं का परिणाम यह हो रहा है कि गाँवो में विजातिय विवाह युवक युवतियों द्वारा किये जाने पर ग्रामीण जनता सरकार के भय से इस विवाह का खुल कर विरोध नहीं कर पा रही है ।

"परती-परिकथा" उपन्यास की मलारी दि हरिजन ग्लोरी के साथ सुवंश विवाह कर लेता है - " जोर से मत बोलो । सुनाहै, सुवंश और मलारी के खिलाफ बोलने वालों को दरोगा साहब पकड़ कर चालान करेगें । .... रजिस्ट्री बिहा हुआ है किसी का इस गाँव में ? तब कैसे जानोगी सरकारी शादी का विधा [2] ।

इस नवीन जागृति को और अधिक बढ़ावा देने के लिए सरकार हरिजनों को पढ़ाने लिखाने के लिए अनेक सुविधाएं एवं पैसे दे रहीहै । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जन्म के आधार पर यदि किसी जाति के व्यक्तियों

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -मैला आंचल पृ0 सं0 157 ।

2- फणीश्वर नाथ "रेणु" -" परतीपरिकथा"पृ0सं0 346 ।

का उत्थान हुआ है तो वह हरिजनों का। "रेणु" जी के शब्दों में -
"लछुआतंत्र का अर्थ जनतंत्र कहो प्रजातंत्र कहो। लेकिन असल में है यह लछुआतंत्र[1]। न केवल शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें सरकार ने दलित वर्ग को दी है बल्कि भूमि संबंधी सुविधायें भी हरिजनों को प्राप्त है परिणाम स्वरूप गाँव में काम करने वाले हरिजन मजदूर भूमि के स्वामी भी बन रहे हैं साथ ही उनकी आर्थिक प्रगति के मार्ग खुल गये हैं।

'आधा-गाँव' उपन्यास का परसराम चमार एम०एल० ए बनकर गंगोली ग्राम की सर्वोतमुखी उन्नति एवं प्रगति के लिए कार्य कर रहा है। "आज परसराम जब ग्राम में आता है तो गाँव में उसका सबसे बड़ा दरबार होता है। और उसके दरबार में सभी लखपति भी फाके मस्त सदस्य साहिबान भी आते हैं। ये लोग कुर्सियों पर बैठते सिगरेट पीते और रेडियो सुनते।[2]

परसराम का पिता सुखराम जो किसी समय जमींदारों के जूते लात खाकर भी उनकी जी हुजूरी करता था आज दलित वर्ग के समता के अधिकार के सबूतों पर जमींदारों की खिलाफत करने पर उतर आया है।
राही मासूम रजा के शब्दों में -

और यही सुखराम जिसे कुर्सी पर भी ढंग से बैठना नहीं आता और जो सदैव गाँव के जमींदारों के लिए उनके जूते के समान रहा है आज जमींदारों पर मुकदमा चलाने के लिए नोटिस दे रहा है[3]।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -परती परिकथा "पृ०सं० 146।
2- राही मासूम रजा -आधा-गाँव पृ० सं० 351।
3- राही मासूम रजा - आधा-गाँव "पृ०सं० 330।

जाति पाँति एवं छुआ छूत के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप ही करैता गाँव के नवयुवक अब जाग उठे हैं उनके भीतर छिपी हुई चेतना उमड़ कर बाहर आ गयी है। उपन्यास कार शिव प्रसाद सिंह के शब्दो में –

" अब वह जमाना गया कि हम बड़े लोगों की जूती चाटने को ही अपना धर्म मानते थे "[1]।

ठीक इसी प्रकार के विचार चमार सिरिया के शब्दों में दृष्टव्य हैं "इज्जत तो सबकी एक है बाबू चाहे चमार की हो। चाहे ठाकुर की हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं हमें गरज है कि करते हैं आपको गरज है कि कराते है। इसका मतलब थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये।[2]

इन सम्पूर्ण आंचलिक उपन्यासों का अवलोकनकरने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार द्वारा संविधान में निम्नजाति एवं अछूतों को दिये गये समता के अधिकार से ग्रामीण समाज में जाति व्यवस्था के प्रति नवीन चेतना जागृत हो गयी है तथा वे अपने इस अधिकार का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र शैक्षिक, व्यवसायिक, धार्मिक, राजनैतिक में कर रहे हैं। वर्तमान समय मेंमंडल आयोग भी काफी जोर पकड़े हुए है जिसके आधार

1– शिवप्रसाद सिंह –'अलग-अलग वैतरणी' पृ0सं0 602।

2– शिवप्रसाद सिंह –'अलग अलग वैतरणी 'पृ0सं0 257।

पर सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत से कहीं अधिक स्थान अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों के लिए सरकार द्वारा आरक्षित किया गया है। परिणामतः जाति व्यवस्था के सदियों से चले आ रहे प्रतिबन्ध विशृंखल हो रहे हैं तथा उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच विषमता की खाई कम हो रही है । ग्रामीण जनता समता एवं मानवता के सिद्धान्तों के आधार पर एक नये समाज के निर्माण के लिए जागरूक हो गयी है तथा जमींदारों के एवं उच्च वर्ग के अत्याचारों से एक प्रकार से मुक्त हो गयी हैं ।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में सामाजिक तत्व - भाग 2

साहित्य समाज का दर्पण है । किसी भी युग का साहित्य हो उस पर समाज का प्रभाव अवश्य ही बड़ी सहजता के साथ दृष्टिगोचर होता है । आँचलिक उपन्यासों के विषय में भी यह बात कहना अतिशयोक्ति न होगी ।

आँचलिक क्षेत्र के व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में जो क्रिया कलाप करते हैं, उन सब की समष्टि ही सामाजिक तत्व के अन्तर्गत आती है ।

परिवार समाज की इकाई है । भारत के अधिकांश ग्रामों में परिवार और रिश्तेदारों के सम्बन्धों का अन्य देशों की अपेक्षा अधिक महत्व है । मनुष्य की प्रारम्भिक एवं मूल-भूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले संगठन एवं संस्थाओं में परिवार का स्थान प्रथम एवं प्रमुख है । मानव के अस्तित्व रक्षा और उनके विकास के समस्त सोपान परिवार से ही प्रारम्भ होते हैं । इन पारिवारिक सम्बन्धों में एक परिवर्तन घर कर रहा है।संयुक्त परिवार लघु परिवार की ओर अग्रसर हो रहे हैं । एकता अनेकता में विभाजित हो रही है । संयुक्त परिवार अपने पारिवारिक ढाँचे को तोड़कर छोटी-छोटी पारिवारिक इकाइयों में बंट रहा है । प्राचीन परम्पराओं, आदर्शों एवं मूल्यों में धीरे-धीरे परिवर्तन और संकुचन हो रहा है । सामूहिकता और सहयोग की भावना परिवारों में लुप्त होती जा रही है ।

गाँव के सामाजिक जीवन में इन नये पारिवारिक सम्ब

तनाव पूर्ण स्थिति उत्पन्न की है जिसका चित्रण आँचलिक उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है ।

गृहस्थ जीवन में पतिपत्नी सम्बन्ध पारिवारिक जीवन का केन्द्र है। यही वह सम्बन्ध है, जहाँ से दूसरे रिश्ते जुड़ते हैं । गृहस्थ जीवन में सुख, शान्ति, सम्पन्नता एवं स्वाभाविकता पति पत्नी के पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव पर निर्भर होती है । व्यक्ति के जीवन में विकास एवं उन्नति का मूलाधार यही सम्बन्ध है । पति पत्नी के आपसी प्रेम एवं स्नेह सम्बन्ध का वर्णन उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर ने अपने उपन्यास "नेपाल की वो बेटी" में कियाहै साधारणतः औरतें ही अपने पतियों को भोजन कराती हैं पति पर प्यार जताते हुए स्त्रियाँ अपने पुरुषों को आग्रह पूर्वक स्नेह जताते हुए ज्यादा खाने के लिए प्रेरित करती है । किन्तु जिन पति-पत्नियों में अगाध प्रेम होता है वहाँ पति भी अपनी पत्नियों को स्नेह पूर्वक भोजन कराते हैं । उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर ने इस विषय को वाणी प्रदान करते हुए लिखा है -

"नये सिरे से भुने हुए दानों को जबरन उसकी थाली में दुबारा रखती हुई स्नेह पूर्ण स्वर में कह रही थी - "जरा और खाओ जी । वहीं जो सुबेरे जरा भात खाकर चले गये काम पर । जरा शरीर का तो ख्याल रखा करो । हरि शंकर ने भी स्निग्ध स्वर में जवाब दिया "और तुम भी

तोवही कोदो की दो रोटियाँ खाकर लगी थी काम पर , मेरा तो पेट अब भर चुका अब तुम खाओ मैं परोसूँ "।[1]

पति-पत्नी का प्रेम सम्बन्ध हँसी ठिठोली के माध्यम से और अधिक गहरा होता है। कभी-कभी आपसी वार्तालाप में औरते अपनी नाराजगी जाहिर करने के लिए पति का साथ छोड़ने की बात करने लगती है फलतः पति गुस्से में आकर मार-पीट पर उतारू हो जाता है जबकि वास्तविकता यह रहती है कि इस मारपीट के पीछे पति का प्यार ही रहता है । साधारणतः ग्रामीण जन जातियों में इस तरह की बाते अधिक देखने को मिलती हैं पति-पत्नी के इस प्रेम सम्बन्ध को उपन्यासकार 'रांगेय राघव' ने वाणी प्रदान करते हुए लिखा है -

प्यारी सुखराम से कहती है । देख मैं भंगिन चमारिन नहीं जो मरद की गुलाम बनकर रहूँ मैं तो केनी । पर मेरा मन तेरा है जिस दिन मन तुझसे छट जायेगा मैं तुम्हे छोड़कर चली जाऊँगी । मुझे गुस्सा आता । शराब मेरे सिर पर चढ़ जाती और मैं उसे रस्से से मारता । नील पड़ जाती । वह रोती निरदयी कहती । पर फिर मुझसे लिपट जाती । कहती बेपयर समझकर के मार ले निगोड़े । पर निगुते तेरी लुगाई हूँ तभी न मारता है , मार से क्या मैं तेरी मार से डरती हूँ ।

1- कपूरचन्द ठाकुर - "नेपाल की दो बेटी" पृ०सं० 129 ।

मैं कहता फिर तू मुझे छोड़ने की बात क्यों करती है । तुझे जलाती हूँ तो चिढ़ता है । मारता है, तू मुझे मन से न चाहता होता तो तू मुझे मारता क्यों ? तेरा प्यार देखने को ही तो मेरा हिया तरसता है " ।[1]

साधारणतःजनजातियों में कुछ जातियाँ ऐसी होती है जहाँ एक आदमी दो तीन पत्नियां रखते है ऐसी ही एक जाति है करनट । जहाँ एक ओर ग्रामीण परिवार में सौत के साथ दुर्व्यवहार देखने में आता है वहीं दूसरी ओर कुछ जनजातिय परिवारों में सौत औरतों में आपस में बहुत अधिक प्यार भी देखने को मिलता है 'कब तक पुकारूँ' आंचलिक उपन्यास में रांगेय राघव ने लिखा है -

" मेरे हाथ टूटें, तुझ पे उठे । मेरी आँख फूटें जिन्होंने तुझसे डाह की । अब समझी तूने उसे कैसे लट्टू कर रखा है अपने पर प्यारी तू बड़ी वो है, मैं तेरी क्या बराबरी करूँगी । कजरी ने मगन होकर कहा । उसके स्वर में ममता थी ।

प्यारी ने कजरी को छाती से लगा लिया । दोनों एक दूसरे की ओर देखती रहीं उन नयनों में कितनी गहराई थी, कितना प्रसार था ।

" मेहतर की दो बेटी" आंचलिक उपन्यास में सौत औरतों में इतना अधिक प्यार देखने को मिलता है कि दोनों औरतें आज मरने तक

1- रांगेय राघव - 'कब तक पुकारूँ' - पृ० सं० 51 ।

को तैयार हो जाती है । बलभद्र ठाकुर के शब्दों में – " हेमा ने दूसरा कुल्हाड़ा थामते हुए झट कुसुमा को सस्नेह आदेश दिया–" बहिनी तुम नानी को लेकर कहीं जा छिपो अभी और कुसुमा नाराज होकर बोल उठी–" छी दी दी । मैं जान लेकर जा छिपूँ जंगल में और तुम दोनों यहाँ रहकर जान गँवाओं "[1]।

हेमा व्याकुल होकर बोल उठी" अरी नही बहिनी । तुम्हारी जान की खातिर नही नानी [बच्चे] की खातिर कह रही हूँ । जाओ देर न करो नानो को भगवान को सौंप आओ । धरती आमाँ की गोद में । वन देवी की गोद में कहीं भी जल्दी छिपाकर तुम खुद यहाँ आ जाओ । मोह माया का वक्त अब नहीं रहा सब एक साथ मरेंगें ।[2]

पति-पत्नी के सम्बन्धों में यदि जरा भी कटुता आ जाती है तो सारे पारिवारिक वातावरण में कटुता भर जाती है ।

अलग-अलग वैतरणी" [शिवप्रसाद सिंह] की कनिया के अपने पति बुझारथ सिंह के साथ बड़े तनाव पूर्ण सम्बन्ध हैं । वर्षों तक वे एक दूसरे से बोलते तक नहीं बुझारथ सिंह चरित्र हीन व्यक्ति है, जमींदार के बेटे की हेकड़ी अभी अपने पूर्ण रूप से जिन्दा है । निकटवर्ती परमु सिंह की बेटी पुष्पी तक पर हाथ साफ करना चाहते हैं उसके कौमार्य को लूटने की योजना तक बनाते हैं लेकिन असफलता ही हाथ लगती है। बुझारथ सिंह की

1- रांगेय राघव – कब तक पुकारूँ "पृ०सं० 189 ।

2- बलभद्र ठाकुर – "नेपाल की वो बेटी"पृ०सं० 308 ।

अनैतिकताएं ही उसके पारिवारिक जीवन में कटुता एवं मन मिटाव का कारण बनती हैं ।

दोनों पति-पत्नी " कनिया और बुझारथ सिंह में आपस में कहा सुनी हो जाती है । कनियां ने पति से कहा - मैं तुम्हारा पैर क्यों बाँधू । तुम जो करना चाहो करो, मन हो विआह भी कर लो फिर लिखने पढ़ने की नौबत नहीं आयेगी । पर इतना सुन लो कि मैं अपना हिस्सा [भतीजे] बिरिछ को ही देकर जाऊँगी हाँ ।"[1]

उदय शंकर भट्ट ने अपने उपन्यासों में भारतीय ग्राम जीवन के स्त्री पुरुष सम्बन्धों को तो विविध संदर्भों में उठाया है । लेकिन पति-पत्नी सम्बन्धों में शहरी तौर तरीकों का प्रवेश न के बराबर किया है शहरों में पति पत्नी की आपसी कटुता का परिणाम है तलाक , तलाक की प्रथा अभी गाँवों से दूर है । ग्राम जीवन के उपन्यासकारों ने इन सम्बन्धों को यथार्थ धरातल पर अभिव्यक्ति दी है ।

पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों में एक नई स्थिति उस समय उत्पन्न होती है । जब उनके वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे प्रेमी प्रेमिका का आगमनहोता है । पारिवारिक जीवन में उस समय और भी कटुता पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब कि पति किसी नशे का शिकार

1- शिव प्रसादसिंह - "अलग अलग वैतरणी" पृ0 सं0 289 ।

हो जाता है, और घर आने पर पत्नी के साथ दुर्व्यहार करता है । ऐसी स्थिति को उदय शंकर भट्ट आदि उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में उठाया है -

"सागर लहरें और मनुष्य" में माणिक शराब के नशे में धुत्त घर लौटता है और अपनी पत्नी रत्ना को मारता पीटता है । उदय शंकर भट्ट के शब्दों में -

"माणिक को क्रोध आ गया । उसने पास पड़ी चप्पल रत्ना के ऊपर फेंकी - "ससुरी हरामजादी दिन भर बैठा क्या करताय, खाना बो नई बनाताय, यार के पास जाताय ... रत्ना तो क्रोध में भरी बैठी ही थी । उसने उसी चप्पल से नशे में झूमते माणिक को तड़ाक-तड़ाक पीटना शुरू कर दिया । जब माणिक उठकर धक्का देने आगे बढ़ा तो रत्ना ने कोने में रखी लकड़ी उठाकर पाँच-सात डण्डे और जमा दिए "।[1]

पति-पत्नि के ये कटुता पूर्ण व्यवहार ही पारिवारिक जीवन में अस्तव्यस्तता उत्पन्न कर देते हैं, जिनका प्रभाव परिवार के अन्य सदस्यों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य दृष्टिगोचर होता है ।

भारतीय ग्रामीण समाज में नारी प्रमुखतः पुत्री, बहिन एवं पत्नी की भूमिका सम्पन्न करतीहै। जन्मावस्था के उपरान्त पुत्री की पारिवारिक

1- उदय शंकर भट्ट - "सागर लहरें और मनुष्य" पृ०सं० 255 ।

स्थिति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि पुत्री के जन्म से सामान्यतः परिवार में पुत्र के जन्म की अपेक्षा कम प्रसन्नता का अनुभव किया जाता है और यदि दो बार पुत्रियों के जन्म के उपरान्त पुत्र की चाह वाले माता-पिता के परिवार में पुनः पुत्री का जन्म हो गया तो प्रसन्नता के स्थान पर विषाद का वातावरण बन जाता है ।

भोजपुरी भाषी" आधा-गाँव उपन्यास में उत्तर प्रदेश के शिया मुसलमानों के परिवार में छः पुत्रियाँ हो गयी तो उसकी एक पूरी पीढ़ी उनके लिए वर ढूढने एवं विवाह करने की चिंता में ही लग जाती है । "आधा गाँव" के फुन्नू मियाँ का परिवार ऐसा ही है ।[1]

संख्या में अधिक पुत्रियों के जन्म से पुत्रियों की तो उपेक्षा होती ही है साथ में उनकी माता की भी पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति का अवमूल्यन हो जाता है ।

आधा-गाँव की सकीना ऐसी ही महिला माँ है जिसे क्रमशः कन्याओं को जन्म देते रहने के कारण अपनी सास की उपेक्षा का पात्र बनना पड़ता है ।"[2] पुत्री के स्थान पर पुत्र को प्राप्ति करने के लिए परम पिता परमात्मा से भी अनेकों प्रकार की प्रार्थनाएँ करते देखा जाता है। "आधा गाँव" के फुन्नू मियाँ प्रत्येक बार एक पुत्र के जन्म की आशा में मन्नतें मनाते और

1- डॉ० राही मासूम रज़ा -आधा गाँव पृ०सं० 320 ।
2- डॉ० राही मासूम रज़ा- आधा गाँव पृ०सं० 320 ।

जब मन्नतें मनाते-मनाते समय बीतता और पुनः कन्या के जन्म की सूचना प्रसवगृह से प्राप्त होती तो फुन्नूमियाँ का मुँह लटक जाता । उपन्यासकार (राही मासूम रज़ा) के शब्दों में "इन्हें शिकायत यह थी कि सकीना के यहाँ ताबड़ तोड़ सात लड़कियाँ हो चुकी थी और फुन्नूमियाँ एक बेटे के अरमान में मरे जा रहे थे । जब बच्चे पैदा होती तो फुन्नू मन्नतें मानकर और गण्डे ताबीज में जकड़-जकड़ा कर फिर कोशिश मे लग जाते । यहाँ तक कि सकीना को मतली होने लगती और वह कोरेबर्तन में खाने लगती । ये दिन फुन्नूमियाँ बड़ी बेचैनी से गुज़ारते । यहाँ तक कि फिर लड़की हो जाती और फुन्नूमियाँ का मुँह लटक जाता और रब्बन्न बी हाथ उठा-उठा कर सकीना को कोसने लगती लड़की-ये लड़की पैदा करिबे जा रही हो- बाकी इघर में रोकड़ न धरा है । सकीना इन कोसनों को पी जाती ।[1]

वस्तुतः परिवार में पुत्री की अपेक्षाकृत निम्न स्थिति का कारण है उसके विवाह के लिए अधिक धन की आवश्यकता । विवाह की आयु में आते ही लड़की धनाभाव वाले परिवार में पहाड़ बन जाती है[2]।" विवाहोपरान्त पुत्री पत्नी के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करती है ।

1- डॉ० राही मासूम रज़ा - आधा गाँव - पृ०सं० 115 ।
2- डॉ० राही मासूम रज़ा - आधा गाँव "-पृ०सं० 194 ।

भारतीय ग्रामीण पारिवारिक व्यवस्था के लगभग सभी वर्गों मे पत्नी की पारिवारिक स्थिति पति से सदैव निम्न समझी जाती है और उसे सदैव अपनी आकांक्षाओं एवं इच्छाओं को पति के समक्ष समर्पित कर चलना होता है । "पानी के प्राचीर" उपन्यास में कछार- अंचल के मुखिया के बेटे महेश की पत्नी अपने पति के बुरे व्यवहार के कारण घुल-घुल कर क्षीण हो जाती है "[1]। इसी उपन्यास में बनवारी अपने बड़े भाई धनपाल के सिखाने एवं शिकायत करने से उसके सम्मान की रक्षा के लिए अपनी पत्नी की पिटाई करता है"[2]। "आधा गाँव" उपन्यास में मुस्लिम धर्मावलम्बी समाज में पत्नी के पति द्वारा पीटे जाने की घटनाएं मिलती हैं । रज्जू अपने अब्बा द्वारा अपनी अम्मा को पीटे जाने की सूचना देते हुए नौशबा से कहता है । " ए बाजी । अब्बा अम्मा को मार रहे"। "हट" ।

नहीं अल्लाह कसम । चल देख लो । किवाड़ बन्द किये हैं और चढ़कर बैठे हैं अम्मी पर । और कानो का-का कह रहे हैं । अम्मा भी मार मिनमिना रही है। नौशाबा घबराकर उसके दरवाजे तक गयी । उसने भी दरवाजे से झाँका अब्बा वाकई अम्मा की दुर्गति बनाये हुए थे । अम्मा की यह हालत देखकर उसे रोना आ गया ।"[3]

पत्नी की भूमिका में जहाँ भारतीय ग्रामीण नारी अधिक पुत्रियों की माता बनने पर सास-श्वसुर एवं पति की उपेक्षिता बनती है,

---

1- डॉ० रामदरश मिश्र- "पानी के प्राचीर" पृ० सं० 29 ।
2- " " " " " " पृ० सं० 58।
3- डॉ० राही मासूम रजा- आधा गाँव" पृ०सं० 32। ।

वहीं वह निःसन्तान [बाँझ] रहने पर भी पति की उपेक्षिता बनती पायी जाती है । "जल टूटता हुआ" उपन्यास की बदमी दो तीन वर्ष तक बच्चे न पैदा कर पाने के कारण ही अपने परिवार वालों की उपेक्षा का कारण बन जाती है । उपन्यासकार रामदरश मिश्र के शब्दों में बदमी कहती है –

" इस नरक में मैंने कैसे तीन साल गुजारे तुम सोच सकते हो तिवारी । और एक नयी मुसीबत खड़ी हो गयी थी । सास और ननद मुझे बाँझ कहने लगी थी । तीन साल हो गये, न कोई बाल न बच्चा, बाँझ नहीं तो और क्या कहेंगी ।

सवेरे-सवेरे कोई मुँह देख लेता तो घिन से मुँह बिचकाकर कह उठता- राम-राम कैसे दिन बीतेगा आज बाँझ का मुँह देखा है । बाँझ.. बाँझ .... बाँझ यही बात दिन रात पूरे घर में घूमती रहती । मैं इस घर से छूट भागने के लिए बेचैन हो गयी अब तो खाना पीना भी मुश्किल होने लगा। ननद तारा हिसाब किताब रखने लगी और बार-बार ताने मारती है कि गांव वाली हलवाइयों का पेट होता है कि बंदक अन्न की थाह ही नहीं मिलती है ।[1]

एक और ग्रामीण समाज में पत्नी को इतना अपमान सहना पड़ता फिर भी वह अपने पति को सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत करने को कहती है ।

1- राम दरश मिश्र- "जल टूटता हुआ" पृ0सं0 144 ।

'मोगरा' उपन्यास की मोगरा अपने पति को उच्चस्तरीय एवं आदर्श जीवन व्यतीत करने के लिए भी प्रेरित करती हुई अपने पतिदेव की गांजे और शराब बेचने की दुष्प्रवृत्ति को दूर कर सम्मानजनक जीवन व्यतीत करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाकर कहती है -

" तुमने क्या सोचा मेरी बात को कान खोल कर सुन लो । तुम्हारे सामने दो रास्ते हैं । पहला तो यह कि अगर तुम्हें अपना कुकर्म नहीं छोड़ना है तो तुम मजा लेते रहो । मैं तुम्हें टोकने नहीं आऊंगी । पर तुम अगर ऐसा करते रहोगे तो मुझे नहीं, मेरी मिट्टी ही तुम्हारे हाथ आयेगी । दूसरा रास्ता है ईमानदारी का और मिहनत का । तुम पसीना बहाकर चार पैसे कमाओ इससे अगर हमें नून-भात भी मिला तो उसे हम बड़े प्रेम से खायेंगे । पौरुष आदमी का सबसे बड़ा धर्म है। तुम मेरा गहना लेकर क्यों नहीं बेच देते ? मैं तो कहती हूँ कि तुम कोई छोटा-मोटा रोजगार कर लो मेरा गहना क्या तुम्हारा नहीं है ? इसमें लाज की क्या बात है पर तुम तो मेरी बात पर विचार ही नहीं करते"।[1]

इस प्रकार भारतीय ग्रामीण समाज में पत्नी की भूमिका में नारी पति के साथ प्रत्येक प्रकार का कष्ट उठाकर उसे प्रगति के पथ पर लाने का प्रयास करती है एवं उसे अपना सम्पूर्ण प्रेम प्रदान करती है । बिहार अंचल पर आधारित 'माँटी की महक' उपन्यास में ग्रामीण पत्नी की पीड़ा एवं प्रेम से परिपूर्ण व्यक्तित्व पर विचार करती हुई गोरी कहती है -

---

1- शिव शंकर शुक्ल -"मोगरा" पृ0 सं0 70-71 ।

विश्व की नारी जाति में हिन्दू स्त्रियां कितनी पवित्र होती हैं। पति के सारे अपराधों को क्षण भर में भूलने वाली प्यार और ममता प्रदान करने वाली .... । पति बूढ़ा हो, जर्जर हो, कुष्ट रोग से ग्रसित हो ...। आधा पेट खाकर चिथड़े पहन कर सारी जिन्दगी पति के साये में काट लेती है। जीवन की आखिरी साँस तक स्नेह की मूर्ति बनी रहती है। कितनी कुर्बानी, कितना त्याग, कितना उच्च आदर्श दुनियाँ के किसी देश में पति के लिए स्त्रियों के हृदय में इतना त्याग सम्मान और स्नेह नहीं पाया जाता।[1]

<u>मात - पिता और संतान -</u>

पारिवारिक रिश्तों में पति-पत्नी सम्बन्धों से जुड़ा हुआ बहुत ही निकट का सम्बन्ध होता है माता-पिता और संतान का सम्बन्ध जो पारिवारिक सम्बन्धों में अत्यन्त महत्व पूर्ण स्थान रखता है। संतान के साथ माँ बाप का खून का रिश्ता होता है परिवार के इन रिश्तों में आपसी प्रेम स्नेह का आदर्श रूप स्थापित करने के लिए माता पिता यथा सम्भव प्रयत्न करते हैं।

पानी के प्राचीर आंचलिक उपन्यास में नीरू की माँ अपने बेटे को बहुत प्यार करती है "माँ का पुत्र के प्रति असीम स्नेह है नीरू के घर से जाते समय उसकी माँ की असि प्यार ममता और स्नेह की अश्रु जल से छलका आयी। माँ ने कहा- न बेटा यात्रा के समय रोते नहीं है .... आह पता

1- सच्चिदानंद धूमकेतु -"माटी की महक "पृ0सं0 366 ।

नही दोपहर को कहाँ रहेगा ? रात को कहाँ ठहरेगा । कभी भी बाहर नहीं गया है । कुछ भी दुनियाँ तो नही देखी हैं । आह यह धूप कितनी तेज है । हे भगवान तू ही मालिक है रच्छा करना मेरे कलेजे के टुकड़े को"[1]।

नोरू को भी अपनी माँ के प्रति कम प्यार नहीहै अपनी माँ को दिलासा देते हुए कहता है —माँ ! तूने कितनी तकलीफ बर्दाश्त की है । सास और पति के जुल्म सहते सहते गरीबी से लड़ने के लिए अपने शरीर के सब गहने बेचते बेचते और उपवास की मार खाते खाते तू कितनी जर्जर हो गयी है । तूने हम लोगों को जैसे अपनी पवित्र आत्मा से पैदा किया उसी प्रकार उसको छाँह में पाला । क्या करूँ पढ़ाई करूँ या घर की डूबती नाव को किनारे लगाने की कोशिश[2]।

माँ के हृदय मेंवात्सल्यभाव अपनी संतान के प्रति अथाह होता है जिसे माँ कभी आशीर्वाद के तथा कभीअन्य रूप में बेटे पर लुटाती है, 'गली आगे मुड़ती है'आंचलिक उपन्यास में माँ नन्दू से कहती है —

"मेरे सुहाग की निशानी तुम हो नन्दू । तुम फूलो फलो इसके लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रखूँगी । तुम इसे बेचने में हिचकिचाओगे, लाओ— मैं बेचूँगी इसे । तुम एम0 ए0 कर लो, शायद इस दुखिया पर विन्ध्यवासिनी की अब कृपा के दिन आ रहे हैं"।[3]

1— राम दरश मिश्र — "पानी के प्राचीर" पृ0सं0 122 ।
2— " " पृ0सं0 112 ।
3— शिव प्रसाद सिंह — गली आगे मुड़ती है, पृ0सं0 47 ।

माँ का अपने बेटे के प्रति अगाध प्यार मानों इस वक्तव्य में झलक रहा है ।

परिवार के इन प्रेमपूर्ण सम्बन्धों में माँ, बाप, बेटा, बेटी का ही एक मात्र अधिकार नहीं होता बल्कि परिवार के बुजुर्गों जैसे बाबा दादी का भी प्यार दुलार अपना विशेष स्थान रखता है।

'वरुण के बेटे' आंचलिक उपन्यास में भोला अपनी दादी का असीम स्नेह प्राप्त किये हुए है । " बुढ़िया को सूझता था कम । पूछा भोला नहीं आया रे बुरबुन ।

भोला ने नजदीक आकर दादी के कंधे पर हाथ रखा मैइया । दादी ने पोते का हाथ ऊपर छूकर देखा- बेहाल हो रहा है तेरा बदन । पल बरोसी लाती हूँ । सेंकले हाथ पैर "।[1]

"दीया जला दिया बुझा आंचलिक उपन्यास में रधिया अपने पिता के असीम प्यार को पाकर बहुत प्रसन्न थी उसकी माँ बचपन में ही मर गयी थी अतः पिता ने माँ के समान ही उसे स्नेह प्यार देकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया था ।

" रधिया की माँ का देहांत उसके शैशव में ही हो गया अतः रेवतानन्दन ने अपने अन्तराल का समस्त स्नेह प्यार दुलार ममता रधिया पर अर्पण कर दिया था । रधिया जैसे अपने गरीब बाप का अपार प्यार पाकर निहाल हो गई थी "[2] ।

पारिवारिक रिश्तों में एक रिश्ता देवर भाभी का भी है जो कि बड़ा ही महत्वपूर्ण एवं स्नेह पूर्ण रिश्ता माना जाता है। इसी देवर भाभी के आपसी ममता और सम्बन्धों का वर्णन करते हुए नई पौध आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार नागार्जुन ने लिखा है –

"मुस्कुराती हुई [भाभी] कहती है – इसी से तो सतमाय [सौतेली माँ] तुम पर बिगड़ती रहती हैं। जाओ इतना तेल धरती को चढ़ा दिया तुमने। फिर एक एक वही चपत।

– भाभी एक एक चपत और

सहुआइन को बरबस हँसी आ जाती। वह इस दुलरुआ देवर के अनुरोध को बेकार थोड़े जाने देगी।

– लो

एक एक और मीठी चपत।

अब तो हुआ ?

– उं

जाओ मड़रो का तनिक भुर्ता और मुट्ठीभर भात छिपिया [छोटी थाली] में निकाल आयी हूँ पानी भी लोटा में करके रख दिया है।"[1]

अलग-अलग "वैतरणी" आंचलिक उपन्यास में विपिन की भाभी अपने देवर के प्रति असीम ममता एवं प्यार का भाव रखती है। विपिन को जमींदार के बेटे सुरूप ने मार दिया था और विपिन दरवाजे से उठकर

1– नागार्जुन – "नई पौध" पृ0 सं0 82।

चला गया तब भाभी को चिन्ता हुई और अपने परिवार को डगमगाते देखकर उसने " दयाल महाराज से कहा -

"देखिये दयाल महाराज ! आप चुप मत रहिये । यह कोई मामूली बात नहीं है मेरा सारा परिवार डगमगा रहा है । नाव एक दम भँवर में आ गयी है । विपिन ने बात जिस लिये भी छिपाई हो और जिस भी कारण से उसने सारा दोष अपने माथे ले लिया हो ।अब बात बिगड़ गयी है । बुद्‌टव ने ना समझी की और उसने विपिन पर हाथ उठा दिया । विपन दरवाजे से उठकर चला गया । मैं तो किसी और की नहीं हुई । यदि मेरे निर्दोष विपिन को कुछ हो गया या वह कहीं चला गया तो समझ लीजिये कि मीरपुर के बबुआनों का खानदान डूब गया ।"[1]

पारिवारिक सम्बन्धों में सास बहू का सम्बन्ध एक विचित्र सी स्थिति लिये हुए समाज के समक्ष आता है। इन सम्बन्धों में अधिकांशतः कटुता ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु कुछ आंचलिक उपन्यासकारों ने सास बहू के इस रिश्ते को एक आदर्श रूप प्रदान किया है । नागर जी ने बूँद और समुद्र उपन्यास में इन सम्बन्धों को वाणी प्रदान करते हुएलिखा है -

"अम्मा बहुओं पर मुनासिब रोब ही रखती थी कभी बेजा भाड़ किया न बजा फटकारा । इसीलिए बहुएँ अपनी सास का अदब करती हैं ।

1- शिव प्रसाद सिंह -"अलग अलग वैतरणी" पृ०सं० 404 ।

दोनों लड़के अपनी बहुओं को सिनेमा दिखाने, घुमाने ले जाते हैं । इसका उन्होंने कभी बुरा नहीं माना । दोनों लड़के बहुओं के अपने अपने कमरे हैं । वहाँ बैठकर शंकर चाहे अंडा आमलेट खाये या मनिया भंग घोटे, घर के चौके में सबका भोजन समान, घर का चलन व्यवहार एक है । बड़ा धरम सोध निबाहने वाली नंदो जब भाई भौजाई के खोट निकालती तो अम्मा उसे ही झिड़कती है -" तुमसे क्या ? खबरदार हमारी बहुअन को कुछ कहा तो ? हम कह लेंगे और किसी को न कहने देंगे"[1]।

बलभद्र ठाकुर ने अपने आंचलिक उपन्यास"नेपाल की दो बेटी" में सास का बहू के प्रति प्रेम भाव कितना आत्मीय है इस बात को दर्शाते हुए लिखा है -

"बेटे हरिशंकर ने हँसकर माँ से कहा आमां हम तो तुम्हारे बाल बच्चे हैं, आमाँ को अपने बाल बच्चों में भेदभाव तो न करना चाहिए। गुड़ और दही को बराबर -बराबर करके बाँटो सबमें ।

माँ मन ही मन निहाल हो मुस्काते हुए बोली -"तो मैं सब अपनी बहुरियों [बहुओं] में बाँट दूंगी । तुझे राई रत्ती भी न दूंगी "[2]।

सास तथा बहू के इस प्रेम सम्बन्ध को दर्शाते हुए बलभद्र ठाकुर ने अपने दूसरे उपन्यास"मुक्तावली" में लिखा है -

---

1- अमृत लाल नागर- "बूंद और समुद्र" पृ0सं0 2 ।
2-बलभद्र ठाकुर-"नेपाल की दो बेटी"पृ0सं0 184 ।

"गदगद स्वर में वह बोली थी- मैं मुक्ता हूँ इमाँ । तुम्हारी बहू । तुम्हारे वीर पुत्र की वधू । अपनी पुत्री को स्वीकार करो अपने चरणों में जगह दोइमाँ । उन्होंने झट मुक्ता को धरती से उठाकर अपनी स्नेहमयी भुजाओं में बाँध लिया मुक्ता उनकी छाती में सिर टेके कुछ देर रोती रही । और माँ का मानों सारा हृदय पिघल पिघल कर उसके सिर को भिगाने लगा ।"[1]

पारिवारिक रिश्तों में एक ओर जहाँ आंचलिक उपन्यासों में प्रेम और स्नेह का वर्णन देखने को मिलता है वहीं दूसरी ओर कुछ परिवार ऐसे भी है जहाँ माता पिता के त्याग और बलिदान के बदले में बेटे लोग अपने माता-पिता को किसी न किसी बात पर झिड़कियाँ देते हैं । यहाँ तक कि माँ बाप को भला बुरा कहते है।

श्री लाल शुक्ल के "राग दरबारी" उपन्यास का रूप्पन अपने पिता वैद्य जी की नाराजगी जो उसकी बदचलनी को लेकर है रंगनाथ को यों उत्तर देता है -

"पिता जी क्या खाकर नाराज होंगे उनसे कहो मुझसे सीधे बात तो कर ले । ..... उनकी शादी चौदह साल की उमर में हुई थी । पहली अम्मा मर गयी तो तइसताल की उमर में दूसरी शादी की । साल भर भी अकेले रहते नहीं बना । ... बक तो किया कायदे से बेकायदे कितना किया सुनोगे वह भी ...."[2]।

1- कनकूड़ -"मुक्तावली" पृ०सं० 2[illegible] ।
2- श्रीलाल शुक्ल - "राग दरबारी" पृ०सं० 165 ।

"अलग अलग वैतरणी' [शिवप्रसाद सिंह] का हरिया और छोटे पहलवान तथा राग दरबारी के रूप्पन लगभग एक जैसे ही पात्र हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' का हरिया अपने पिता "टीमल सिंह" को कोने में पड़े-पड़े मक्खी मारने की सलाह देता है, क्योंकि वह उसे वहाँ कबड्डी मे लिए फिरेगा तो छोटे पहलवान उसकी पिटाई तक कर देते हैं।

राही मासूम रज़ा "के" आधा गाँव" का कम्मों भी पिता के प्रति विद्रोह कर उठता है यद्यपि अपने विद्रोह में वह गलती पर नहीं है। बल्कि बाजिद मियाँ ही सनकी हैं। उन्होंने सारे घर गालियों एवं मारपीट से नरक बनारखा है। घर में एक सौहार्द होता है वह नाम को नहीं। कम्मों भी आखिर कब तक सहता, अतः एक दिन वह अपने पिता से चिपट जाता है, और सब दिन का बदला लेने पर उतारू हो जाता है। माँ की वेदना सच्ची है। वह अपने पति को कैसे पिटता देखे। अतः वह उसे छुड़ाती हुई कहती है - छोड़ माटी मिले। काहें बाप को मरवे? तोरा जनाजा निकले। झाड़ू मारे दिमाग दये। अरे मैं कहयिवूँ छोड़ जबान पीटे"।[1]

वह अपने माता, पिता के विरोध के बावजूद एक नाइन के साथ शादी कर लेता है। अपने पिता हम्माद मियाँ का मात्र इसीलिए विरोधी हो ऐसी बात नहीं। उसमें नये युग के स्वर हैं जिनका परिचय हमें उसके कथन में मिलता है, जब वह परशुराम को यह कहता है -"बाकी

1- राही मासूम रज़ा -"आधागाँव पृ0सं0 205।

ओ सैयद हैं, और हम शेयदनहीं । अब उल्टे बाप कोहम का कहें 9 जाये दीजे जबान मत खुलवइये । हमता ई देखत बाड़ी परसराम भैया कि ई जमींदार लोगन का मिजाज जमींदारी के चले जाय से भी न ठीक भया है.. जवले कानून कारन का एका न हुई जमींदार लोगन का टैंगा सिर से न हटी"।[1]

बाप, बेटे की विचार धारा बिलकुल अलग है । बाप सामन्ती विचार-धारा का है, तो बेटा नयी विचार धारा का है । एक में जड़ता है तो दूसरे में नव चेतना जागृति के भावों की झलक दिखायी पड़ती है।

"परति-परिकथा" उपन्यास में परानपुर ग्राम के परिवार में पिता पुत्र के परम्परागत आदर्शवादी आधार पर निर्धारित सम्बन्धों का विघटित स्वरूप देखने को मिलता है ।

"लोक परलोक" में पिता को पुत्र की किसी गति विधि पर क्रोध आता है और वह अपने पुत्र को सम्बोधित करते हुए कहता है साले मुँह तोड़ दूँगा। समझा क्या है तूने अभी इतना गया बीता नहीं हूँ अपनी अम्मा से तो पूछि" लड़का लट्ठ लेकर मुकाबले पर खड़ा हो गया," अम्मा से यो पूछे, हुई कौन अपतरा है, पटी-पटी तू ऐसे देखति ऐ, जैसे भूतनिया होय काउ दरखत की "-[2]। इसी प्रकारएक अन्य स्थल पर दुर्गा अपने पिता को प्रत्युत्तर देता हुआ कहता है -

---

1- राही मासूम रज़ा -"आधा गांव "पृ०सं० 425 ।

2- उदय शंकर भट्ट -" लोक-परलोक" पृ०सं० 53 ।

"तुमन्ने पालो तो कोई ऐसान करो का । तुमउ तो तुमारे बाप ने पालीओ, खवाओभी, प्यावीओ । और तुमने का मोय पैदा करिबे की नियत से पैदा करोओ ? मौने सुना तो वह भी गाली देने लगो"[1]।

ग्रामीण समाज में परिवारों के इस विघटन एवं माता पिता से संतान के सम्बन्धों के मध्य तनाव का कारण पुरातन एवं नवीन पीढ़ी के विचारो में विरोध प्रतीत होता है । जिन परिवारों में माता पिता नवीन पीढ़ी के साथ समझौता कर लेते हैं उनमें संघर्ष की कोई स्थिति उत्पन्न नहीं होती ओर जिन परिवारो में पुरातन एवं नवीन पीढ़ी के विचारों में अन्तराल रहता है वहाँ संघर्ष एवं तनाव की पर्याप्त सम्भावना रहती है। उत्तर प्रदेश के करैता ग्राम में {अलग-अलग वैतरणी का कथा क्षेत्र करैता ग्राम है} देवनाथ डाक्टरी पास कर लौटा तो उसके पिता ने किसी नेमीधर्मी कर्मकांडी पुज्य ब्राह्मण की लड़की से उसकी शादी तय कर दी । पुनः उसके गाँव में दुकान खोलने पर उसके पिता देवनाथ को तंग करते है और गाँव में उसके दुकान खोलने को मना करते हैं "।[2]

इससे परिस्पर तर्क वितर्क होता है और अंत में देवनाथ अपने परम पुज्य पिताजी के सम्बन्धमें अपनी सम्मति अपने मित्र विपिनको बताते हुए कहता है -

"हमारे बाबू जी यह मानते हैं कि उनके घर में उनका एक पद है,

1- उदय शंकर भट्ट -"लोक-परलोक" पृ0सं0 33 ।
2- डॉ0 शिव प्रसाद सिंह- अलग-अलग वैतरणी पृ0सं0 66। ।

बाकी लोगों का एक पक्ष है । सिर्फ उनका पक्ष सही है । बाकी लोगों का पक्ष गलत है अनुचित है और परिवार की प्रतिष्ठा के लिए घातक है। वह जो सोचते है ठीक है बाकी लोग जो सोचते हैं गलत है । इसीलिए बाकी लोगों को सोचने का कोई हक ही नहीं है "।[1]

भारतीय ग्रामीण पारिवारिक व्यवस्था के विघटन की प्रक्रिया कोतीव्र करने में पुरातन एवं नवीन पीढ़ी के विचारों एवं जीवन मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ जीवन में धन की प्रधानता का भी महत्वपूर्ण योगदान है। आज ज्यादा से ज्यादा धन कमाने के लालच में परिवार का एक व्यक्ति दूसरे को धोखा देने में जरा भी संकोच नहीं करता तथा परिवार में आयु के आधार में पूर्वज के स्थान पर अधिक आमदनी कमाने वाले युवकों का अस्तित्व बढ़ रहा है ।

उपरोक्त समग्र अंचलों पर आधारित आंचलिक उपन्यासों में वर्णित ग्रामीण जनजीवन में पारिवारिक व्यवस्था के परम्परा से चले आये आदर्श खंडित हो रहे हैं । तथा उनके स्थान पर अर्थ का प्राधान्य स्थान ग्रहण करता जा रहा है ।

1- डा० शिवप्रसाद सिंह- "अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 659 ।

वैवाहिक तत्व -

भारतीय संस्कृति में रीति, रस्म की प्रथाओं का एक नियम या विधान सा बना हुआ है, समाज का प्रत्येक व्यक्ति इस नियम को मानकर उसका अनुसरण करता है । इन प्रथाओं में से कुछ सामाजिक संस्कारों के रूप में मान्य हैं एवं कुछ धार्मिक रूप में प्रचलित हैं ।

सामाजिक संस्कारों में वैवाहिक तत्व का विशिष्ट स्थान है । पति पत्नी के रूप में समाज के समक्ष आने के पूर्व वैवाहिक रस्म पूर्ण करना न केवल जरूरी बल्कि अत्यन्त आवश्यक है । विवाह की रस्म अधिकतर परिवार के वृद्ध जनों द्वारा तय की जाती है जिसे तय शुदा शादी कहा जाता है ।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास जगत में इस वैवाहिक रस्म को विस्तार से वाणी प्रदान की है । ग्रामीण समाज में लड़कियों का विवाह छोटी उम्र में ही कर दिया जाता था किन्तु धीरे-धीरे विवाह के इस परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन विभिन्न उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है ।

विवाह के पूर्व ही परिवार के लोग विवाह के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करके विवाह की पूरी तैयारी कर लेते हैं, आंचलिक उपन्यास में "बोआई पंडित की पंडिताइन ने अपनी नातनी के विवाह के लिए पूरी

तैयारी कर ली थी । महीन चावल, अरहर की दाल, गेहूँ का आटा, घी तेल, कई किस्म के अचार, धोतियों के दो जोड़े , दुपट्टा , पगड़ी, कम्म [तेहरा] दो साड़ियाँ, सुपारी और चोनो" ।[1]

"बलचनमा के बेटे" आंचलिक उपन्यास में भी नागार्जुन ने माधुरी के गौने में दी गयी वस्तुओं का वर्णन करते हुए लिखा है –

"कुछ नहीं, कुछ नहीं, तो भी दो सौ का खर्च पड़ा । साड़ियों के छै जोड़े, चार ब्लाउज, पटसन [जूट] की मामूली शाल, चार साधारण गहने, काँसे की थाली और कटोरा, पीतल का लोटा, बिछाने का मोटा खुरदुरा कंबल, बचकानी संदूकची .... अपनी औकात से ज्यादा दिया था लड़की को । दुल्हे के लिए धोती कमीज और चादर दी थी"।[2]

विवाह के लिए आवश्यक सामग्री की तैयारी परिवार के लोग पहले से ही करना शुरू कर देते है। क्योंकि कोई ठीक थोड़ा ही है आज जो चीज किसी दाम पर मिल रही है कल वह उस दाम ही पर मिल सकेगी ।

"आधा-गाँव" आंचलिक उपन्यास में राही मासूम रज़ा ने इसी बात को व्यक्त करते हुए लिखा है –

"गुलाम हुसैन खाँ ने तो शादी की तैयारियाँ तक शुरू कर दी थी । उनका कहना था .... घर में कोई रोजड़ का दरवाजा थोड़े है

1– नागार्जुन – "नई पौध " पृ0 सं0 45
2– नागार्जुन – "बलचनमा के बेटे" पृ0 सं0 56 ।

नहीं कि पाल डालकर रकम तैयार कर ली जाय ।

"चुनांचि पाँच जोड़े कपड़े तो वह तैयार करवा चुके थे, जो टँक टकाकर बक्स में रख दिये गये थे । तीन बान सोने के जेवर और पाँच बान चाँदी के जेवर भी बन चुके । तांबे पीतल के कुछ बर्तन भी खरीदे जा चुके थे "[1]।

"अलग-अलग वैतरणी' आँचलिक उपन्यास में शिव प्रसाद सिंह ने एक स्थल पर लिखा है -

"बिना माँ बाप की लड़की के भाई ने अपनी मशक्कत की कमाई का सर्वस्व दस हजार तिलक के रूप में दिया । भौजाइयों ने जाने कितनी जोड़ी साड़ियाँ और ब्लाउजों से बक्से सजाये"[2]।

भारतीय ग्रामीण समाज में विवाह के अवसर पर सामान्यतः वधू पक्ष के लोग ही दान दहेज रूपया पैसा देते है किन्तु कुछ जातियाँ ऐसी है जहाँ वर पक्ष के लोग लड़की वालों को रूपये देते हैं ऐसी ही एक जनजाति है कोली ।

" सागर लहरें और मनुष्य" जनजाति मूलक आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार उदय शंकर भट्ट ने इस विषय की जानकारी देते हुए एक स्थल पर लिखा है -

---

1- राही मासूम रजा - "आधा-गाँव" पृ0 सं0 124 ।
2- शिवप्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ0सं0 204-205 ।

" कोली जाति में स्त्रियों का राज्य है और लड़कियाँ घर का काम काज देखने के अलावा बाहर जाकर मछलियाँ बेचती हैं । जहाँ तक अर्थ का प्रश्न है उसका प्रत्यक्ष लाभ परिवार के लोगों को स्त्रियों से ही होता है ।

"इसलिए लड़की के बजाय लड़के के माँ बाप को ही ज्यादा खुशामद करनी पड़ती है। यही नहीं लड़के के माता पिता ब्याह में लड़की वालों को रुपया भी देते हैं [1]।

<u>विवाह का विधान -</u>

जीवन का प्रवेश द्वार होने के कारण इस शुभ कार्य के कुछ विधान या नियम हैं जिन्हें वर तथा वधू पक्ष के लोग अपने-अपने तौर तरीकों से पूर्ण करते हैं ।

"नेपाल की वो बेटी" आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर ने विवाह की रस्म का वर्णन करते हुए एक स्थल पर लिखा है -

"पार्वती के विवाह की बात पक्की हो चुकी थी। सबसे पहले "कन्हई सुपारी" नामक रस्म अदा की गई थी । दही के भरे ठेक, गन्ने और मिठाइयों के साथ अनेक सुपारी लेकर उसकी ससुराल से एक ब्राह्मण आया था । इसके बाद दुल्हे के घर में पत्र साउनु नामक रस्म पूरी की गई

1- उदय शंकर भट्ट - "सागर लहरें और मनुष्य" पृ0सं0 39-40।

होगी । घर के पुरोहित ने विवाह के मास, पक्ष, तिथि दिन और लग्न कागज के दो टुकड़ो में लिखकर उनमें अक्षत और सिंदुर भरकर पंचामृत और पंचपल्लव से उनकी पूजा की होगी । और उन्हीं में से सयत्न बंधे एक पत्र को लाकर पुरोहित ने पार्वती के पिता को दिया था ।"

"उसके बाद जन्ती जाने [बरात] की मुख्य रस्म उपस्थित हुई । और जब बारात उसके गाँव की सीमा के देवस्थल में पहुँची तो किस प्रकार बाजे गाजे की आवाज से अपने पिता के घर में बैठी पार्वती का दिल धड़कने लग पड़ा था। बारात उस देवस्थल में रूकी रही और वर पक्ष की ओर से बड़ाई गर्नु की रस्म पूरा करने के निमित्त दही मछली और राई के साग के साथ चार व्यक्तियों का एक समूह जिसे सतबरउ कहते हैं, कन्या के दरवाजे पर भेजा गया था । और उन संदेश वाहक सतबराऊ लोगों के साथ कन्या पक्ष के लोगों ने विविध कूट प्रश्नों को पूछ-पूछ कर कितना मनोरंजन किया था"[1]। इसी प्रकार वधू पक्ष में भी विवाह के कुछ रस्म रिवाज या विधान पाये जाते है जिनका वर्णन राही मासूम रज़ा ने अपने आंचलिक उपन्यास 'आधा गाँव' में चित्रित किया है ।

"ढोल पर थाप पड़ी और बदस्तूर रूप से मैंझे बिठा दी गयी और सैफुनियाँ की माँ उसे सुबह शाम उबटन मलने लगी .....। शादी शुदा हम जोलियाँ और गाँव की भौजइयाँ उसे तरह - तरह की कहानियाँ

1- कमलकृ ठाकुर - नेपाल की वो बेटी"पृष्ठ० 274 ।

सुनाने लगी ।

चमाइनों का गोल गन्दी-गन्दी गालियाँ गाने लगा । औरतें शरीफ औरतें वे गालियाँ सुनने लगी। कभी किसी ने एक चवन्नी देकर किसी के लिए गाली गवायी तो कभी उसने एक अठन्नी देकर गाली गवायी नतीजे में मालूम हुआ कि सबकी बहनों को थानेदार ले भागा । और तमाम की तमाम शादी शुदा और गैर शादी शुदा औरतें ...... उन गालियों को सुन सुनकर ठट्ठे लगाती रही पान खाती रही [1]।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मानव जीवन में विवाह सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवसर होता है। इसके आयोजन के लिए अनेक दिवसों पूर्व से तैयारियाँ हो जाती है । विवाह के कुछ दिनों पूर्व एवं पश्चात् ऐसे अनेक अवसर आते है जब कि महिलाएँ लोक गीत गाती हैं । हिन्दी के आंचलिक उपन्यास साहित्य में भी इन लोक गीतों का चित्रण है, लोक लाज खोई, आंचलिक उपन्यास में दुल्हा नहवाते समय भोजी गाती है :-

केधौ सगरा बनावा तौ घाट बंधावा
केहिकर भरइ कंहार, दुलह नहवावा
राजा दसरथ सगरा बनावा तौ घाट बंधावा
कौसल्या रानी भरे कंहार दुलह नहवावा

× ×

के तो डारे चुटकी मुदरिया तौके डारे रुप

1- राही मासूम रजा - "आधा गाँव" पृ0 सं0 168 ।

के तो डोरे रतन पदारथ तो मरिगा है तुम
माया डोरे छुट्‌की मुंदरिया, बहिनि डाले रूप
पूफू डोरे रतन पदारथ तो मरिगा है तुम "[1]।

शादी से पूर्व लड़की को दूध और केला खिला कर रखा जाता है यह भी एक वैवाहिक रस्म है ब्रह्मपुत्र आंचलिक उपन्यास में देवेन्द्र सत्यार्थी ने इसी रस्म रिवाज का वर्णन करते हुए एक स्थल पर लिखा है -

जुनतारा आरती से कहती है -" तब तो तुम्हें भी मेरी तरह विवाह से पहले सात दिन दूध और केला खाकर रहना होगा । मेरी तरह तू भी वरके माथे पर फूल रखना और तेरा वर इन फूलों को तेरे कंधे पर रख देगा। और जब अग्नि देवता के सम्मुख विवाह संस्कार हो लेगा तो तेरे घर में भी वर वधू के सिर पर वैसे ही फूल और चावल वारे जायेंगे वैसे हमारे घर में "[2]।

विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने पर गाँव के एवं परिवार के बड़े बूढ़े बुद्ध जन नव दम्पत्ति को शुभ आशीर्वाद देते है एवं उनके मंगलमय भविष्य की कामना करते हैं । इसी बात की अभिव्यक्ति करते हुए नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यास" नई पौध " में एक स्थल पर लिखा है -

" व्याह की सभी विधियाँ बिना किसी अड़चन के सम्पन्न हो गई गाँव के बड़े बूढ़े वर-वधू के माथे पर दूब अच्छत छींट कर आशीर्वाद दे गये थे ।

तिरहुतिया ब्राह्मणों के रिवाज के मुताबिक शादी के बाद

1- सुरेन्द्र नाग - लोक नाच बोर्ड पृ०सं० 147 ।
2- देवेन्द्र सत्यार्थी - "ब्रह्मपुत्र" पृ०सं० 209।

चौथी रात सुहागन रात थी"[1]।

नागार्जुन ने उपर्युक्त बातों के माध्यम से तिरहुतिया ब्राह्मणों की विवाह सम्बन्धी इस रस्म को भी उद्घाटित करने का प्रयास किया है कि वर दम्पती तीन रात तक अलग-अलग सोते हैं। विवाह की रस्म को पूर्ण करने में धार्मिक पूजा पाठ देवी देवताओं की मान्यता मनौति जैसे कार्य ग्रामीण समाज में विशेष महत्व रखते हैं। ऐसा लोक विश्वास है कि इन देवी देवताओं के पूजन से शुभ कार्य में विघ्न नहीं पड़ता है। "नईपौध" आंचलिक उपन्यास के उपन्यासकार नागार्जुन के शब्दों में -

"औरत मर्द सभी हाथ जोड़ भगवान से मनाया करते कि चाहे जैसे भी हो बिसेसरी का ब्याह अगहन के लगन में अवश्य हो जाय।

पंडिताइन ने आँचल पसारकर और मत्था टेककर जोड़ा सागर (तरु ण बकर) कबूला था दुर्गामाई के आगे। बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगा जलभर कर पैदल पहुँचेगी और अपने हाथों से बाबा बैदनाथ को नहलाएगी"[2]।
विवाह के अवसर पर सधवा औरतों के द्वारा ही सारे शुभ कार्य करवाये जाते हैं उपन्यासकार नागार्जुन के शब्दों में -विवाह के पूर्व " बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड़ पुजवाने गई हुई थी"[3]।

1- नागार्जुन -"नई पौध" पृ०सं० 129।
2- नागार्जुन - "नई पौध" पृ०सं० 92।
3- नागार्जुन - "नई पौध- पृ० सं० 44।

शादी विवाह के अवसर पर दुलहन को नये जोड़े पहनाये जाते है एवं सजासंवार कर सोलह श्रृंगार करके लड़की को दुलहन का रूप दिया जाता है, साथ ही मंगल सूचक सामग्री दुलहन के आँचल में डालकर उसे घर से विदा किया जाता है। इस लोक रीति को आंचलिक उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने उपन्यास में अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लिखा है -

"पीली साड़ी और लाल चोली । पीठ की ओर से साड़ी पर हथेलियों के लाल लाल धब्बे पड़े हुए थे । तलवों में महावर के नाम पर लाल रंग अपनी गहरी लाली खिला रहा था । आँचल में धान दूब - पान की पत्ती और साबित सुपारी और हल्दी बंधी थी । हथेलियों में मेंहदी का निशान दिखाई पड़ा "[1]।

ग्रामीण समाज में ज्यादर गरीब किसान मजदूरों की संख्या अधिक होती है। ये लोग विवाह के अवसर पर जीवन भर की कमाई हुई पूंजी से तथा कर्ज लेकर बेटे बेटी का विवाह करते हैं फिर भी ये लोग विवाह के समय मंगल सूचक बाजे तासे का इन्तज़ाम करते ही है । 'सागर लहरें और मनुष्य" आँचलिक उपन्यास के उपन्यासकार उदय शंकर भट्ट के शब्दों में -

"एक दिन बरसोवा" में खबर फैली कि जामना और हरुका का ब्याह हो रहा है । बंसी कर रही है। ब्याह में कोई धूम धाम नहीं हुई । सिर्फ तासे बजे, मन्दिर में विधि - पूर्वक ब्याह हुआ । बंसी ने दोनों ओर

1- नागार्जुन - "बलचनमा" पृ०सं० 107 ।

सेवर्य किया । बरसोवा के सब मछुओं को दावत दी गई गाना बजाना हुआ ।"[1]

लड़की की विदाई के अवसर पर ग्रामीण औरतें एकत्र होकर स्नेह अश्रु के माध्यम से लड़की के प्रति प्यार दुलार को व्यक्त करती हैं ये दृश्य बड़ा ही मर्मस्पर्शी एवं हृदय द्रावक होता है।गाँव की औरतें बेटी को विदा करते वक्त विदाई गीत भी गाती हैं जो कि लोक संस्कृति का एक अंग है ।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में पुष्पा की विदाई के अवसर पर "बखरी के दरवाजे पर औरतें आ गयी । आगे-आगे पुष्पा थी । लालचुनर में लिपटी हुई मुँह घूंघट से ढका था । निउनिया उसे अंकवार में थामें थी । पीछे रोती, आँख पोछती औरते"[2]। "दिया जला दिया बुझा" उपन्यास में कन्या की विदाई के गीत हृदय को द्रवित कर देते है । यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" जी ने इन विदाई गीतों को वाणी प्रदान करते हुए लिखा है -

"ओबी गोरी रा लवकरिया
बड़ी एक लाकर थामों जी ढोला"।[3]

विवाह जीवन का प्रवेश द्वार होने के कारण भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है किन्तु उपन्यास साहित्य में वर्णित इस प्रथा

1- उदयशंकर भट्ट - "सागर लहरें और मनुष्य पृ0सं0 91 ।
2- शिव प्रसाद सिंह - अलग-अलग वैतरणी पृ0सं0 561 ।
3- यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - "दिया जला दिया बुझा" पृ0सं0 55 ।

की विकृतियों से सम्पूर्ण ग्रामीण समाज का स्वरूप क्षय ग्रस्त सा प्रतीत होता है । इस महत्व पूर्ण पवित्र संस्कार की संस्कृतिक दृष्टि सर्वथा परिवर्तित होकर दहेज रूपी आर्थिक कुहासे में भटक कर खो गयी है । आज जब सर्वत्र दाम्पत्य जीवन नव जागृति के मुक्त शिखर पर पहुँच चुका है भारतीय ग्रामीण समाज वैवाहिक क्षेत्र में क्रय विक्रय जैसी भ्रष्ट रूढ़िवादिता के कारण ही उपहास मूलक अंधकार में संकुचित हुआ चला जा रहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीण जीवन मे परिवार की अशान्ति, टूटन, कलह का उद्घाटन ही विवाह के बाजे गाजे के साथ हो जाता है । जबकि इसके ठीक विपरीत खुशियाँ एवं आशाएं बांध कर अत्याधिक हर्षोल्लास इस अवसर पर दर्शाया जाता है ।

वृद्ध विवाह -

नागार्जुन ने "नई पौध" आंचलिक उपन्यास में ग्राम स्तर पर वैवाहिक संदर्भ और उसकी परिस्थितियों का बड़ा ही हृदय द्रावक एवं प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है ।

" और आज समूचे गाँव की नाक कटने वाली थी । पन्द्रह साल की बिसेसरी साठ वर्ष के चतुरानन चौधरी को ब्याही जाने वाली थी दिगंबर ने यह खबर सुनी तो उसे ऐसा लगा कि किसी ने भर भर कलछी खौलता हुआ कड़ुवा तेल बारी बारी से उसके कानों में डाल दिया है"[1]।

1- नागार्जुन - "नई पौध " पृ0सं0 14 ।

<u>बाल विवाह</u> –

शिव प्रसाद सिंह ने अलग-अलग वैतरणी" में ग्राम स्तर पर वैवाहिक संदर्भ और उसकी परिस्थितियों का जो मर्म स्पर्शी चित्रांकन किया है वह बहुत ही प्रभावशाली एवं रोमांचक है। हरिया बड़ा होनहार लड़का था। जब वह सातवीं कक्षा में पढ़ता था तभी विवाह की चपेट में आ गया और उसकी शादी हो गयी। जिस वर्ष हरिया ने पढ़ाई छोड़ी उसी वर्ष उसका गौना हुआ। हरिया विवाह के 6 वर्ष भीतर ही तीन-तीन बच्चों का पिता बन चुका है उसकी फूहड़ और बेवकूफ औरत कहती है –

"मेरा तो करम दलिद्दर से नाता जुड़ गया और अनखा अनखा कर बिना वजह बोलती है। तन की यह गुदड़ी सी कर लाज शरम ढकूँ कि तुम सुअरों का झगड़ा निपटाऊँ। बीचों बीच आँगन में पसर कर नंगे पैरों को फैलाकर फटी साड़ी खींच कर सीती रहती है और मुट्ठी भर भात के लिए लड़ाई करते लड़कों के किटकिटा कर गंगा के दहाने में भेजती रहती है[1]।

" उधर हरिया अधजली सिगरेट फेंककर नयी दागता और नोकीले मुँह वाले बूट के तल्ले में जड़ी बटन बराबर कीलों से गलियों के कंकड़ों को रगड़ता ठोकर मारता चल देता[2]।

जीवन का यह घोर वैषम्य विद्रूप असामयिक, अनमेल, और अविचार पूर्ण विवाह जन्य है।

1- शिव प्रसाद सिंह – "अलग अलग वैतरणी" पृ०सं० 149।
2- " " " " " पृ०सं० 140।

इसी उपन्यास में कल्लू का विवाह छोटी उम्र में तिलक के प्रलोभन में सम्पन्न हो गया। इस अन्ध विवाह की कहानी अत्यन्त ही हृदय द्रावक है। पटहनिया भाभी इस अभिशाप को रो रोकर भोगती है क्योंकि उसका पति कल्लू नामर्द निकल गया। विवाह से सम्बन्धित यह तिलक का अभिशाप ग्रामीण समाज के लिए बहुत ही भयावह है। बंसी काका को इस बात की बहुत ही अधिक प्रसन्नता है कि इतना तिलक तो मालिकाने के लोगों को छोड़कर और किसी को गाँव में कभी मिला नहीं। इतना तिलक मिलने का कारण उसकी पढ़ाई थी। इस बात की सत्यता का परिचय कल्लू काका को स्पष्ट दिखाई पड़ गया था इसीलिए आठवीं क्लास में फेल होने पर भी वे कल्लू से जरा भी नाराज नहीं हुए। उन्होंने काफी दृढ़ता से दोबारा नाम लिखाकर पढ़ने लिखने में जुट जाने की सलाह दी। उन्हें विश्वास था कि एक आध साल और मौका मिले तो भाव कुछ और बढ़ जायेगा। दस हजार का तिलक जरूर से जरूर मिलके रहेगा -[1]।

ग्रामीण समाज में माता-पिता पढ़ाई लिखाई से कहीं अधिक महत्वपूर्ण विवाह को मानते हैं। शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में -

शादी हो गई अब चाहें फेल हो चाहें पास-[2]।

"अलग अलग वैतरणी" उपन्यास के रचनाकार शिवप्रसाद सिंह जी ने देखा है कि विवाह का यह भयानक विद्रूप अपनी दारुणता से ग्रामीण समाज के नवयुवकों की सम्पूर्ण शक्ति को निस्तेज कर देता है।

1- शिव प्रसाद सिंह -"अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 204।

2- शिव प्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 206।

बलचनमा उपन्यास के रचनाकार नागार्जुन ने बाल विवाह का चित्रण अपने उपन्यास में करते हुए एक स्थल पर लिखा है -

" हमारी बिरादरी में शादी कच्ची उमर में हो जाती है। शादी न कहकर उसे सगाई कहना ही ठीक होगा। मेरी 6 वर्ष की उमर में ही शादी हो गई थी। और तो कुछ याद नहीं रहा, लेकिन बरात में सिंगा बजाने वालों का नजारा कभी नहीं भूलेगा।[1]

हिन्दी उपन्यास साहित्य के आंचलिक उपन्यासकारों ने भारतीय ग्रामीण नारी की विवाह सम्बन्धी समस्यों का विस्तार से वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। स्वतंत्रोत्तर ग्रामीण नारी समाज में शिक्षा के प्रभाव से शिक्षित महिलाओं के जीवन में काफी परिवर्तन आया परन्तु अशिक्षित नारी समाज में जीवन की समस्याएँ वर्तमान समय में भी लगभग पहले जैसी ही हैं। ग्रामीण नारी की विवाह सम्बन्धी सभी समस्याओं का आधार दहेज सम्बन्धी समस्या है। यद्यपि भारत सरकार ने दहेज प्रथा को समाप्त करने के लिए संवैधानिक प्रतिबन्ध लगाये हैं फिर भी ग्रामीण समाज में यह प्रथा- अधिक विकृत एवं विस्तृत रूपमेंदृष्टिगोचर होती हैं।

दहेज प्रथा के प्रचलन का दुष्परिणाम अनमेल विवाह के रूप में दिखाई पड़ता है। ग्रामीण समाज में जो लोग अपनी बेटी की शादी में आवश्यक धन नहीं दे पाते उन्हें अपनी बेटी की शादी अनुपयुक्त वर से करनी पड़ती है। बिहार अंचल पर आधारित "पानी के प्राचीर" उपन्यास

1- नागार्जुन - " बलचनमा ,पृ0 सं0 82 ।

में "केशू अपनी बहन गेंदा का विवाह एक बूढ़े शुक्ल से कर देता है"।
दहेज के अभाव में ही माता-पिता अपनी बेटी का विवाह अधिक उम्र
वाले लड़के से मजबूरी वश कर देते है। जिसका परिणाम लड़की को कहीं
विधवा समस्या के रूप में और कहीं वेश्यावृत्ति के रूप में झेलना पड़ता है।
गेंदा का विवाह बूढ़े शुक्ल से कर दिया जाता है और गेंदा एक मास
उपरान्त विधवा हो जाती है"।[1]

आज के ग्रामीण समाज में लोगों की शिक्षा और प्रतिष्ठा केवल
दहेज लेने तक ही सीमित है। राम दरश मिश्र के शब्दों में -

"मास्टर दुग्गन तिवारी अपनी सुपुत्री गीता के लिए वर
ढूंढते हैं और अंत में इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पन्द्रह साल पहले बहन
की शादी के समय जो परेशानी हुई थी वह तो आज और भी बढ़ गयी
है। जो लड़का जितना पढ़ा लिखा मिलता है, उसका भाव आज उतना
ही तेज है, लगता है आज के समाज के लोगों की शिक्षा और प्रतिष्ठा केवल
दहेज लेने तक सीमित हैं।[2]

"माटी की महक "आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार सच्चिदानन्द
धूमकेतु ने एक स्थल पर लिखा है -

1- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर पृ0सं0 159।
2- रामदरश मिश्र - "जल टूटता हुआ" पृ0 सं0 35।

"गौरी के विवाह के लिए चुने गये वर के पिता दहेज में दस हजार रूपये माँगते हैं ।[1]

दहेज प्राप्त करके वर पक्ष के लोग ऐसा समझते हैं कि गाँव में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी । गाँव के मुखिया अपने बेटे के विवाह में दहेज प्राप्त करने के लिए लालायित रहते " क्योंकि दहेज से आर्थिक लाभ होता है सो तो ज्यादा महत्व की बात नहीं है प्रमुख बात है प्रतिष्ठा । मेरे पुत्र को गाँव भर में सबसे अधिक दहेज मिला ।

दहेज प्रथा के दुष्परिणाम स्वरूप "नई पौध" आँचलिक उपन्यास की रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना की बहिनों की बदनसीबी पर रोई थी । सभी बहने माँ बाप को सराप दिया करती थीं कोई गूँगे के पल्ले पड़ी थी तो कोई बौड़म के पल्ले । कोई तीन जिला पार फेंक दी गयी थी तो कोई पाँच सौ कोस पर । उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गयी थी एक को उसके आदम खोर पति ने किरासन तेल की मदद से जला कर खाक कर डाला था[2]" ।

लोक परलोक आंचलिक उपन्यास की चमेली एवं आधा गाँव उपन्यास की हंगटिया " का विवाह भी इसी प्रकार तेरह चौदह साल की उम्र में ही अधेड़ एवं ज्यादा उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है

1- सच्चिदानंद धूमकेतु - माँटी की महक" पृ0सं0 238 ।

2- नागार्जुन - "नई पौध" पृ0सं0 61 ।

परिणामतः जीवन भर वे वैधव्य की आग में झुलसती रहती है ।

"नई पौध " उपन्यास में नागार्जुन ने विवाह सम्बन्धी समस्या को उठाया है। साथ ही नवयुवकों में इस समस्या को सुलझाने के लिए नई चेतना भी जागृत होती हुई दिखाई है, परिणामतः नई पौध उपन्यास की बिसेसरी का विवाह उसके पिता द्वारा चुने गये अनमेल वर के स्थान पर ग्रामीण नवचेतना युक्त नवयुवकों द्वारा चुने गये वाचस्पति [वर] से कराकर दहेज प्रथा के परिणाम स्वरूप उत्पन्न अनमेल विवाह की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है ।[1]

गाँव के ये नवयुवक एक प्रकार से अनमेल विवाह के प्रति सशक्त विद्रोह करके अपनी नयी जागृत चेतना एवं प्रगति शील दृष्टिकोण का परिचय ग्रामीण समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं ।

'पानी के प्राचीर' उपन्यास की गैंदा अपने वैधव्य से संतप्त एवं समाज में घृणा की पात्र बनने के कारण स्वयं अपने विषय में कहती है " मैं रांड हूँ लोग मेरा मुँह तक देखना पाप समझते हैं । शायद इसीलिए लोग कहीं जाते वक्त मुझसे बचने की कोशिश करते हैं और यदि संयोग से दिखाई पड़ गयी तो लोग लौट जाते है । और तो और अपना ही भाई मेरा मुँह नहीं देखना चाहता । एक चमाइन से भी मेरी हालत गयी गुजरी है । दुनियाँ में सहारा कौन हो सकता है ? ससुराल में देवर है वह अपना है

1- नागार्जुन - "नई पौध" पृ०सं० 144 ।

मुझे चाहता है प्यार करता है किन्तु वह भी मुँह देखे की बात है। नहीं तो अब तक मेरी खोज खबर लेने नहीं आया होता, और देवरानी तो मेरी शकल भी नहीं देखना चाहती। और आखिर देवर है तो उसी का। सास भी मुझे डायन कहती। कहती है कि मेरे विवाह के ही कारण उसका लड़का मर गया। उँह सास की कौन वह तो किनारे का पेड़ है। अब गिरे तब गिरे। तो मैं डायन हूँ, आदमी खाती हूँ, और तो और मैं अपना मरद खा गयी। मेरा मुँह देखना भी पाप है। मैं राँड हूँ... राँड हूँ......... राँड हूँ। ओह दुनिया में मेरा कोई नहीं यहाँ तक कि मेरी यह भरी भरी जवानी, मेरी हँसी, मेरे गीत भी अपने नहीं है वे होकर भी नहीं है उन्हें पति के साथ मर जाना था, लेकिन किसी तरह मैं इन्हें नहीं मार सकी तो ये सब मुझे बेशरम कहते हैं क्या- क्या कहते हैं। खुद अपना भाई मेरे दर्द को न जान सका तो और की क्या कहूँ [1]।

भारतीय ग्रामीण समाज में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं के बराबर पाया जाता है परिणामतः ग्रामीण युवतियाँ छोटी ही अवस्था में अनमेल विवाह, बाल विवाह जैसी दहेज प्रथा सम्बन्धी समस्याओं से उत्पन्न कुरीतियों के कारण वैधव्य की स्थिति में पहुँचती हैं तथा विविध आंचलिक उपन्यासों में उपन्यासकारों ने विधवा स्त्री के जीवन की पीड़ा दायक दुखमय कथा का चित्रण प्रतिबिम्बित किया है।

1- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर" पृ०सं० 164-165 ।

'रतिनाथ की चाची' आँचलिक उपन्यास में नागार्जुन में ग्रामीण विधवा ब्राह्मणी के व्यथा युक्त जीवन का बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। " इस उपन्यास में समाज की विषमता विधवा परपुरुष के अत्याचार उसकी स्वार्थपरता, समाज की मिथ्या लांछना और उसके बीच नारी का उत्पीड़न, उसके स्नेह और शील का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है।[1] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में वैवाहिक तत्वों का वर्णन एवं उससे उत्पन्न समस्याओं का विस्तार पूर्वक चित्रण प्रस्तुत किया है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासकारों ने विविध ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित विधवा समस्या का समाधान करने के लिए ग्रामीण स्त्रीयों को शिक्षित बना कर स्कूलों में अध्यापिका का कार्य या इसी प्रकार के अन्य कार्य करते हुए दिखाया है। किसी-किसी उपन्यास में यह दर्शाया है कि विधवा स्त्रियाँ रह निकर अन्तर्जातीय विवाह कर लेती हैं। यद्यपि ग्रामीण समाज इस बात को स्वीकार नहीं करता है। 'परती-परिकथा' उपन्यास में मलारी के साथ सुवंश लाल अन्तर्जातीय विवाह करके विधवा विवाह के प्रति नयी जागृत चेतना का ग्रामीण समाज को परिचय देते है 'परती-परिकथा' आंचलिक उपन्यास की मलारी - ही हरिजन गमोरी-वाला सरकार द्वारा [illegible] शिक्षा व्यवस्था का लाभ उठाकर शिक्षिका बन

1- बिन्दु अग्रवाल -"हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण "पृ0 सं0 162 ।

कर ग्रामीण जनता की सेवा करती है । तथा सुखां के साथ अन्तर्जातीय विवाह कर लेती है। यद्यपि मलारी बाल विधवा थी परन्तु अपना विवाह स्वयं सम्पादित करके एवं सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर वह सुखद एवं सम्मान जनक शिक्षिका का जीवन व्यतीत करती है"[1]।

भैरव प्रसाद गुप्त के आँचलिक उपन्यास "गंगा मैया" का गोपी अपनी विधवा भाभी से विवाह करके एक नवजागृत प्रगतिशील युवक के दृष्टिकोण का परिचय देता है ।

"विधवा जो एक ऐसे लकड़ी के कुन्दे के समान है जो पति की चिता के साथ जलता है और जब तक जलकर राख नहीं हो जाता जलता रहता है [अपनी भाभी] के जीवन में आए पतझड़ के सदैव रहने के स्थान पर उसमें गोपी पुनः वसन्त की प्रफुल्लता भर देता है "[2]। "माटी की महक " उपन्यास में उपन्यासकार सच्चिदानंद धूमकेतु ज्योति के विधवा होने के बाद मुखर्जी बाबू उसे बी0 ए0 पढ़ाकर स्कूल में अध्यापिका का कार्य करने के लिए उत्साहित करते है साथ ही उसके जीवन में आयी नीरसता को दूर करने के लिए उसे प्रेरित करते हैं ।

आँचलिक उपन्यासकारों ने यद्यपि ग्रामीण समाज में विधवा विवाह का प्रचलन अपने उपन्यासों में यथा स्थान दर्शाया है फिर भी विधवा स्त्री को समाज में वह सम्मान नहीं प्राप्त हो पाया जो वैवाहिक जीवन व्यतीत करने वाली सुहागिन स्त्रियों को प्राप्त है ।

1- [illegible] नाथ रेणु - "परती-परिकथा" पृ0 सं0 138 ।
2- भैरव प्रसाद गुप्त - "गंगा मैया" पृ0 सं0 113 ।

परिवार एवं समाज में स्त्री की स्थिति –

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने भारतीय ग्रामीण समाज के नारी सम्बन्धी मूल्यों को वाणी प्रदान की है । जिसके अन्तर्गत नारी की स्वयं केसम्बन्ध में परिकल्पना ग्रामीण जनता की नारी के सम्बन्ध में परिकल्पना एवं उपन्यासकार की स्वयं नारी के सम्बन्ध में परिकल्पना समाहित है । सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज में नारी जाति मनुष्य के समान अधिकार प्राप्त नहीं कर सकी है । विभिन्न ग्रामीण अंचलों में नारी अपने परिवार से लेकर समाज तक पुरूष वर्ग द्वारा शोषण का शिकार एवं उपेक्षिता बनकर निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करने केलिए एक प्रकार से मजबूर सी कर दी गयी है । सर्वप्रथम हम यहाँ ग्रामीण समाज मेंस्त्री की सतीत्व की सुरक्षा सम्बन्धी आदर्शात्मिक परिकल्पना पर विचार करेंगे । "बलचनमा" उपन्यास की रेवनी जब मुखिया के यहाँ काम करने जाती है तो मुखिया के द्वारा सतीत्वभंग किये जाने के प्रयास का विरोध करती है और जब कामलोलुप मुखिया अपने शारीरिक बल से रेवनी कोगिरा कर उस पर नियन्त्रण करके बलात्कार करना चाहता है तब रेवनी अपने सतीत्व की सुरक्षा केलिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग कर मुखिया के कुकृत्य के प्रयास कोविफल करदेती है ।[1]"

आदर्श नारी स्वयं के सतीत्व की सुरक्षा के लिए अपने जीवन तक का बलिदान कर देती है "माटी की मैहक" उपन्यास की ज्योति जो कि सुशिक्षित एवं रूप सौन्दर्य युक्त है " विनय के द्वारा सतीत्व भंग

1– नागार्जुन –"बलचनमा" पृ० सं० 165 ।

किये जाने पर अपना सुरक्षा करते हुए उसे कुल्हाड़ी के प्रहार से मार डालती है ।[1]

ग्रामीण समाज में नारी की गतिविधियों पर अधिक से अधिक प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गयी है । उन सभी प्रतिबन्धों में नारी के स्त्रीत्व एवं सतीत्व की सुरक्षा सम्बन्धी मूल्य अंतर्निहित हैं ।

माटी की मैहक उपन्यास की गौरी जिस समय निर्धन महिलाओं को एकत्रित कर चर्खा चलाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती है उस समय ग्रामीण जनता नारी समाज पर अपने नियन्त्रण के ढीले हो जाने की आशंका मात्र से इसका प्रतिरोध करती है ।[2]

"पानी के प्राचीर उपन्यास में कछार अंचल की ग्रामीण जनता शहरों में स्त्रियों की स्वच्छन्दता एवं स्वतंत्रता को देखकर उसे अधर्म का विस्तार समझती है।इसीलिए इस अंचल में भी नारी की गतिविधियों पर कड़े नियन्त्रण एवं अंकुश पाये जाते हैं।यहाँ की ग्रामीण जनता लड़कियों को पढ़ाने की स्वतंत्रता प्रदान करना भी अधर्म समझती है[3]।

ग्रामीण समाज में विधवा स्त्री की स्थिति और भी अधिक खराब है।विधवा स्त्री पर अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रतिबन्ध पाये जाते हैं । इन प्रतिबन्धों का उल्लंघन करके यदि विधवा किसी पर पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास मात्र ही करती है तो

1- सच्चिदानन्द धूमकेतु " -"माटी की महँक ,पृ०सं० 311 से 320 तक ।
2- सच्चिदानंद धूमकेतु " - माटी की मैहक पृ० सं० 165 ।
3- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर पृ०सं० 303-304 ।

उसे समाज की प्रताड़ना, उपेक्षा, निन्दा, भर्त्सना इत्यादि का शिकार बनना पड़ता है। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास की "बदमी" ऐसी ही एक विधवा स्त्री है। जो अपने प्रेमी कुंज से कहती है -

"तिवारी तुम्हारे गाँव के लोग यही कहते हैं कि बदमी आवारा है और कुलछनी है। जहाँ गयी नहीं पटी या तो भतार खा गयी या तो छोड़ भागी, मगर तुम्हारे इन बामनों को कौन समझाये। वे भी तो मरद ही हैं न। मरद मरद ही होता है चाहें किसी जाति का हो। और औरत की भी एक ही जाति है औरत। औरतों का दरद औरतें ही जानती हैं। मगर कैसी दुनियाँ है तिवारी, कि औरतें यह दरद भोग कर भी एक दूसरे पर हँसती हैं बल्कि वही अधिक हंसती हैं, मुझ पर भी हँसने वाली ये औरतें ही ज्यादा हैं ....[1]।"

नारी की सामाजिक दशा के विषय में डॉ० शशिभूषण सिंहल के विचार द्रष्टव्य हैं। "कुमाऊँ अंचल में [शैलेश मटियानी के चिट्ठी रसैन" उपन्यास का कथांचल] नारी की सामाजिक दशा संतोष जनक नहीं है लड़की का विवाह हो जाने पर ससुराल के अन्य स्त्री पुरुष उसका शोषण करने तथा उस पर अत्याचार बरतने में कसर नहीं छोड़ते "[2]। भारतीय ग्रामीण नारी के सम्बन्धमें उपरोक्त बातें चरितार्थ होती हैं।

1- रामदरश मिश्र- जलटूटता हुआ पृ० सं० 133।
2- डॉ० शशि भूषण सिंहल - हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ पृ०सं० 132।

समसामयिक मुस्लिम समाज में पर्दा प्रथा के कारण नारियों की प्रगति के मार्ग एक प्रकार से अवरुद्ध से हो गये हैं। राही मासूम रज़ा के 'आधा गाँव' उपन्यास में गाँव की औरतें घर के ऊपर आकाश से गुजरते हुए हवाई जहाज को देखकर कमरे के अन्दर इसलिए घुस जाती हैं कि कहीं वायुयान में बैठे लोग उनको देख न लें। जिस मुस्लिम समाज में नारियों की विचारधारा इस प्रकार की होगी कल्पना कीजिए कि वो नारी समाज कैसे प्रगति कर सकता है।

ग्रामीण नारी समाज के इस परम्परागत स्वरूप में स्वतंत्रता के पश्चात् परिवर्तन आया है। आज यही परिवर्तित स्वरूप ग्रामीण नारी को प्रगति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा दे रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार के एवं भारतीय जनता के ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार सम्बन्धी प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज गाँव की लड़कियाँ स्कूलों में विद्या अध्ययन कर गाँवों से शहरों में जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगी है।

नारी की शिक्षा के सम्बन्ध में मुस्लिम समाज में भी काफी परिवर्तन आया है। स्त्री शिक्षा के प्रसार से पहले सामान्यतः औरतों को फूहड़ तथा बेवकूफ समझा जाता था/आज पढ़ी लिखी नारियों को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

"आधा गाँव" आँचलिक उपन्यास की सईदा बी०ए०,बी०टी० तक शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अलीगढ़ में नौकरी करने लगती है -[1]। परिणामतः एक ओर गाँवो में रहने वाले प्राचीन विचार धारा के व्यक्ति उसके ग्रीष्मावकाश में घर लौटने पर व्यंग करते हैं तो दूसरी ओर फुस्सुमियाँ जैसे लोग भी हैं जो स्वयं सत्य का अनुभव कर कहते हैं कि अशिक्षित लड़की से सुशिक्षित लड़की सदैव अच्छी है -[2]।

" परती परिकथा" आँचलिक उपन्यास की मलारी शहर जाकर विद्या अध्ययन करती है और पुनः गाँव में आकर शिक्षिका का कार्य सम्भालती है ।

"पानी के प्राचीर" उपन्यास की सँध्या भी ऐसी ही ग्रामीण लड़की है जो शिक्षा प्राप्त करने के लिए शहर के स्कूलों में जाती है । इतना ही नहीं ग्रामीण महिलाओं में से कुछ ऐसी भी है जो समाज सेविका बनकर मानवता वादी दृष्टि से गाँव के लोगों के उद्वार एवं कल्याण के लिए अपना सब कुछ समर्पित करने के लिए तैयार रहती है । इरावती, गौरी मलारी इत्यादि उन्ही महिलाओं में से एक है ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भारतीय ग्रामीण नारी परम्परागत तौर तरीकों पर ही अपने जीवन

1- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव" पृ०सं० 321 ।
2- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव" पृ०सं० 321 ।

को व्यतीत कर रही है फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार के ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी प्रयासों द्वारा तथा भारतीय जनता के प्रयासों के परिणाम स्वरूप ग्रामीण नारी जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में थोड़ा परिवर्तन आया है तथा आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में इस परिवर्तन को वाणी प्रदान की है ।

वस्त्राभूषण एवं श्रृंगार प्रसाधन -

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में उपन्यासकारों ने विभिन्न जनपद मूलक एवं जनजाति मूलक ग्रामीण समाज में "मेले पर्व" शादी विवाह आदि के अवसर पर पहने जाने वाले वस्त्रों, आभूषणों श्रृंगार सम्बन्धी वस्तुओं का यथा स्थान वर्णन किया है। जिनके अध्ययन से ग्रामीण समाज की जनपद मूलक एवं जनजातिमूलक लोक संस्कृति की जानकारी प्राप्त होती है।

भारतीय जन जातीय समाज में विशेषकर महिलाओं की वेशभूषा, आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन के इतर साधनों के सम्बन्ध में सभ्य समाज से भिन्न मान्यताएं पायी जाती हैं।

मुक्तावली आंचलिक उपन्यास में नारियों एवं पुरुषों की वेश-भूषा का वर्णन करते हुए एक स्थान पर उपन्यासकार ने लिखा है-

"उनके पहनावे एवं साज सजावट में मणिपुर की जातीय विशेषता मुखरित हो रही थी। चोलियों के भीतर उभरी हुई छातियों के ठीक ऊपर से टखनों या घुटनों तक ढंके हुए किनारी दार गज्जा फनिक [लुंगी] और सिर पर गले से कमर तक लहराती भड़कीली सूती अथवा रेशमी "इन्नफी" [ओढ़नी] में यह विशेषता खूब मूर्तिमान हो उठी थी सिर पर कंघी किये काले चमकीले बालों के नीचे नाक के अग्रभाग से सीमान्त के मूल तक सीधी चन्दन की दो बड़ी रेखाएं थीं प्रतीत हो रही थीं जैसे

कपाल से जुड़ी सफेद सूत की दो धारियाँ सिर पर बिछे चमकीले काले फूलों के गुच्छे छू रही हैं[1] ।

मेलों के अवसर तथा पर्व त्योहारों के अवसर पर मणिपुरी क्वाँरी कन्याओं तरूणी सधवाओं वृद्ध स्त्रियों तथा पुरूषों की वेश भूषा का वर्णन करते हुए उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर ने लिखा है -

"क्वारी कन्याएं और तरूणी सधवाएँ लाल, पीले, हरे व बैगनी रंग की फनिकों और इनाफियों में सज उठीं, और वृद्धाएँ हल्की गेरूआई अथवा सफेद फनिकों और इनाफियों में । बैंगनी रंग की बहुरंगी धारीदार और कसीदा कढ़ी बहुमूल्य फनिकों एवं रेशम की चादरों में सजी कुछ तरूणियाँ धन वैभव का गर्व भी जता रही थीं ।

पुरूषों का लिबास सफेद धोती, कुर्ता एवं सूती अथवा रेशमी चादरों में सात्विक भाव को जता रहा था । मैले कपड़ों में भिखमंगों की टोलियाँ भी विचर रही थी[2] ।

रांगेयराघव ने अपने जनजाती मूलक आँचलिकउपन्यास" कब तक पुकारूँ' में एक स्थान पर वस्त्राभूषण का वर्णन करते हुएलिखा है -

"प्यारी आई थी लँहगा छींट का था । उसके ऊपर उसके गोरे - गोरे हाथ उसकी सुरमई चोली की बाहों से निकले हुए थे । सिर पर हरी फरिया थी होठ के ऊपर बुलाक हिल रहा था[3] ।

1- बलभद्र ठाकुर - "मुक्तावली" पृ0 सं0 5 ।
2 - " " " 66 ।
3 - रांगेयराघव -" कब तक पुकारूँ "पृ0 सं0 139 ।

इसी उपन्यास में पुरूषों की वेश भूषा का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है –

"उन दिनों मै (सुखराम) जवान था मेरे बालों मे तेल पड़ा रहता और मेरा कुर्ता महीन काले रंग का होता । मैं मूँछों में ताव देता और धोती को दुलाँगी बाँधता । कमर में कटार खोंसे रहता । मेरे एक हाँथ में कड़ा पड़ा था पतला लोहे का । गले में मैं दो तीन तावीज पहनता[1]" ।

'सागर लहरें और मनुष्य' आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार उदय शंकर भट्ट ने एक स्थान पर कोली जनजाती के पुरूषों की वेशभूषा का वर्णन किया है साथ ही स्त्रियों की वेशभूषा एवं आभूषण इत्यादि के विषय में जानकारी देते हुए लिखा है –

"आदमियों की पोशाक एक बनियाइन या कमीज । नीचे घुटनों से उपर तिकोना रंगीन रूमाल पहने रहते हैं । पीछे का भाग खुला ।

स्त्रियाँ रंगीन लाँगदार साड़ी या धोती पहनती हैं । ऊपर चोली । धोती का फेटा कमर में खोंसा रहता है। सम्पन्न परिवार की स्त्रियाँ ऊपर चादर भी ओढ़ती हैं । कान में मछली की तरह सोने की मछि । गले में मंगल सूत्र मोहन माला या चपला हार । हाथों में

1– रांगेयराघव – "कब तक पुकारूँ" पृ0 सं0 57 ।

बागड़िया ‹कड़ा› सोने का [1]"।

इसी प्रकार स्त्रियों के आभूषणों के विषय में जानकारी देते हुए बलभद्र ठाकुर ने अपने जनजाति मूलक आँचलिक उपन्यास "नेपाल की वो बेटी" में लिखा है -

"तनिक दबी सी नाक के नथुने से लटकती हुई सोने की बुलाकी उसके पतले पतले गुलाबी ओठों के सौन्दर्य पर यों खेला करती जैसे पीले पराग से सना हुआ भौंरा लाल कमल की पंखुड़ियों पर खेल रहा हो। और नाक की बगल से चिपकी हुई सोने की "फुली" ‹लौंग› और कानों से लटकती सोने की मरोड़ी और मरोड़ी पर सोने की ढुडरी उसके नैसर्गिक सौन्दर्य के ग्राम्य आकर्षण में जैसे चार चाँद लगाया करती [2]।

'अलग-अलग वैतरणी' आँचलिक उपन्यास में देवीधाम के मेले में जाने वाली स्त्रियों की वेशभूषा एवं अलंकृत आभूषण पहने हुए नारियों का वर्णन करते हुए शिव प्रसाद सिंह ने एक स्थान पर लिखा है -

हर साल रामनवमी को करैता के देवी धाम में मेला होता है ‹स्त्रियाँ› तरह -तरह के रंगीन साड़ियों में लिपटी, साज पटार किये माथे पर अँगूठे के बराबर सिन्दूर का बुन्दा लगाये, कलाइयों में चूड़ियाँ और गहने चमकाती ‹स्त्रियाँ मेले में जा रही थी›"[3]।

1- उदय शंकर भट्ट - "सागर लहरें और मनुष्य पृ0 16।
2- बलभद्र ठाकुर - "नेपाल की वो बेटी "पृ0 1 ।
3- शिव प्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी "पृ0 सं0 12 ।

इसी उपन्यास में एक स्थान पर मर्दों की पोशाक जिसे पुरूष लोग शादी विवाह के अवसर पर पहना करते थे उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है ।

"बारात बारात के अवसर पर नेवता रिश्ता में जाते वक्त वे हमेशा सिल्क का धराऊँ कुर्ता निकालते । साफ चटक धोती, सिल्क का कुर्ता और उपर से भागलपुरी चद्दर "[1]।

उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने आँचलिक उपन्यास "नई पौध" में स्त्रियों के आभूषणों का वर्णन इन शब्दों में व्यक्त किया है-

"गहने रामेसरी के अपने कम ही थे । अपनी हँसली दो साल पहले ही उसने बेटी के गले में डाल दी थी । पति की दी हुई नथ थी, कंगन थे और करधनी थी । सो आज संदूकची से निकाल कर -खटाई से माँज मूँज कर सुखा पोछकर रखे हुए थे । मझली बहू से चन्द्रहार ले आई थी, छोटी बहू से झुमके । गले में डालने की चाँदी की चकतियाँ बड़ी बहू खुद ही निकाल लाई थी । रामेसरी ने एक-एक कर बिसेसरी को गहने पहनाएं "[2]।

पद्मपुरी ग्राम की स्त्रियों के वस्त्र तथा आभूषण के विषय में उपन्यासकार उदय शंकर भट्ट ने अपने आँचलिक उपन्यास लोक परलोक मे वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है -

---

1- शिव प्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 198 ।
2- नागार्जुन -"नई पौध" पृ०सं० 36 ।

} बगल में कंधों पर पोटली रखे}, पीली लाल काली गोट लगे छींट के लहंगे, वैसी ही रंग बिरंगी ओढ़नी ओढ़े हाथों में लाल हरी चूड़ियाँ, पछेली, छन्न, कड़े, गले में हँसली, कंठी, रंग बिरंगी नकली मोतियों, मूँगों की मालाएँ पहने औरतों के झुंड टीले पर }देवी दर्शन को} दिखाई दे रहे थे "[1]।

फणीश्वर नाथ रेणु ने मेरी गंज गाँव में रहने वाली स्त्रियों के आभूषणों आदि के विषय में एक स्थान पर अपने आँचलिक उपन्यास उपन्यास "मैला आँचल में लिखा है -

"आज कमली इस इलाके में पहने जाने वाले सभी किस्म के गहनों से लदी है ......बाँक, हँसुली, बाजू, कंगन, अनन्त, चूर, झंझनी अर्थात झुनक- झुनक बजने वाली बेड़ियाँ जिसे झंझनी कड़ा कहते हैं और चूर तो देह की सिहरन पर भी खनकते हैं"[2]।

ग्रामीण समाज में सधवा स्त्रियाँ श्रृंगार करते समय माँग में सिंदूर हाथों में मेंहदी तथा पैरों में महावर इत्यादि लगाती है "दीया जला दिया बुझा" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने एक स्थान पर नारी के वस्त्राभूषण एवं श्रृंगार प्रसाधन का वर्णन करते हुए लिखा है ।

1- उदय शंकर भट्ट - "लोक परलोक पृ0सं0 । ।

2- फणीश्वर नाथ रेणु" -मैला आँचल पृ0 सं0 297 ।

" ठकुराइनता पीले वस्त्र पहन कर हाथों में मेंहदी लगा रही हैं। मांग में उसने सिंदूर भर रखा है। पावों में उसके घुंघरू की पायल पहन रखी है "[1]।

विवाह के अवसर पर नववधू को वस्त्राभूषण तथा श्रृंगार प्रसाधनों के द्वारा दुल्हन का रूप दिया जाता है। "बलचनमा" आँचलिक उपन्यास में नागार्जुन ने नववधू के श्रृंगार का वर्णन करते हुए एक स्थल पर लिखा है -

"पीली साड़ी और लाल चोली पीठ की ओर से साड़ी पर हथेलियों के लाल - लाल धब्बे पड़े हुए थे। तलवों में महावर के नाम पर लाल रंग अपनी गहरी लाली खिला रहा था"[2]।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न जनपदीय आँचलिक उपन्यासों एवं जनजाति मूलक आँचलिक उपन्यासों के अनुशीलन से लोक संस्कृति के नियामक एवं सहयोगी तत्व के रूप में वस्त्राभूषण एवं श्रृंगार प्रसाधन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है जिनके आधार पर हम लोक संस्कृति का निरूपण करने में सक्षम होते हैं।

अभिवादन -

स्वागत सत्कार ग्रामीण समाज की एक परम्परा सी है घर पर आए हुए मेहमान के आदर सत्कार में ग्रामीण लोग कोई कोर कसर

1- यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - "दीया जला दीया बुझा" पृ0सं0 190।
2- नागार्जुन -" बलचनमा" पृ0 सं0 107 ।

नहीं रखते । अतिथि के स्वागत के लिए वे यदि घर पर सामान नहीं होता तो अड़ोस पड़ोस से माँग कर लाते है और सत्कार करते हैं ।
'नेपाल की वो बेटी' आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर ने एक स्थल पर मेहमान के अभिवादन के विषय में लिखा है –

" उस युवक ने गद्दी पर बैठ जाने पर पत्नी को आवाज दी पंडितानी । पहुँने के लिए साहला के घर से चिलम भर कर तो ले आओं । फिर युवक से –" जानते ही हो पानी कि मैं धूम्रपान नहीं करता । पाहुने के लिए दूसरे के ही घर से मंगाना पड़ता है [1]" ।

असम परिवार में एक प्रथा प्रचलित है कि घर आये मेहमान के आदर सत्कार के रूप में पान और सुपारी अवश्य दिया जाता है। इसी विषय को लेकर देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने आँचलिक उपन्यास "ब्रह्म पुत्र " में एक स्थल परलिखा है –

" असम में घर-घर सुपारी के पेड़ नजर आते हैं । घर में कोई भी आए उसे पान ताम्बूल अवश्य देते हैं । निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी ताम्बूल का टुकड़ा तो हर अवस्था में भेंट कर सकता है "[2]।

'नेपाल की वो बेटी' आँचलिक उपन्यास में बलभद्र ठाकुर ने अभिवादन का चित्रण करते हुए एक स्थल पर लिखा है –

"मुखिया कमरे में प्रविष्ट हुआ । विनय से झुककर जुड़े हाथों को उलीचते हुए स्वस्ति कह कर उसने जिम्मावाल को आशीर्वाद दिया और जिम्मावाल ने भी आज कुछ विनय से दोनों हाथ जोड़ उसे

1– बलभद्र ठाकुर –" नेपाल की वो बेटी " पृ0 सं0 175 ।
2– देवेन्द्र सत्यार्थी – "ब्रह्मपुत्र" पृ0 सं0 228 ।

प्रणाम का निवेदन किया "[1]।

ग्रामीण समाज में गाँव के प्रतिष्ठित लोगों के आने पर उनके सम्मान में भोजन इत्यादि करना एवं उनके मनोरंजन की भी उचित व्यवस्था करना ग्रामीण जन अपना कर्तव्य समझते है तथा गाँव के लोग इस प्रकार से स्वागत सतकार करके अपने धन्य भाग्य मानते हैं।

"दीया जला दीया बुझा" आंचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने इसी विषय का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है-

"गाँवों के अधीश्वर नरेश पद्म सिंह जी अपने सामन्तों अपने वैर ब खवाहों को देख भाल करते-करते नारायण सिंह जी के ग्राम में पधारे।

भोजनोपरान्त कुम्भे के भरपूर जाम के साथ ढोलनियों के नृत्य व गीत हुए। गीत के पश्चात् पद्मसिंह जी ने नारायण सिंह जी को फरमाया -" तो ठाकुर सा, आज रात हम अकेले ही बीतायेंगे ?

नहीं-नहीं अन्नदाता मैं आपकी सेवा में अभी माल हाजिर करता हूँ "[2]। उपरोक्त आँचलिक उपन्यासों में वर्णित अतिथि सत्कार की प्रक्रिया जिसे आँचलिक उपन्यासकारों ने कहीं अभिवादन सूचक वाक्यों

1- बलभद्र ठाकुर - नेपाल की वो बेटी पृ०सं० 140 ।
2- यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - दीया जला दीया बुझा पृ० सं० 83 ।

के माध्यम से तथा कहीं घर आए अतिथि को उपहार इत्यादि देकर तथा कहीं कहीं अतिथि को प्रीतिभोज कराकर एवं उनके मनोरंजन के साधनो को जुटाकर भारतीय ग्रामीण समाज की शताब्दियों से चली आ रही उस परम्परा को वाणी प्रदान की है जिसका शहरों और नगरों में एक प्रकार से अभाव सा है या अतिथि का स्वागत सत्कार सिर्फ उपरी दिखावा मात्र रह गया है । भारतीय ग्रामीण समाज की अभिवादन परम्परा एक प्रकार से लोक संस्कृति के नियामक तत्वों में सहयोगी तत्व है ।

खान पान -

लोक संस्कृति के नियामक तत्वों में खान पान, भोज पदार्थ, पेय पदार्थ इत्यादि का अपना विशिष्ट स्थान है, साथ ही इनके द्वारा ग्रामीण समाज की आर्थिक स्थिति की भी झलक स्वयं परिलक्षित होने लगती है । ग्रामीण समाज में अधिकांशतः निम्न वर्ग की संख्या अधिक होती है। इसलिए इस निम्न वर्ग के श्रमिक मजदूरों का खान पान एक प्रकार से केवल जीवित रहने के लिए सहारा मात्र होता है ।

'बाबा बटेसर' नाथ आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने इस बात को अभिव्यक्त किया है-"बस्ती भर में तीन ही परिवार ऐसे थे जिन्हें एक जून अन्त तक चावल नसीब होता रहा । एक था तर्क पंचानन का परिवार दूसरा परिवार था राजा बहादुर के पुरोहित का । तीसरा था एक राजपूत काश्तकार का घर । बाकी दस एक घर ऐसे थे जिनमें सिर्फ बच्चों को भात मिलता था सो वो भी मचलने पर - सयाने जुन्हारी, मकई, अरहर और चनों पर निर्भर थे । महीने में एक आध बार पतली खिचड़ी मिल जाती। बीस पचीस परिवार जमीन बेच बेच कर शकरकंद से पेट की आग बुझाते थे ... मध्य वर्ग का यही सिलसिला था । जो बिचले तबके के भी निचले स्तर पर थे उन्हें शकरकन्द भी एक ही जून मिल पाता था"।[1]

1- नागार्जुन -'बाबा बटेसर नाथ" पृ0 सं0 50-51 ।

ग्रामीण समाज में किसान मजदूर पेट भरने के लिए ही जी तोड़ मेहनत किया करते हैं । जिससे वे अपना जीवन निर्वाह कर सके । शिव प्रसाद सिंह ने अपने आँचलिक उपन्यास `अलग-अलग वैतरणी' में इसका चित्रण किया है-

चैत की शाम करैता की चमरौटी में हमेशा ही गुलजार और गनसायन लगती है .... नई फसल की महक इस गंध को हल्के गुलाबी रंग में रंग देती है ।

"घरों में खंडहरों में चबूतरों पर लकड़ी या उपले की आग में सिंको जाती "हर्ष्ड" लिट्टियों की सोंधी गंध से चैती हवा बौरा जाती है । लाल-लाल अंगाकड़ी प्याज मिर्ची और नमक खाने के बाद भर लोटा ठंडा पानी"- बस इतने से ही संतोष के लिए यह दिन भर की जाँगर तोड़ कमाई [1]।

खान पान भोज पदार्थ, पेय पदार्थ आदि से ग्रामीण समाज के निम्न स्थिती की, मध्य एवं उच्च स्थिती की भी जानकारी मिल जाती है करैता गाँव के तमाम लोगों को मेहनत करने के पश्चात् मुश्किल से पेट भर भोजन नसीब होता था। शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में -

"नेव चावल का भात और चने के साग का सालन । बस यही था करैता के तमाम लोगों की कमर तोड़ मिहनत का फल [2] ।

1- शिव प्रसाद सिंह -"अलग -अलग वैतरणी पृ०सं० 569 ।
2- शिव प्रसाद सिंह -`अलग-अलग वैतरणी' पृ०सं० 375 ।

रांगेयराघव ने अपने आँचलिक उपन्यास में भोज्य सम्बन्धी सामग्री के वर्णन को इस प्रकार वाणी प्रदान की है -

" तू भूखी सोरगी ? बूढ़ी ने पूछा जा मटके में चने धरे हैं चबा ले । मैं तो दाँत बिना खा न सकी । जब रहा न गया तो थोड़े कूट कर पानी के साथ फाँक लिये थे । आधार बन ही गया"[1]।

बलचनमा आँचलिक उपन्यास में एक स्थान पर भोज पदार्थ का वर्णन इस प्रकार मिलता है - जलसीम [मछली] से तरकारी का काम चलता है मुइयाँ-मुसहर भी आसानी से सेर आध सेर छोटी मछलियाँ डबरे से झाँक लाते हैं । आग में भूनकर बिना नमक भी मछरी खाओ तो बुरी नहीं लगेगी गरीब गुरबा लोग महँगी अकाल के जमाने में महीनों मछरी पर गुजार देते हैं "।[2]

'सागर लहरें और मनुष्य' आँचलिक उपन्यास में भट्ट जी ने बताया है कि बरसोवा गाँव के लोगों का मुख्य भोजन मछली है और अक्सर यहाँ के मछली मारने वाले लोगों को आठ-आठ दस-दस दिन तक समुद्र में रहना पड़ता है। वहाँ वे सिर्फ मछली खाकर ही अपना जीवन निर्वाह करते है ।

उपन्यासकार के शब्दों में -

" सूर्खी मछलियों के काँटे निकाल कर उन्हें छुरी से

1- रांगेयराघव -'कब तक पुकारूँ' पृ० सं० 102 ।

2- नागार्जुन - "बलचनमा" पृ० सं० 87 ।

चीरती रही । चूल्हें पर चढ़ा भात पड़क रहा था .... ढक्कन उतार कर चावल देखने लगी । पल्ले से उसने ढक्कन फिर रख दिया और मछली चीरने लगी । ...... फिर उठकर बेसन निकाल कर घोला और बाएं हाथ से नमक मिर्च मसाला मिलाया[1]" ।

एक अन्य स्थल पर" रत्ना ने कहाँ हम लोगों को पाँच-पाँच छः छ दिन और कभी -कभी आठ-आठ दिन समुद्र में रहना पड़ता है । वहाँ हम लोग खाना नहीं ले जा सकते । उस समय का आहार ये मछलियाँ ही होती हैं ।

" दीया जला दीया बुझा" उपन्यास मे भोज्य पदार्थ का वर्णन एक स्थान पर यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' उपन्यासकार ने इस प्रकार किया है -

"बाबा उसके सामने (नत्थु के) मिट्टी की बनी थाली रखती हुई बोली बाजरी की रोटी और फलियों का साग है, गुड़ नहीं है मेरे पास खाना चाहता है तो अण्चा से माँग ला"[2]।

मुस्लिम परिवारों के भोज्य पदार्थ का वर्णन करते हुए राही मासूम रज़ा ने एक स्थान पर अपने उपन्यास 'आधा गाँव' में लिखा है ।
" वह इन लफ्ज़ों को घूर रहे थे कि आठ नौ साल की तीसरी बेटी मगफिया तीनी में खाना लायी । एक प्याली में गाय के गोश्त का कलिया था । एक में बघरी हुई अरहर की पतली दाल जिसमें लहसुन की एक फाश तैर रही थी । एक प्लेट में लाल रंग् अक्कम था और एक

1- उदयशंकर भट्ट - "सागर लहरें और मनुष्य" पृ0 148 ।
2- यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र"-'दीया जला दीया' बुझा, पृ0 सं0 39 ।

तरफ चपतियों की चार जोड़ियाँ थी । रुकुया ने तांबे के एक कटोरे में पानी रख दिया [1] ।

"वरुण के बेटे" आँचलिक उपन्यास में नागार्जुन ने एक स्थल पर लिखा है -

" पाव डेढ़ एक मुँजिया चावल चंगेरी में लाकर माधुरी की अम्मा ने सामने रख दिया - लो उठो भी ।
नई फसल के कच्चे चावल थे ।

खुरखुन ने उन्हें अंगोछे से बाँध कर पोटली सी बना ली । अंगोछा गरोखर के पानी का भींगा अब भी सूखा नहीं था । तो भी चावलों की पोटली को उसने पानी भरे डोल के अन्दर डुबो लिया । कच्चे चावलों से दांतों, मसूड़ों को वाजिब नाहक कौन करवाए । क्या है घड़ी आँधी घड़ी का जल योग पाकर नरम तो ये पड़ ही जाएँगे "[2]।

" नेपाल की दो बेटी" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने यह दर्शाया है कि ग्रामीण परिवारों में औरतें पुरुषों के लिए अपनी परिस्थिति के अनुसार कुछ अधिक स्वाद युक्त भोजन बनाती थी ये भोजन औरतों को कम ही मिलते थे ।
उपन्यासकार बलभद्र ठाकुर के शब्दों में -

"सुबह का समय था। हेमा और कुसुमा हरिशंकर के लिए दाल, भात और अपने दोनों के लिए महुए की कुछ रोटियाँ और टिंडो बना

1- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव" पृ०सं० 145 ।
2- नागार्जुन - "वरुण के बेटे" पृ०सं० 12 ।

रही थी । हरिशंकर के आग्रह और अनुरोध पर वे दाल भात का यत्किंचित प्रसाद भी पा लेंती, लेकिन उनका अपना प्रिय भोजन टिंडो के डल्ले ही थे अथवा महुए की रोटियाँ "[1]।

ग्रामीण समाज में साधरणता भोजन उपरोक्त प्रकार का ही पाया जाता है किन्तु शादी विवाह के अवसर पर या भोज नेवते के अवसर पर, जमींदार मुंशी आदि लोगों के यहाँ का भोजन कुछ अच्छे स्वादिष्ट प्रकार के खाने को प्राप्त होते थे। "पानी के प्राचीर" उपन्यास में भोज्य पदार्थ का वर्णन करते हुए उपन्यासकार राम दरश मिश्र ने लिखा है -

"अरे मुंशी गनेश प्रसाद के यहाँ जिसने खाया है वह जानता है कि पूड़ी सोहारी क्या होती है, और तनी देखिए खाली सोहारी पूड़ी की बात कौन कहे, चटनी, अचार, मिठाई, तरकारी के बीसों परकार मुंशी जी के यहाँ खाने को मिलते। खाते-खाते तबीयत तर हो जाती थी। खाना और खिलाना तो कायस्थ ही जानते है "[2]।

'नई पौध' उपन्यास में नागार्जुन ने ब्रह्मभोज का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है -

"लड़आइन ने .... जेठ की पुरनिमा के दिन वेद और कर्मकांड जानने वाले दो पंडितों को बुलवाकर विधि पूर्वक जग्य करवाया, साथ ही

1- अनन्त ठाकुर - "नेपाल की वो बेटी" पृ०सं० 29 ।

2- रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" पृ० सं० 59 ।

फल फरहारी का ब्रह्म भोज भी हुआ । .... जर जवार के बिरादरी के अपने भाई लोगों का भारी भोज हुआ –

दाल, भात, चार तरकारियाँ, बड़ियाँ, बड़े, आम और आँवले का अचार, दही- चीनी, पके हुए शहरी औरकलमी आम .... थई थई मच गई लोग धन्न- धन्न कर उठे "[1]।

"मुक्तावती उपन्यास में दावत के अवसर पर स्त्री पुरुष एक साथ खाना खाने बैठे – नागा जाति के लोगों के खान पान का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है –

"स्त्री पुरुष मिलकर जीमने बैठे । रसोई के बर्तनों के अतिरिक्त पालिशदार टीन और एलुमिनिय के बर्तन भी थे । मिट्टी की कड़ाहियों में अलग-अलग पके सुअर, कुत्ते और मुर्गों के मांस अपनी भीनी गंध से उनकी रसना को उत्तेजित किये जा रहे थे । माछ भी बना था । एक बड़ी हांडी में रखी जुथा [चावल को शराब] की नशीली गन्ध उन्हें अपनी ओर खींच रही थी"[2]।

बलभद्र ठाकुर ने अपने आंचलिक उपन्यास "नेपाल की 'दो बेटी' में जंगल में खायी जाने वाली शानदार दवात का वर्णन करते हुए लिखा है –

1– नागार्जुन –"नई पौध"– पृ०सं० 76–77 ।

2– बलभद्र ठाकुर – "मुक्तावती" पृ० सं० 407 ।

" .... चारों का जात भात अलग-अलग होने के कारण अलग-अलग चूल्हें में सब ने अलग अलग दाल भात बनाकर तैयार किया । भैंस और गायें दुही गईं । अचार के साथ दाल भात और गरम -गरम दूध में जरा जरा गुड़ मिलाकर इस वन भोज में उन्हें कम स्वाद न आया । यह थी जंगल की उनकी सबसे शानदार दावत [1] ।

पेय पदार्थ -

आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने आंचलिक उपन्यासों में भोज पदार्थ के साथ-साथ पेय पदार्थ का भी वर्णन किया है । जिनमें शराब, ताड़ी, भाँग इत्यादि पेय पदार्थ प्रमुख हैं । इन नशीले पेय पदार्थों का उपभोग अधिकतर पुरुष वर्ग ही करता है ।

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में ताड़ी पीने का जिक्र एक स्थान पर आया है। "रेणु" जी के शब्दों में -

"बैसाख और जेठ महीने में शाम को तड़बन्ना में जिन्दगी का आनन्द सिर्फ तीन आने लबनी बिकता है। चने की घुघनी, मूढ़ी और प्याज और सफेद झाग से भरी हुई लबनी । .... खट्टमिट्ठी, शकर चिनियाँ, और बेरचिनियाँ, ताड़ी के स्वाद अलग अलग होते हैं । बसन्ती पीकर सिर्फ पियक्कड़ होश दुरुस्त रख सकते हैं।...... सूरज डूबने

1- बलभद्र ठाकुर -" नेपाल की वो बेटी" पृष्ठ0 216 ।

के समय जो लबनी पेड़ से उतारी जाती है उसकी लाली तुरन्त ही आँख में उतर आती है । नशा के माने है और भी थोड़ा पीने की ख्वाहिश और एक लबनी ।[1] " सागर लहरे और मनुष्य' आँचलिक उपन्यास मे उपन्यासकार ने पेय पदार्थ का वर्णन करते हुए लिखा है -

"(मानिक ने) जेब से पौआ निकाला और गटगट करके आधे से ज्यादा पी गया । इसी समय दुर्गा की आँख खुली तो उसने देखा मानिक खड़ा-खड़ा ताड़ी पी रहा है[2]।

श्री लाल शुक्ल ने अपने आँचलिक उपन्यास राग दरबारी में भंग भोज के अवसर पर भाँग तैयार करने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए लिखा है :-

"गांव सभा की ओर से भंग भोज हुआ । गाँधी चबूतरे पर कई सिले एक साथ खटकने लगीं । कुल धक्कड़ में भंग की पिसाई हुई । कहीं भंग नशा करने से इनकार न कर दे, इस खतरे को दूर करने के लिए उसमें धतूरे के बीज भी मिला लिये गए । बदाम, पिस्ता, काली मिर्च, इलायची और दस बीस तरह की न पहचानी जाने वाली चीजें उसमें पीस कर डाली गयी । इस मिक्सचर को दूध और पानी में

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -"मैला आँचल "पृ0 सं0 207-208 ।
2- उदय शंकर भट्ट - " सागर लहरें और मनुष्य" पृ0सं0 141 ।

घोला गया, और देखते - देखते कई बाल्टियाँ उफना चली"[1]।

सनिचरा प्रधान बन गया है।इस खुशी में सब को उसने चुग्गड़ पिलवाय। श्री लाल शुक्ल के शब्दों में -

"जोग नाथ ने दस रुपये का नोट निकाल कर दुकानदार को पकड़ाते हुए कहा " सब लोगों को एक एक चुग्गड़ दो कोई बचने न पाए बहुत दिन बाद अपनी भूमि में आये हैं। बहुत पैसा लेकर आये हो। "

सनिचरा प्रधान बन गया है उसका हुक्म हैआज सब लोग मौज से पिये "[2]।

कब तक पुकारूँ आँचलिक उपन्यास में शराब पीने के विषय में एक स्थान पर उपन्यासकार ने लिखा है।

" सुख राम ने पी डाला। बहुत दिन बाद आज शराब पी... पर पीते ही मज़ा आया। पुरानी चीज़ ने ठोसा दिया........ गोश्त पकने लगा था। गँध आने लगी थी वे लोग खूब शराब पीते रहे "[3]।

इसी उपन्यास मे एक अन्य स्थल पर लेखक ने लिखा है -

"बाँके ने एक बोतल उठा ली और कहा मसालेदार लाया हूँ

1-श्रीलाल शुक्ल - " राग दरबारी" पृ0 सं0 359।

2- श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी " पृ0सं0 297 ।

3- रांगेयराघव -" कब तक पुकारूँ "पृ0 सं0 398 ।

उस्ताद ।

जोर की आवाज से डाट खुली और उसकी बदबू व्याप गई । लाल लाल बोतल में से शराब गिरने लगी फेन झलक आए और फिर बैठ गए । .... रूस्तम खाँ ने पी तो मज़ा आया वह तो उन लोगों में था जो शराब की याद में झूमते थे । पीना तो जन्नत में तशरीफ ले जाने के बराबर था "[1]।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आँचलिक उपन्यासों में उपन्यासकारों ने भिन्न-भिन्न खुशी के अवसरो पर, दावत के मौकों पर भोज पदार्थ एवं पेय पदार्थ का यथा स्थान वर्णन किया है। जिसके अध्ययन से हमें ग्रामीण समाज के खान पान आदि लोक संस्कृति के तत्व के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जाती है ।

1- रांगेयराघव - कब तक पुकारूँ " पृ० सं० 322 ।

पारिवारिक जीवन में अंध विश्वास -

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में अंध विश्वास तथा शकुन - अपसकुन समनान्तर रूप से चित्रित हुए हैं। वास्तव में इन दोनों में अन्तर अत्यल्प है। शकुन अपसकुन भी एक प्रकार के अंध विश्वास ही हैं। ग्रामीण जन जीवन को अंधविश्वास से काट कर यदि पृथक कर दिया जाय तो वह जीवन ग्रामीण जन जीवन नहीं रह जाता है। क्योंकि शहरों में तो लोग शिक्षित होने के कारण अंध विश्वास जैसे रूढ़िगत बातों पर विश्वास ही नहीं रखते। गाँव का अर्थ है विश्वास और शताब्दियों का यह विश्वास अंधकाराविष्ट रहा। अतः अंध विश्वास होकर भी ग्रामीण जन जीवन के साथ इस प्रकार जुड़ गया कि अनिवार्य अंग हो गया है। आँचलिक उपन्यासों के एक अनिवार्य उपकरण के रूप में इसकी स्थिति का आंकलन किया गया है। यहीं कारण है कि परम्परागत रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों में जकड़ा भारतीय ग्राम जीवन नागरीय जनजीवन के सम्मुख जैसे भोड़े प्रहसन की भाँति जीवित है। फिर भी आँचलिक उपन्यासकारों ने उसे व्यंग्य के रूप में कम विशिष्ट जीवन चित्र के रूप में अधिक अंकित किया है।

पारिवारिक जीवन में अंध विश्वास आँचलिक उपन्यासों में शुभ अशुभ या शकुन अपसकुन के रूप में यथा स्थान दृष्टिगोचर होता है। शादी विवाह के अवसर पर शुभ या शकुन सूचक बातों पर विचार किया जाता है। "वन के फूल" आँचलिक उपन्यास में " हो" जनजाति में विवाह के

शकुन "एरेउ" पर विचार किया जाता है। वधू पक्ष के व्यक्ति ने रास्ते में क्या देखा ? यह सविस्तार वर्णित करते हैं और इस पर भविष्य का चिन्ह समझा जाता है और उसी के ऊपर फैसला होता है कि परमात्मा को कार्य का सिद्ध होना मंजूर है या नहीं । जिन प्रमुख लक्षणों पर निर्णय निर्भर करता है और उनके अर्थ क्या है। वे निम्नलिखित है -

योगेन्द्र नाथ सिन्हा के शब्दों में - "चील मुर्गी के चैंगना को उठा ले गई या नहीं ? यदि ले गई तो सामने से या दाएं से बाएं से ? [अर्थ -सब कुछ तय हो जाने के बाद ब्याह के पहले ही कोई दूसरा युवक लड़की को उठा ले जाएगा । घटना सामने हुई तब तो निश्चय ही ऐसा होगा ही और इसका कोई काट नहीं, यदि दाएं हुई तो निश्चय होते हुए भी उसका उपचार हैं, बाएं ,तो सन्देह है कि ऐसा होगा या नही ।

2- कौवा पेड़ पर कहाँ बैठ कर काँव काँव कर रहा था- सामने, दाएं या बाऐ ? [अर्थ-ब्याह यदि होगा तो बीमारी फैलेगी सामने दाएं या बाएं पहले की तरह निश्चयता की श्रेणी हैं ।

3- नदी पार करते समय साँप दिखाई दिया या नहीं और हाँ, तो किस ओर ? [अर्थ -लड़की कृपण होगी और लड़का उसके वश में रहेगा]

4- कुत्ते ने जमीन खोदी ? [अर्थ- यदि खोदी तो किसी पक्ष का कोई मर जाएगा, विशेष कर जन्म होते ही बच्चा]

5— गाय बैल सामने लड़े ‌‌‌‌(अर्थ- ब्याह के समय झगड़ा होगा ।

अच्छा या बुरा जो भी लक्षण दीख पड़ा था, उस हर एक के लिए एक-एक "मेरौमी" अलग रखा गया, अच्छे सगुन का एक ओर, बुरे का दूसरी ओर अन्त में अच्छे-बुरे का जोड़ घटाव करने और एक दूसरे के काट का मिनहा देने के बाद ब्याह का सगुन बहुत अच्छा निकला । दो -एक अपसगुन भी निकले, जिनकी शांति विधिवत की गई [1]।

ग्रामीण जन जीवन में विवाह को शुभ अवसर माना जाता है। जबकि परिवार के शुभ चिंतक लोग इस बात का यथाशक्ति प्रयास करते है कि कोई ऐसा अशुभ कार्य या बात न होने पाये जिससे इस शुभ कार्य में बाधा उत्पन्न हो।ऐसे अवसरों पर विधवाओंको वैवाहिक स्थल से दूर ही रखा जाता है । आधा गाँव उपन्यास की -(विधवा) उम्मुल हबीबा शादी ब्याह के मौकों पर अछूत हो जाती थी । कन्दूरी के फर्श पर उसकी परछाई नहीं पड़ सकती थी । दुल्हन के कपड़ों को वह छू नहीं सकती थी ।"[2]

ग्रामीण जनजीवन में लोगों का ऐसा विश्वास है कि किसी शुभ कार्य के लिए जाते समय यदि कोई विधवा मिल जाय या कोई टोक दे तो कार्य सफल नहीं होगा इसलिए ग्रामीणपरिवार में लोग इन अशुभ सूचक बातों से दूर रहने का प्रयास करते हैं । आँचलिक उपन्यासकार राम दरश मिश्र के शब्दो में -

---

1- योगेन्द्र नाथ सिन्हा-"वन के मन में "पृ०सं० 126 ।
2- राही मासूम रजा -"आधा गाँव" पृ०सं० 166 ।

"जब कहीं किसी यात्रा पर जाओं तो रास्ते में गेंदा जरूर मिल जाती है। राम-राम विधवा का मुंह देखकर जाना ठीक नहीं लोग झल्ला कर लौट आते । कोई शुभ मुहूर्त करने को निकलो तो गेंदा छूंछा घड़ा लिए धीरे-धीरे कुएं की ओर आती हुई अवश्य दिखाई पड़ जाती और कुएं पर आकार वह अन्यमनस्क भाव से पता नहीं क्या देखा करती है[1]।

'धरती-परिकथा' आँचलिक उपन्यास में सर्वे कचहरी में फैसला सुनाया जायगा इस लिए सुचित लाल गाँव भर के लोगों के साथ यात्रा पर जा रहा है। और इसी वक्त सुचित लाल के लड़के को छींक आ गयी। छींक आना मानों अशुभ होगा ही ऐसो अंधविश्वास से पूर्ण विचार धारा ग्रामीण जन जीवन में एक प्रकार से घर कर गयी है । हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ "रेणु' के शब्दों में -

" आज सर्वे कचहरी में फैसला सुनाया जायगा । सुचित लाल के लड़के ने बहुत रोका । लेकिन नाक की नोंक पर आई छींक भला रूके ओहीं ई ।

- बड़ा हड़ाशंख है साला । सुचित लाल ने अपने हड़ाशंख अभागे लड़के की ठीक नाक पर थप्पड़ मारी लड़का चीख चीखकर रोने लगा । कूड़ी मछली देखकर शुभ लाभ के मेमटैम करके जय गनेसा कहके घर से निकले हैं लोग ।

1- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर" पृ०सं० 163 ।

अपने साथ गाँव भर के लोगों की यात्रा खराब कर रहा है सुचित लाल'[1] । ग्रामीण परिवार में बहुत सी छोटी-छोटी बातें ऐसी होती हैं जिनका शगुन अपशगुन से गहरा सम्बन्ध होता है जैसे घर से चलते वक्त छींक आना अपसगुन माना जाता है ठीक उसी प्रकार घर से जाते समय पुकारना या कुछ टोक देना अपसगुन ही समझा जाता है । इसी बात को "दीया जला दीया बुझा" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने वाणी प्रदान की है ।

"अप्रत्याशित रधिया चौक पड़ी । जोर से पुकार बैठी - बाबा।" क्या है ? झल्ला पड़ा खेतदान-" लाख बार तुमसे सिर पीट-पीट कर कह दिया है कि जाते समय मत पुकारा कर पर तू अपनी आदत से बाज ही नहीं आती "[2]।

इसी प्रकार ग्रामीण जन जीवन में पशु पक्षियों की आवाजें भी अपसकुन का सूचक मानी जाती हैं । "परती-परिकथा"आँचलिक उपन्यास के उपन्यासकार ने इस बात को अभिव्यक्त किया है "रेणु" जी के शब्दों में -

धरती पर टि्टही बोल रही है- टि टिंहि टिं टि टि हिं टि.. अशुभ है यह बोली । मातायें घर घर में अपने नवजात शिशु को छाती से चिपका कर बड़बड़ाती है छिनाल । टिटही .... कहाँ से कहा मरने आई है ।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु " परती-परिकथा" पृ०सं० 216-217 ।

2- यादवेन्द्र शर्मा -'दीया जला दिया बुझा'-पृ० सं० 19 ।

तुझे तीर लगे कीरबा बन्जारे का । टीं टी करती है राकसनी"[1]।

इसी प्रकार" पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में कुत्तों के रोने और आँधी पानी आने से ग्रामीण जन मानस में अशुभ का भय समा जाता है। उपन्यासकार राम दरश मिश्र के शब्दों में -

"काली रात .... हें राम असमय बादल कहाँ से घिर आये । बादल तो सावन का संगी साथी है ..... बूँदे पड़ रही है । आसमान का कलेजा फाड़ती हुई हरहराती हुई हवा बह गयी- गाँव की ओर से कुत्ता रो रहा है कुऊँ ऊ ऊँ उ उ ऊँ ..... कोई पक्षी दूर के पेड़ पर बैठा कब से रिरिया रहा है मुर्रओं....मुँराओ आज न जाने क्या होगा ? प्रलय की रात है" ।[2]

'परती-परिकथा'उपन्यास में शाम होते ही घर-घर में झगड़े होने लगते हैं इस बात को उपन्यासकार ने अशुभ सूचक बताया है। रेणु जी के शब्दों-

"क्या हो गया है गाँव को ? शाम होते ही घर घर में लड़ाई शुरू हो जाती है ..... कोई सड़िया भूत की सवारी आती है। शायद पहले एक घर में शुरू हुआ । मर्दों की बात में औरतों की बोली कभी-कभी सुनाई पड़ती ,मोटी महीन आवाज में बच्चे और साथ ही कुत्ते रो पड़ते .... एक

1- फणीश्वर नाथ रेणु -परती-परिकथा" पृ0सं0 408 ।

2- राम दरश मिश्र - पानी के प्राचीर"पृ0सं0 234 ।

घर का झगड़ा दूसरे घर की ओर लपकता । फैल जाता, गाँव में एक अजीब कोलाहल "[1] ।

ग्रामीण जन मानस में यह अंध विश्वास घर कर गया है कि रात में यदि कौआ चीखता है या दिन में गीदड़ हुआँ हुआँ करता है तो निश्चय ही अशुभ होगा, अकाल पड़ेगा । 'बाबा बटेश्वर नाथ' उपन्यास में इसी बात को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। उपन्यासकार के शब्दों में –

"देखो हो न ? इस बार फागुन में ही कैसी मनहूसी छा गई है । रात को काला कौआ चीखता रहता है कर्र कर्र । दिन के समय गीदड़ हुआँ हुआँ करता है .... अबकी भारी अकाल पड़ेगा देख लेना ।"[2]

अंध विश्वासों के मूल में ग्रामीणों की अशिक्षा है । ग्रामीण समाज इन अंध विश्वासों के भूत भँवर की गहरी परतों में दबा है। अंध जकड़न के रूप में अवशिष्ट ये विकृतियाँ मूढ़ता के साथ संयुक्त होकर हास्यास्पद एवं भयावह हो जाती है। जिनके विषय में सोचने मात्र से व्यक्ति शुभ अशुभ की शंकाओं के बीच में फंस जाता है । और सन्देह की दिवारें उसके हृदय पर घर कर जाती है । वास्तविकता तो यह है कि ये अंध परम्पराएं एवं अंध विश्वास लोक संस्कृति का ही एक तत्व है ।

1– फणीश्वर नाथ "रेणु" – परती-परिकथा पृ०सं० 454 ।
2– नागार्जुन – बाबा बटेश्वर नाथ" पृ०सं० 5। ।

मनोरंजन के साधन – मेले पर्व आदि –

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में लोक संस्कृति के नियामक विविध उपादानों का चित्रण मिलता है । इन उपादानों या साधनों के अन्तर्गत मुख्यतः ग्रामीण जनता के मनोरंजन के साधन लोक नृत्य लोक गीत, लोक पर्व, उत्सव आदि समाहित है ।

अखाड़ा ग्रामीण जनता का मनोरंजन करने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था है। जिसमें ग्रामीण कुश्ती लड़ते हैं, व्यायाम करते है, शरीर एवं स्वास्थ्य का विकास करते हैं । आँचलिक उपन्यास साहित्य में अखाड़े का अनेक स्थलों पर चित्रण मिलता है। "मैला आँचल" आँचलिक उपन्यास में ढोल बजवा कर कुश्ती करायी जाती है। जिसका चित्रण 'रेणु' जी के शब्दों में इस प्रकार है ।

"ढोल की आवाज में कुछ ऐसी बात है कि कुश्ती लड़ने वाले नौजवानों के खून को गर्म कर देती है ।

ढाक ढिन्ना, ढाक ढिन्ना ।

शोभन मोची ने ढोल पर लकड़ी की पहली चोट दी कि देह कसमसाने लगता है ।

ढिन्न । ढिन्ना, ढिन्ना ढिन्ना ...।

अर्थात् आजा, आजा, आजा, आजा ।

तभी अखाड़े में आये। कालो और बांधिया झट मैदान से एक मुट्ठी लेकर सिर पर लगाया और "अज्जया" कह कर मैदान में उतर

पड़े काली चरन" आ - आ उअली " कह कर मैदान में उतरता है । चम्पावती मेला में पंजाबी पहलवान मुश्ताक इसी तरह "आली" [याअली] कह कर मैदान में उतरता था" [1] ।

इसी प्रकार रागदरबारी मे शिवपाल गंज के नौजवानों की कुश्ती का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"उनके जिस्म पर अखाड़े की मिट्टी लगी हुई थी । उन दिनों शिवपाल गंज में लंगोट पहन कर चलने वालों में यही फैशन लोकप्रिय हो रहा था [2]। "अलग-अलग वैतरणी" का शशिकान्त गाँव के बच्चों को पढ़ाई लिखाई के साथ-साथ मनोरंजन के लिए भी प्रोत्साहित करते हुए कहता है -

"बच्चों अब से हम लोग रोज शाम को पढ़ाई लिखाई के बाद खेल कूद का भी थोड़ा काम किया करेंगे ..... । पढ़ाई लिखाई के साथ खेलकूद बहुत जरूरी है।इससे पढ़ने लिखने में ज्यादा मन लगता है - ....। साथ ही खेलकूद से तन्दुरूस्ती भी बनती है"[3] । ग्रामीण जनता के मनोरंजन के साधन के रूप में दंगल बायस्कोप आदि का वर्णन भीअलग-अलग वैतरणी उपन्यास में हुआ है ।

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" "मैला आँचल "पृ0सं0 82 ।
2- श्रीलाल शुक्ल -"राग दरबारी" पृ0 सं0 95 ।
3- शिव प्रसाद सिंह-"अलग-अलग वैतरणी" पृ0सं0 193-194 ।

"वायस्कोप वाला जब जगेसर के सहन में घुसा तो लड़कों के चेहरे पर गर्व और खुशी का ऐसा रूप था मानों उन्होंने किसी बहुत बड़े शातिर चोर को पकड़ लिया ...... । इसमें का है ? गोसाईं महराज अपनी असमर्थ आँखों से पानी काढ़ते हुए बोले । " आपने सुना नहीं क्या ? इ तो चिल्ला कर कहीं रहा है । भगत सिंह को फाँसी दी जा रही है । घोड़े पर सवार झाँसी की रानी की तस्वीर है। लाल किला पर नेहरू जी झंडा फहरा रहे हैं । .... ऐं तब तो ई पूरा सुराजी वैसकोप है हो सुखदेव राम जी इसे देखकर तो जियरा जुड़ा जाता होगा "[1] ।

वर्षा न होने पर ग्रामीण औरतें हलपर्वरी खेल को एक पर्व के रूप में खेलती हैं अलग-अलग वैतरणी में इस हलपर्वरी खेल का वर्णन इस प्रकार हुआ है -

" जिस साल बरखा नहीं होती इन दिनों साइनियों की इज्जत बढ़ जाती है । औरतें शिवजी के अरघा के पास बैठकर हलपर्वरी गाती है। पहले कभी कभार ही होता था । अब अकालवादी देस का ई सालाना त्योहार हो गया। गाँव की दो सबसे लम्बी औरतें छाँट कर हल में जोती जाती हैं । यह हल एक घरी रात गये नधता है । हलवाहा भी औरत और बैल भी औरतें ही[2]।

मैला आँचल उपन्यास में यह हल परवरी पर्व जाट जटिन खेल के रूप में खेला जाता है ।

1- शिवप्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 252 ।
2- शिवप्रसाद सिंह-"अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 26 ।

पुरैनिया गाँव का एक खेल है " ..... ततमा टोला, पासवान टोला, धनुक कुर्मी टोला तथा कोयरी टोला की औरतें हर साल [जब पानी नहीं बरसता] ऐसे समय में इन्द्र महाराज को रिझाने के लिए बादल को तरसाने केलिए जाट जट्टिन, खेलती हैं -" 2।

परती परिकथा में गाँव की औरतें शामा चकेवा पर्व मनाती है। घर घर से डालियां लेकर आती है लड़कियाँ । डालियों में चावल फल फूल पान सुपारी के साथ पंछियों के पुतले।
इस खेल में औरतें गाना गाती है साथ ही नाचती भी है ।

" गोड़ तोरा लागों भइया, परवारन सिंह, सिपैहिया कि पैया
काहे शामा मोर छिपावल
कि छोड़ देइ ना, मोरा शामा रे चकेवा राम,
खोल देहु ना [2]" ।

पानी के प्राचीर उपन्यास में गांव की औरतें वर्षा न होने पर कॉच कचौटी खेल खेलती है ।

बरखू ए बरखू
कहवाँ तू जा के लुकइलइ ए बरखू
बतवाँ की कोठिया लुकइलइ ए बरखू

यह बारिश केलिए दूसरी पुकार है। बारिश कहीं छिप गयी है । वहाँ से निकाले नहीं निकलती । उसे तो मज़ाक सूझा हुआ

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" मैला आँचल"पृ०सं० 234 ।
2- फणीश्वर नाथ "रेणु" "परती परिकथा" पृ०सं० 252 ।

है और यहाँ खेती बारी का नाश हो रहा है । अतः ये औरतों का झुण्ड गांव के बाहर नग्न होकर हल चला रहा है और बरखा की पुकार कर रहा है ।

बरखु ए बरखु ....[1]" ।

करैता ग्राम के देवी धाम मेले में भेड़ों की लड़ाई, घुड़ दौड़, बिरहा, दंगल नौटंकी का आयोजन ग्राम क्रीड़ा और मनोरंजन वृत्ति के परिचायक है ।[2] "नृत्य गीत आदि मनोरंजन का एक साधन माना जाता है । गाँव में सावन के महीने में स्त्रियाँ कजरी गीत गा-गा कर झूला झूलती हैं । पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने लिखा है -

"गाँव सेलेकर सिवान तक की धरती रोमांचित सी दीखने लगी । अमराई में झूले पड़ गये, कहीं गाँव में ही बरगद या नीम की डाल पर ही झूले लटक गये और गाँव बालाओं के स्वच्छंद कंठों से गीत उमड़ पड़े । लम्बे लम्बे पेगों के साथ कजली की धुन ऊँचे नीचे लहराने लगी ।

"हरि हरि पिया गये परदेस
खबर नाहीनी ए हरी "।[3]

सागर लहरें और मनुष्य में नाच गाने के आयोजन का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने एक स्थल पर लिखा है -

---

1- रामदरश मिश्र-" पानी के प्राचीर" पृ०सं० 116 ।
2- शिव प्रसाद सिंह-"अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 3 ।
3- राम दरश मिश्र -" पानी के प्राचीर" पृ० सं० 132 ।

उन दिनों एक रात बाउला के यहाँ नाचने गाने का आयोजन था। सभी लोगों को उसने न्यौता भेजकर बुलाया। विट्टल और वंशी को भी बुलाया। स्त्री पुरूष इकट्ठे हुए। डांगरी, संबल, हारमोनियम पर राग अलापे जाने लगे। मशालें जलीं। पाला, पटनी, कोलवा, चिउड़ा, भजिया कई तरह के खाद्य और पेय में कंत्री [शराब] दी गई बाजों पर गाने वाले मछुओं ने गीत गा रहे थे। स्त्रियाँ स्वर और ताल पर गाती हुई प्रश्न करती तो आदमी उत्तर देते। गीतों द्वारा आदमी प्रश्न करते तो स्त्रियाँ गीतों में उत्तर देती [1]।

गर्मियों में वक्त काटने एवं मनोरंजन के लिए गाँव के लोग ताश खेलते हैं। राग दरबारी में इस खेल का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है —

"खेल दो गुटों में हो रहा था। एक ओर कई आदमी बैठे हुए कोट पीस खेल रहे थे दूसरे गुट में लोग फ्लश खेल रहे थे। जो लैंटर्न को लालटेन बताने वाले नियम से यहाँ फ्लाश बन गया था। खेल बड़े घमासान का चल रहा था। एक तरफ ब्लफ का स्वयं चालित अस्त्र हत्याकांड मचाये हुए था। दूसरी ओर शुद्ध देशी चाल से एक खिलाड़ी बढ़ रहा था [2]। उन लोगों की अपनी एक निजी भाषा थी।

1- उदय शंकर भट्ट -`सागर लहरें और मनुष्य' पृ०सं० 53।
2- श्री लाल शुक्ल -"राग दरबारी" पृ०सं० 228-229।

वे पेयर को जोड़ कहते थे। फूल्ल को लंगड़ी, रन को दौड़, रनिंग फूल्ल को पक्की और ट्रेल को टिर्रेल"।

कब्बड़ी का खेल बालकों एवं नवयुवकों के मनोरंजन का एक साधन है।वरूण के बेटे "आंचलिक उपन्यास में इसका चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"लड़के कब्बड़ी खेल रहे थे - चेत कबड्डी, चेत कबड्डी, चेत कबड्डी चेत कबड्डी .... और मोहन माँझी के अन्दर का बैठा हुआ नौजवान छलाँग मार कर बाहर निकल आया। जाकर वह खेलने वालों में शामिल हो गया .... चेत कबड्डी। चेत कबड्डी[1]"।

मैला आँचल में मछली के शिकार का सामूहिक रूप से वर्णन मिलता है जिसे ग्रामीण जन सिरवा पर्व के नाम से पुकारते हैं

"कल सिरवा पर्व है।

कल पड़मान नदी में "मछमरी" होगी। मछमरी अर्थात् मछली का शिकार। आज चैत संक्रान्ति। कल पहली वैशाख। साल का पहला दिन। कल सभी गाँव के लोग सामूहिक रूप से मछली का शिकार करेंगे। छोटे बड़े अमीर गरीब सभी टापी और जाल लेकर सुबह ही शिकार पर निकलेंगे। आज दोपहर को सत्तू खायेंगे। कल चूल्हा नहीं जलेगा।

1- नागार्जुन -"वरूण के बेटे" पृ०सं० 36 ।

बारहों मास चूल्हा जलाने के लिए यह आवश्यक है कि वर्ष के प्रथम दिन भूमि दाह नही की जाये। इस वर्ष की पकी हुई चीज उस वर्ष में खायेंगे[1]।"

सिरवा पर्व एवं श्यामा चकेवा पर्व बिहार अँचल में ही मनाये जाते हैं। 'ब्रह्म पुत्र' उपन्यास में पानी घाट पर पानी भरती कुमारियाँ सारस पंछी को आकाश में उड़ता देखकर अपने बचपन का खेल घाट के किनारे ही खेलने लगी। देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दो में -

"नील निर्मल आकाश पर सारसों की श्वेत पाँत उड़ी जा रही थी। पानी घाट पर पानी भरती कुमारियों ने उसे देखा तो उन्हें बचपन का खेल याद आ गया। उनमें जूनतारा भी थी। अपना- अपना कलस घाट पर रखकर कुमारियाँ बांह में बाँह डाले बचपन का खेल खेलने लगी स्वर में स्वर मिलाकर वे गा रही थी -

"सारस-सारस कहाँ चले[2]?

ग्रामीण जन समाज मेले त्यौहारों आदि के अवसर पर आनन्द एवं मनोरंजन का अनुभव करते हैं साथ ही इन मौकों पर गरीब ग्रामीण जन अपने विषाद पूर्ण जीवन को भूलकर उल्लास एवं उत्साह का अनुभव करते हैं।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में करैता गाम के मेले का वर्णन बड़े विस्तार से उपन्यासकार ने किया है। उपन्यास का प्रारम्भ ही करैता के देवी धाम मेले से होता है।

1- फणीश्वर नाथ रेणु"-"मैला आँचल" पृ0सं0 188।

2- देवेन्द्र सत्यार्थी -" ब्रह्मपुत्र " पृ0 सं0 95।

नरवन का यह सबसे बड़ा मेला अपनी रंगीनी चहल पहल हँसी खुशी और मस्ती के लिए मशहूर था। दूर-दूर के लोग इस मेले को देखने के लिए आते थे। क्योंकि इसकी कुछ ऐसी खास विशेषताएं थीं जो दूसरे मेलों में नहीं होती। भेड़ों की लड़ाई सभी मेलों में होती है पर गवरू नट का मशहूर भेड़ा "करीमन" सिर्फ इसी मेले में आता था। घुड़ दौड़ तो और मेलों में भी होती है पर सासाराम के कलक्टर "क्लार्क साहब की मोटर को डाँक जाने वाला देवी चक के केशो बाबू का अबलखा इसी मेले को सुशोभित करता था। बिरहे के दंगल का रिवाज भी खूब है। हर मेले में एकाध दंगल हो जाते हैं पर छन्नू- लाल उस्ताद की मंडली इसी मेले में उतरी थी "[1]।

भारत वर्ष में मेलों का सांस्कृतिक महत्व है और ग्रामीण जन समुदाय उसमें विशेष रुचि प्रदर्शित करता है। मेले के सन्दर्भ में आंचलिकता को निखार मिल रहा है रेणु जी के द्वारा चित्रित फारबिस गंज के मेले में -

परान पुर की नटिटने तम्बू लेकर मेले में जाती हैं। बहुत गहमागहमी है। पुलिस वाले टोकते हैं - मेले में रंडी पतुरिया - मौजरा गाने वाली या तम्बुक वाली, किसी को बसने का हुकुम नहीं है।"[2]

फिर भाव चित्र व्यंजक भाषा की चहकती भंगिमाओं में सम्पूर्ण मेले का आकर्षण गंगाबाई, मैंदाबाई आदि चतुर्दिक पुंजीभूत हो

1- शिवप्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 3 ।

2- फणीश्वर नाथ रेणु" "परती परिकथा" पृ० सं० 397 ।

जाता है। 'अलग अलग वैतरणी' के मेले में ग्राम जीवन की सम्पूर्ण समसामयिक अभिव्यक्ति है। "बड़े बूढ़ों का दल अभी पीछे था ठमक ठमक कर आता हुआ। पर लड़कों ने कतार से टूटकर अपना एक अलग गिरोह बना कर रेस चला दी थी। हाँफते चीखते चिल्लाते वे मेले की ओर दौड़ पड़े थे। देवी धाम के चौगिर्द आदमियों के विराट समुद्र में ज्वार भाटें उठ रहे थे। भीड़ की चुम्बकीय शक्ति बच्चों को बुरी तरह खींच रही थी। उदेखरे उदेखरे चिल्लाते दौड़ते चले आ रहे थे "[1]।

सहज ही यह करेता के देवी धाम वाले मेले का प्रथम अध्याय पूरे उपन्यास की एक सांस्कृतिक भूमिका हो जाता है, उसमें नये ग्राम जीवन की समग्र झाँकी है/'रागदरबारी' उपन्यास में उपन्यासकार ने शिवपाल गंज के कार्तिक पूर्णिमा के मेले का वर्णन किया है। जहाँ गाँव की स्त्रियाँ ग्राम गीत गाती हुई मेलें में जा रही थी, और मौज मस्ती का आनन्द ले रही थीं।

"शिवपाल गंज से लगभग पाँच मील की दूरी पर एक मेला लगता था। वे सब मेले में जा रही थी। भारतीय नारीत्व इस समय कुनमुनाकर अपने खोल के बाहर आ गया था। वे बड़ी तेजी से आगे बढ़ रही थी। मुँह पर न घूँघट था न लगाम थी। फेफड़े, गले और जबान को चीरती हुई आवाज में वे चीख रही थीं। और एक ऐसी चिचियाहट

1- शिव प्रसाद सिंह "अलग-अलग वैतरणी पृ०सं० 17 ।

निकाल रहीं थीं जिसे शहराती विद्वान और रेडियो विभाग के नौकर ग्राम गीत कहते हैं [1]।"

ग्रामीण समाज में लोग टोना टोटका भूत प्रेत आदि को उतरवाने के लिए देवी मंदिर में जाते हैं तथा पुजारी लोगों से टोना टोटका उतरवाते हैं किसी-किसी अंचल में तो इस कार्य के लिए देवी मंदिर में मेले इत्यादि का आयोजन भी किया जाता है । इसी प्रकार का मेला पांडे पुरवा ग्राम में प्रचलित है । पानी के प्राचीर उपन्यास में उपन्यासकार ने लिखा है -

"आज पांडे पुरवा का मेला है । गाँव के दक्खिन एक बड़ा सा ताल है।वहीं काली माई का मंदिर है । आज के दिन वहीं विराट मेला लगता है । पास पड़ोस के जर जवार के अनेक गाँवों से लोग देवी के दर्शन के लिए तथा अपना टोना टोटका भूत परेत उतरवाते हैं । हतु देवी कहाँ सोइ गइल तोहरे दरसान खातिर एतनी भीड़ लगलिबा ...." [2]।

मनोरंजन एवं खुशी का आनंद तो साधारणतः सामाजिक मेले इत्यादि के अवसर पर ग्रामीण जन समुदाय लेता ही है।कुछ मेले ऐसे भी होते हैं जो धार्मिक भावना से जुड़े रहते हैं साथ ही देवी देवताओं के माहात्म्य के लिए मशहूर होते हैं। ऐसे ही एक मेले का वर्णन बलभद्र ठाकुर के आँचलिक उपन्यास" नैपाल की वो बेटी में द्रष्टव्य है ।

1- श्रीलाल शुक्ल -"रागदरबारी" पृ०सं० 141 ।

2- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर पृ०सं० 33 ।

" महेन्द्र हमाल के गाँव का काली माई का धाम अपनी महिमा और माहात्म्य के लिए उस इलाके में मशहूर था । काली माई का वार्षिक मेला लग चुका था ।

हाँ तो काली माई के थान के उस मेले में मुख मंदिरा की मादकता में सब झूम उठे थे । नृत्य गीत की टोलियाँ जगह जगह मुखरित हो उठी थी । विशेष कर तरूण रक्तों में यौवन का, बेफिक्री का और बसन्त का उल्लास मिलकर सबल संवेग नशे का रूप ले चुका था । तरूणियों की एक टोली परस्पर हाथ में हाथ डाले अर्ध वृत्त में चक्कर काटती और लचकती यों नाचे जा रही थी जैसे किसी पहाड़ी रेल पथ के मोड़ों पर रेल के जुड़े हुए डब्बे चक्कर काटते लचकते चला करते हैं [1] " ।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में ऐसे पर्वों का भी चित्रण पाया जाता है जो सभी अंचलों में समान रूप से मनाए जाते हैं। उनमें होलीकोत्सव का वर्णन सर्वाधिक मिलता है । होली उत्सव के आयोजन का वर्णन बिहार एवं उत्तर प्रदेश दोनों प्रान्तों की पृष्ठभूमि पर आधारित आंचलिक उपन्यासों में समान रूप से पाया जाता है । "मैला आँचल " आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता होली का त्योहार मानाती है ।

"महंगी पड़े या अकाल हो, पर्व त्योहार तो मनाना ही होगा और होली ? फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है । ....चावल का आटा गुड़ और तेल । पुआ पकवान के इस छोटे से आयोजन के लिए मालिकों के दरवाजे पर पाँच दिन पहले से ही भीड़ लग जाती है। कोयरी

1- बलभद्र ठाकुर- नेपाल की वो बेटी" पृ०सं० 57 ।

टोले का बूढ़ा कलरू महतों कहता है" अरे डागडर साहेब । अब क्या लोग होली खेलेगें ? होली का जमाना चला गया । एक जमाना था जब कि गाँव के सभी बूढ़ों को नंगा करके नचाया जाता था । एकदम नंगा । "डाक्टर बेचारे के पास न अबीर है और न रंग की पिचकारी । यह एक तरफा होली कैसी । लीजिये डाक्टर बाबू अबीर लीजिये । और इस बाल्टी में रंग है" । माँ बेहद खुश हैं आज [1]।"

महिलाएं फाग गीत गाती हैं

नयना मिलानी करी लेरे सैयाँ, नयना मिलानी करीले ।

अबकी बेर हम नैहर रैहबो, जो दिल चाहे सो करीले ।

× ×

अरे बहियाँ पकड़ि झकझोरे श्याम रे

फूटल रेसम जोड़ी चुड़ी

मसकि गई चोली भींगावल साड़ी

आंचल उड़ि जाये हो

ऐसी होरी मचाया श्याम रे .... ।[2]

इसी प्रकार पानी के प्राचीर आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता के होली पर्व मनाने का चित्रण अंकित है ।

"ढोलक और झाल से होड़ लेता हुआ चौताल गाँव की गलियों में उफन रहा है । यहाँ से वहाँ, वहाँ से वहाँ ....। लगता है

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" मैला आँचल पृ0सं0 155-162 ।
2- " " पृ0सं0 131 ।

गाने वाले गाँव में घूम रहे हैं। हाँ अब होली जलने वाली है पटपट शुरू होता है। कितने फूहड़ गाने गा रहे हैं लोग आज सब छूट है क्यों ? आज बुरा मानने की क्या बात ?.....

"बुरा न मानों होली है। अरे वह छोकरा तो भी साफ-साफ बचा है पकड़ो उसे हाँ ऐसे। और मलो उसके मुँह पर धूल अरे वह देखो झींगुर चाचा दातुन कर रहे हैं एक साथ टूट पड़ो हाँ ..हाँ ....हाँ कैसा सफेद पाउडर पर्त का पर्त मुँह पर लग गया नीरू सबसे आगे है..... जवानों और बूढ़ों को भी खदेड़ खदेड़ कर पकड़ता है। हैं हैं आज भागने की क्या बात है। बरस दिन पर तो होली आयी है इसे यों ही क्यों जाने दिया जाय"[1]।

साथ ही इस होली के अवसर पर ग्रामीण जनता गीत भी गाती है।

"डम्मर मटाक धिंना
डम्मर मटाक धिंना
सदा आनन्द रहे एहि द्वारें
जीये से खेले फाग रे "[2]।

उदय शंकर भट्ट के बरसोवा ग्राम की होली का रंग भी बहुत चटक है। समुद्र के किनारे मैदान में घर के बाहर चाँदनी रात में स्त्री पुरुष

1- रामदरश मिश्र - पानी के प्राचीर पृ०सं० 3।
2- " " " " पृ० सं० 11।

गिरोह के गिरोह नाचने के लिए इकट्ठा होते हैं । शराब चल रही है। नाना प्रकार का व्यंजन बन रहा है । भोज होता है । पुरूष स्त्रीएक दूसरे पर गुलाल फेंक रहे हैं और हाय-हाय होली खेला तू जायगो । का सम्वेत गायन चलने लगता है"[1]।

देवेन्द्र सत्यार्थी के उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' में होली का समय और रूप परिवर्तित जैसा लगता है । इस उपन्यास में काली बिहू, माघ बिहू और बोहाग बिहू प्रमुखतीन त्योहारों का उल्लेख है । पूस पूर्णिमा को बाँस के पाँच डण्डे गाड़कर उनके बीच लकड़ी का ढेर जला रात्रि व्यतीत करते हैं यह माघ बिहू है । उस समय लड़के लड़कियों का दंगल होता है ।[2]

चैत पूर्णिमा से एक मास तक बोहाग बिहू अथवा "गोरू बिहू गोशाला की सफाई पशुओं की सफाई, सजावट का त्योहार है। इस अवसर पर लाओ पानी { चावल का मद्य } पीकर लोग गाते नाचते है ।[3] होली के अतिरिक्त जन जीवन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति दीपावली और दशहरे में चित्रित है । दोनों त्योहार वर्षा ऋतु के बाद शीतऋतु के प्रारम्भ में मनाये जाते हैं ग्रामीण आँचल में दीपावली स्वच्छता प्रसार का त्योहार है 'अलग-अलग वैतरणी" में दीपावली के आगमन में जगन मिसिर की बखरी की लिपाई पुताई हो रही है[4]।"

1- उदय शंकर भट्ट - सागर लहरें और मनुष्य पृ०सं० 222 ।

2- देवेन्द्र सत्यार्थी - ब्रह्मपुत्र , पृ०सं० 214 ।

3- " " " पृ०सं० 135-137 ।

4- शिवप्रसाद सिंह - "अलग -अलग वैतरणी" पृ०सं० 308 ।

अन्य त्यौहारों में मुहर्रम आदि त्यौहार मुख्य हैं और मुस्लिम जाति का मुख्य त्यौहार है "आधा-गाँव "आंचलिक उपन्यास में इसका वर्णन मिलता है। इस मुहर्रम के अवसर पर इमाम बाड़े पर सेहरा चढ़ाना और मातम नौहा मजलिस -मरसिया आदि का आयोजन चित्रित है [1]।"

"सच तो यह है कि उन दिनों सारा साल मुहर्रम के इन्तजार ही में कट जाता था ईद की खुशी अपनी जगह मगर मोहर्रम की खुशी भी कम नहीं हुआ करती थी। बकरीद के बाद से ही मोहर्रम की तैयारी शुरू हो जाती .... अम्मा हम लोगों के काले कपड़े सीने में लग जाती और बाजी नौहों की बयाजे निकाल कर नयी-नयी धुनों की मशक करने लगती हैं"।

इन त्यौहारों के अतिरिक्त अन्य अनेक पर्वों का आयोजन ग्रामीण समाज में देखने को मिलता है। "पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में नाग पंचमी का पर्व मनाये जाने का वर्णन मिलता है -

" नाग पंचमी आ गयी। खेत बह गये, घर गिर गये, चारों ओर से पानी गाँव को घेरे हुए है। घर में कुछ भी खाने को नहीं है और यह नाग पंचमी आ गयी। लड़के मेंहदी रचाने के लिए आग्रह कर रहे हैं परन्तु मेंहदी कोई कहाँ से लाये। बाढ़ ने जीवन की सारी लाली छीन ली है तो मेंहदीही कैसे बचती ? कोई बात नहीं बिना मेंहदी के चलेगा।

1- राही मासूम रज़ा - "आधा-गाँव " पृ०सं० 13।

सारे गाँव में इस त्यौहार ने जान डाल दी है। जमी हुई उदासी कुछ छट गयी है। लड़कों ने गाँव में ही मुखिया की लम्बी चौड़ी सहन में चिक्का कबड्डी खेलना शुरू कर दिया है। लड़कियाँ धराऊँ साड़िया पहन कर पुतली फेंक रही है और कजली गा रही हैं।[1]

'सागर-लहरें और मनुष्य' आँचलिक उपन्यास में नारियल पूर्णिमा पर्व का वर्णन करते हुए भट्ट जी ने लिखा है -

"लोग कागज के फूलों से रंग बिरंगे नारियल सजाकर सुबह से ही जुलूस की तैयारी कर रहे थे। जुलूस सारे बाजार में घूमता हुआ समुद्र के किनारे पहुँचा और अपनी-अपनी सजी हुई नावों में बैठ कर लोग नारियल विसर्जन करने चले। एक खास जगह जाकर समुद्र की पूजा हुई। सब ने अपने-अपने नारियल चढ़ाए। लोगों की तरफ से प्रसाद बाँटा गया[2]।

गली आगे मुड़ती हैं आँचलिक उपन्यास में नौरात्र पर्व का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

शारदीय नव रात्र केलिए अक्सर बंगाल का और वहाँ भी खास तौर से कलकत्ते का नाम लिया जाता है। पर जिसने बनारस की दुर्गा पूजा देखी है वह साखी देगा कि भाव, ज्योति और नृत्य की जो त्रिवेणी यहाँ बहती है वह अन्यत्रकहीं शायद ही दिखे। बंगालियों का दुर्गा उत्सव, हिन्दी भाषियों की रामलीला और गुजरातियों के गरबा का ऐसा सम्मोहक

1- राम दरश मिश्र- पानी के प्राचीर" पृ0सं0 137।

2- उदय शंकर भट्ट - सागर लहरे और मनुष्य" पृ0सं0 40-41।

संगम कहीं नहीं मिलेगा ।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते है कि ये मेले पर्व व त्योहार खेल तमाशे आदि ऐसे माध्यम है जिसके द्वारा हम किसी भी अंचल की संस्कृति की जानकारी प्राप्त कर सकते है । अतः इन्हें लोक संस्कृति के नियामक तत्व कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा ।

1- उदय शंकर भट्ट - "गली आगे मुड़ती है" पृ०सं० 98 ।

धार्मिक एवं नैतिक तत्व :

धर्म एक ऐसा विषय या तत्व है जिसको मनुष्य समाज विशेषकर ग्रामीण समाज किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार करता है। परम सत्ता में विश्वास करने की भावना धर्म का उदगम स्थान है। जो समाज अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रकृति पर जितना अधिक निर्भर रहता है उसका ईश्वर की परम सत्ता में उतना ही अधिक विश्वास होता है। भारतीय ग्रामीण समाज एक प्रकार से देखा जाय तो अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रकृति पर ही निर्भर करता है। ग्रामीण जनता के हृदय मे यह आस्था निहित है कि मनुष्य जीवन में घटने वाली समस्त शुभ अशुभ कियाओं एवं सुख दुखों का जन्मदाता एक मात्र परमेश्वर ही है। वह अदृश्य रूप से अपनी शक्ति का संचार करता है। मानव मात्र उस असीम अलौकिक शक्ति के हाथ की कठपुतली है। डॉ० ज्ञान चन्द गुप्त के शब्दों में "धर्म एक शक्ति भी है और विश्वास भी, इसकी धारणा अमूर्त एवं प्राचीन है। इसके स्वरूप चिंतन में कल्पना का सहयोग अनिवार्य है।"[1]

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में धर्म सम्बन्धी विश्वासों, विचारों ,आस्थाओं, मान्यताओं, अन्धविश्वासों एवं विविध धर्मों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन मिलता है। देवी देवताओं की पूजा, पीर पैगम्बर की पूजा, मान्यता मनौती, भूत प्रेत में विश्वास, जादू टोना आदि ऐसे धार्मिक स्वरूपों में अपनी आस्था एवं विश्वास बनाये रखना ग्रामीण

1—'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास एवं ग्राम चेतना'— ज्ञान चन्द्र गुप्त, पृ०सं० 104 ।

जन जीवन के आचार विचार ही कहे जा सकते हैं ।

ग्रामीण जन समाज यह समझता है कि उसे कोई अनन्त, अनादि अज्ञात शक्ति संचालित कर रही है । ग्रामीण जन समाज के ईश्वर में इसी अतिशय विश्वास को ईश्वर वाद के नाम से जाना जाता है । हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में ईश्वर वाद के अनेक तथा भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं । ईश्वर से मनोवांछित कामना की प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण जनता अपने अभीष्ट देवता की पूजा, अर्चना, भजन, कीर्तन इत्यादि करती है ।

"सागर लहरें और मनुष्य" आँचलिक उपन्यास के कथांचल "वरसोवा" गाँव में "सामुद्रिक तूफान के बाद मछली मारों के गाँव बहुत दिन तक अपने आदमियों को खोजते रहे । जागला, बर्लीकर, बाउला कई दिन बाद डाँड से लाये गए ।

जिनके आदमी लौटे थे उनके घरों में सत्यनारायण की कथा हुई, भोजन कराया गया, उत्सव हुए समुद्र देवता की धूमधाम से पूजा हुई । वंशी ने महाभारत बिठाई जो एक मास तक चली।[1] "रागदरबारी" आँचलिक उपन्यास में भजन कीर्तन का वर्णन करते हुए उपन्यासकार श्री लाल शुक्ल ने लिखा है -

"बाबा जी के दरबार में अड़तालीस घंटे तक अखण्ड कीर्तन चलता रहा । जो गाँजा नहीं पीते थे उनके लिए बराबर भंग का इन्तजाम हुआ और जब तक कीर्तन चला तब तक सिल पर लोढ़ा भी चलता रहा ।

1- उदय शंकर भट्ट - सागर लहरें" और मनुष्य" पृ०सं० 13 ।

हारमोनियम बजता रहा और राधा कृष्ण और सीता राम की खुशामद में ऐसी ऐसी धुनें गायी गई जिनके सामने सिनेमा के बड़े-बड़े गाने पस्त हो गये"[1]।

शक्ति की आराधना के लिए ढोल ढाक आदि वाद्य बजाकर माँ दुर्गा की आरती एवं पूजन कार्य द्वारा दुर्गा पूजा का पुनीत पर्व बंगाल के लोग सम्पन्न करते हैं, 'गली आगे मुड़ती है' आँचलिक उपन्यास में शिव प्रसाद सिंह ने इसी दुर्गा पूजा का वर्णन करते हुए लिखा है -

"विषम ढाकी, डाक, ढोल, घण्ट और शंख की समवेत आवाजों में आरती शुरू हो गयी। ढाकियों के विराट ढाकों में मयूर पुच्छ खुंसे थे और उन्होंने एक एक लम्बा पुच्छ अपने पेटे में पीछे खोंस रखा था। वे अजब ढंग से घूमघूम कर मयूरों की तरह ही सिर झटकाते ढोल बजाने में मगन थे। स्टेज पर देवी प्रतिमा के सामने दो बंगाली तरूण धोती और बनियान पहने दो हाथों में बड़ी-बड़ी धुना लिये नाच रहे थे। सूखे नारियल के ऊपर के रेशों की आग अगरू और गुग्गुल के चूर्ण को फेंकते ही ढेर सा धुआँ उगलने लगती, चारों ओर अजीब प्रकार का उल्लास और शक्ति की आरधना का वातावरण था।"[2]

भारतीय ग्रामीण जनता अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि दोनों ही परिस्थितियों में इन्द्र देवता की पूजा, प्रार्थना एवं अर्चना करती है जिससे इन्द्र भगवान की कृपा कृषि आदि कार्य में सदैव बनी रहे। असमियाँ

1- श्री लाल शुक्ल - "राग दरबारी" पृ0सं0 269।
2- शिव प्रसाद सिंह - गली आगे मुड़ती है "पृ0सं0 100।

ग्रामांचल में इन्द्र देवता की पूजा दबूर पूजा के रूप में मनाई जाती है आँचलिक उपन्यासकार देवेन्द्रसत्यार्थी के शब्दों में –

" दबूर पूजा की तिथी से दो चार दिन पहले ही मीरी पुजारी पूजा के लिए मुर्गे, मुर्गियाँ, जिनकी संख्या सात से किसी अवस्था में भी अधिक नहीं होती थी और एक सुअर ठीक करके रखता था । पूजा से पहले बस्ती के लोग मिलकर बस्ती की परिक्रमा करते थे ....। परिक्रमा के पश्चात् मुर्गे मुर्गियाँ और सुअरी की बली दी जाती थी । पूजा करने वाले लोग मिलकर माँस पकाते और इन्द्र देवता के नाम पर सहभोज का आनन्द लेते ।

दबूर नृत्य मे गाये जाने वाले गीतों में इन्द्र देवता को सम्बोधित करते हुए (लड़कियां) कहती थीं देवता की कृपा बनी रहे धरती धानवती हो । वर्ष में दो बार यह पूजा की जाती थी । पहली पूजा चैत में की जाती थी – वर्षा ऋतु से पहले और दूसरी पूजा अश्विन में की जाती थी जब वर्षा ऋतु अपने उत्कर्ष पर होती थी ।

पूजा शेष होने तक कोई व्यक्ति बस्ती के भीतर प्रवेश करने का साहस न कर सके, यह भी नियम था कि यदि बस्ती का कोई व्यक्ति काम से बाहर गया हो तो वह पूजा के मध्य में बस्ती में न आये । इस बात की अवहेलना करने वाले के हाथ पैर बाँध कर उसे पेगुम (जहाँ सुअर बंधे रहते थे) में डाल दिया जाता था ।"[1]

1– देवेन्द्र सत्यार्थी – "ब्रह्म पुत्र" पृ०सं० 173 ।

वर्षा का होना या न होना इन्द्र भगवान की प्रसन्नता पर निर्भर है रेणु जी ने अपने आँचलिक उपन्यास "मैला -आँचल में लिखा है -

" हर साल बरसात के मौसम में यही होता है भगवान के हाथ की बात इन्सान क्या जाने ? इन्द्र भगवान से प्रार्थना की जाती है बरसाओ। हे इन्द्र महाराज.... जरा भी आसमान के किसी कोने में काले बादलों का जमाव हुआ, बिजली चमकी कि "बरसो""बरसो" की पुकार घर घर से सुनाई पड़ती है ,जमीन वालों, बेजमीनों, सबों को रोटी का प्रश्न है। और यदि लगातार पांच दिनों तक घनघोर वर्षा हुई और खेतों में आल डूबे कि ... जरा एक सप्ताह सबुर करो माहराज! ग्राम के ततमा टोला, पासवान टोला, धानुक कुर्मी टोला तथा कोयरी टोला की औरतें हर साल ऐसे समय में इन्द्र महाराज को रिझाने के लिए बादल को बरसाने के लिए जाट जटिन खेलती हैं "।[1]

ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए ग्रामीण जनता अनेक देवी देवताओं की उपासना करती है तथा उनकी पूजा करने वाले पंडों, पुजारियों, साधु सन्तों के प्रति श्रद्धा भाव रखती है. अर्थात् ग्रामीण समाज में बहुदेववाद का प्रमुख स्थान है। भारतीय संस्कृति में नदियों को देवी या माता के रूप में माना जाता है,जिनकी विभिन्न प्रकार से पूजा की जाती है । रेणु जी ने अपने मैला आंचल मे कमला नदी को मैया का रूप दिया है जो आवश्यकता पड़ने पर गाँव के लोगों की सहायता करती है । किन्तु वही कमला नदी लोगों का

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -"मैला आँचल" पृ०सं० 191-92 ।

अहित भी कर देती है । क्योंकि उन लोगों को उनमें कोई विशेष आस्था नहीं है । उपन्यासकार "रेणु" जी के शब्दों में -

"कमला मैया के महातम के बारे में गाँव के लोग तरह-तरह की कहानियाँ कहते हैं ....गाँव में किसी के यहाँ शादी ब्याह या श्राद्ध का भोज हो गृहपति [घर का मालिक] स्नान करके, गले में कपड़े का खूँट डालकर कमला मैया को पान सुपारी से निमंत्रित करता । इसके बाद पानी में हिलोरे उठने लगती थी । ठीक जैसे नील के हौज में नील मथा जा रहा है । फिर किनारे पर चांदी के थालों, प्यालों, कटोरों और गिलासों का ढेर लग जाता था । गृहपति सभी बर्तनों को गिन कर ले जाता था और भोज समाप्त होते ही मैया को लौटा आता था । लेकिन सभी आदमी एक जैसी नियत के नहीं होते । एक बार एक गृहपति ने कुछ थालियाँ और कटोरे चुरा रखे । बस उसीदिन से मैया ने बर्तन देना बंद कर दिया और उस गृहपति का तो वंश ही खत्म हो गया एक-दम निर्मूल "।[1]

आसाम के ग्रामीण जन समाज के लोग ब्रह्म पुत्र नदी की उपासना एवं पूजा विभिन्न अवसरों पर करते हैं। उपन्यासकार देवेन्द्र सत्यार्थी ने ब्रह्मपुत्र उपन्यास में इस नदी पूजा का वर्णनकरते हुए लिखा है -

बीस वर्ष पूर्व का समय नीलमणि की कल्पना में घूम गया, जब वह इसी नाव घाट पर अतुल के जन्म की खुशी में नारियल चढ़ाने आया था । एक मटकी दूध भी तो उसने ब्रह्मपुत्र को भेंट किया था । नीलमणि जानता था कि

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" "मैला आँचल "पृ0सं0 9 ।

उसके जन्म पर भी तो बापू ने इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र में नारियल और दूध चढ़ाया होगा । दिनाँग मुख का तो प्रत्येक बालक ब्रह्मपुत्र का वरदान था ।"[1]

हिन्दू जाति नाग को देवता स्वरूप मानकर उसकी पूजा करती है। केरल में नाग पूजा ननकम् उत्सव के रूप में मनायी जाती है। "दूध गाछ" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने इस उत्सव का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है -

" नाग पूजा तो सनातन रीति है । अन्नपूर्णा मुस्कराई " नाग पूजा में केरल का मन रमता है । नम्पूतिरि ब्राह्मणों के इल्लम {घर} की पाताल कोठरी में नाग मूर्तियों के साथ-साथ जीवित सर्प भी रहते हैं । उत्तर पश्चिम में रहता है काबू । केरल के पन्द्रह हजार काबुओं में एक भी मन्त्रशाला काबू को नहीं पहुँचता । वहीं वार्षिक ननकम् उत्सव पर हम तुम्हें लेकर गये थे गोविन्दम् ।"[2]

"ग्रामीण जनजीवन में पाप पुण्य की विचार धारा का महत्व पूर्ण स्थान है। ग्रामीण समाज में लोगों का ऐसा विश्वास है कि नदी, पोखर तालाब इत्यादि में स्नान करने से सारे पाप धुल जाते हैं । लोक-परलोक" आंचलिक उपन्यास में इसी धार्मिक आस्था को वाणी प्रदान करते हुए उपन्यास कार ने लिखा है -

---

1- देवेन्द्र सत्यार्थी -" ब्रह्मपुत्र" पृ०सं० 49 ।

2- देवेन्द्र सत्यार्थी"- 'दूध गाछ" पृ०सं० 48 ।

'चमेली ने कहा यह तीर्थ हैं अपने पिछले पाप धो रही हूँ। "अरी हम तीर्थवासिन कू पाप नायँ लागत । गंगा में गोता लगावत जाओ सिगरे पाप छूट जैंगे ।"[1]

इसी प्रकार "ब्रह्मपुत्र" उपन्यास में उपन्यासकार ने लिखा है –

" बसन्त अष्टमी के दिन सब का मुँह ब्रह्मपुत्र की ओर था । अतुल और राखाल काका आज मिलकर ब्रह्मपुत्र में स्नान कर रहे थे । आज तो दिसाँग मुख के सभी लोग मलमल कर ब्रह्मपुत्र में नहा रहे थे। हर किसी को अपने पाप क्षमा कराने की चिंता सता रही थी" नीलकंठ और बंसी भी क्यों पीछे रहते, आज तो शिवसागर निवासी भी यहाँ स्नान करने आये थे इतनी भीड़ तो यहाँ किसी भी मेले में नहीं होती थी ।"[2]

सागर स्नान केरल की लोक संस्कृति का एक अंग माना जाता है जहा स्नान करके लोग पाप मुक्त हो जाते हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में –

"स्नान को गये होंगें दामोदरन सोचकर बोला मैं भी दुकान बढ़ाता हूँ । देशमुख बाबू को भी ले चलते हैं । अरे दूर-दूर के यात्री आते हैं पापनाशा पर सागर स्नान को फिर हम बरकला में रहकर भी क्यों इससे वंचित रह जायें । वे स्नान के लिए ही गये होंगें "देशमुख हँस पड़ा मंदिर में जाकर मूर्ति के सामने हाँथ बाँधे खड़े रहने से सागर स्नान करना फिर भी अच्छा है"। सागर स्नान हमारी संस्कृति का अंग है रूद्रपदम मुस्कराये ।"[3]

1- उदय शंकरभट्ट – "लोक परलोक" पृ०सं० 112 ।

2- देवेन्द्र सत्यार्थी- "ब्रह्मपुत्र " पृ०सं० 237 ।

3- " " "दूध गाछ "पृ०सं० 39 ।

भारतीय ग्रामीण समाज में नदियों के साथ-साथ वृक्षों की भी पूजा की जाती है। पीपल, आम, बरगद महुआ, तुलसी आदि की पूजा के पीछे ग्रामीण समाज की धार्मिक आस्था निहित रहती है। विवाह आदि के अवसर पर ग्रामीण औरते कन्या को साथ लेकर वृक्ष पूजा के लिए जाती है। नागार्जुन ने अपने आँचलिक उपन्यास "नई पौध" में इसी विषय को वाणी प्रदान की है -

"बिसेसरी को लेकर सधवा औरतें गाँव के बाहर आम और महुआ के पेड़ पुजवाने गई हुई थीं"।[1]

तुलसी के वृक्ष को बड़ा पवित्र माना जाता है भारतीय ग्रामीण समाज में इस वृक्ष की पूजा श्रद्धाभाव से की जाती है। बलभद्र ठाकुर ने अपने आँचलिक उपन्यास में लिखा है -

"सारी सखियाँ मुक्ता और तोम्बी को घर छोड़कर बाज़ार चली गई। इधर तोम्बी मुक्ता को साथ ले अपने पोखरे में नहाने चली गई। जल्द नहा धोकर वे वापस आई। आँगन में तुलसी के पेड़ पर बड़ी श्रद्धा से वृन्दा देवी मधुम, कहकर दोनों ने लोटे का जल डाला और जरा जरा तुलसी की जड़ की मिट्टी को बड़ी भक्तिसे अपने मस्तक से स्पर्श कराया।"[2]

बहुदेववाद की पूजा, उपासना का एक विशिष्ट उदाहरण अमृत लाल नागर के उपन्यास बूँद और समुद्र" में दृष्टव्य है उपन्यासकार के शब्दों में -

---

1- नागार्जुन -"नई पौध" पृ०सं० 44।

2- बलभद्र ठाकुर - "मुक्तावती" पृ०सं० 268।

" मेरो तो ताई तुम सब लोग की किरपा से अभी तलक पुरानी मत ही बनी हुई है । सनातन धरम की । सबेरे गोमती जी से न्हाके आई और सीधी अपनी ठाकुर जी की कुठरिया में चली गई । मुझे किसी की घर गिरस्ती से मतलब नहीं। सेवा पूजा में ही तीन साढ़े तीन घंटे का बखत निकाल देती हूँ ।

कितने ठाकुर हैं तुम्हारे यहाँ " ? ताई ने अपने बालों पर उँगली फेरते हुए पूछा । गनेस जी, लड्डू गुपाल, विसुनपदी, बद्री नाथों- जगन्नाथों के पत्तर, महादेव जी, सालिगराम और बस इत्ते ही हैं । बाकी तस्वीरें है । "हमारे पास गनेस जी नहीं है । पहले थे तो सही पर चूहे ले गए निगोड़े ।

ताई ने सिर पर पल्ला डालकर कहा। तो फिर दूसरे मंगाय लेओ ताई । पहले मैं सबसे पहले तो गनेस जी ही होने चाहिए सिद्धाता तो .

"मैला आँचल "आँचलिक उपन्यास के क्षेत्रीय परानपुर गाँव का प्रत्येक व्यक्ति परमा देवता की पूजा उपासना करता है क्योंकि परमा देवता सभी की मनोकामना पूरी कर सकते हैं "[2]

"मैला आँचल" आंचलिक उपन्यास में भंडारे से पहले कालीथान की पूजा की जाती है ।"[3] खेलावन सिंह यादव की पत्नी अपने बच्चे की मति

1- अमृत लाल नागर- बूँद और समुद्र" पृ०स० 4,5 ।

2- फणीश्वर नाथ-"रेणु" -"मैला आँचल पृ०सं० 191 ।

3- " " " पृ०सं० 44 ।

सुधरवाने के लिए पीर बाबा से प्रार्थना करतीहै। उपन्यासकार 'रेणु'जी ने लिखा है -

"खेलवान की स्त्री कहती है, जिन पीर बाबा के दरघा पर घर नहीं है, वहाँ एक झोपड़ी बनाने के लिए तीन साल से कह रही थी, आखिर नहीं बनाए। कालीचरन की बात पर कुद्ध हो गए, चौखड़ा घर बनला दिया। ..... दुहाई बाबा जिन पीर। भूल चूक माफ करो। मेरे बच्चे की मति फेर दो महातमा। सिरनी और बद्‌टी चढ़ाऊँगी, एक भर गाँजा दूँगी।"[1]

भारतीय ग्रामीण समाज में आत्मवाद से सम्बन्धित तत्वों पर लोगों का एक प्रकार से अंध विश्वास सा बना हुआ है। भूत प्रेत आदि बातों में ग्रामीण जनता विशेष रूप से विश्वास करती है। इस अंध विश्वास का मूल कारण अशिक्षा कोही माना जाता है। आत्मवादी विचारकों के मतानुसार मृत्यु के पश्चात् मनुष्य मोक्ष या मुक्ति प्राप्त करता है परन्तु जो व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं करता वो प्रेतात्मा बनकर पृथ्वी पर इधर उधर भटकता रहता है, एवं दूसरे मनुष्य को अपने प्रहार से सताता है। हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में भूत प्रेत चुड़ैल आदि के निवास स्थानों एवं इनके दुष्प्रहार से बचाने वाले तांत्रिकों, ओझाओं आदि का वर्णन यत्र तत्र मिलता है।

भारतीय ग्रामीण समाज की भूतप्रेत में विशेष आस्था है। राम दरश

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" "मैला आँचल "पृ०सं० 27। ।

मिश्र ने अपने आँचलिक उपन्यास "पानी के प्राचीर" में एक स्थल पर लिखा है -

"जिस चीज को दुनियाँ मानती आयी है उसे तुम झूठ कहते हो। अभी उसी दिन बाबू कह रहे थे कि बड़े अंधेरे -अंधेरे ही वे मामा के यहाँ जा रहे थे। रात का उन्हें अन्दाज नहीं मिला। "उस पेड़ के पास पहुँचे तो देखा कि नट बरगद की डाल पर बैठा है। बाप रे बाप कितनी लम्बी चौड़ी देह थी। 25 हाथ ऊपर वह डाल थी। नट के पैर जमीन पर पड़े हुए थे। उसके बड़े बड़े लट चारों ओर डालियों और पत्तों में उलझे थे उसकी देह में बड़े-बड़े बाल झपसे हुए थे। उसकी आँखे गुफा की तरह गहरी गहरी और काली थी। मुँह में एक बड़ा सा लुक्कदब जला बुझा रहा था। उसके पैरों के पंजे पीछे और एड़ी आगे को थी।"[1]

"मैला आँचल आँचलिक उपन्यास में "रेणु" जी ने इन भूत प्रेतों का वर्णन करते हुए लिखा है -

"गाँव के सभी लोग डाइन के बारे में एक मत है। बालदेव जी ने तो बहुत बार भूत को अपनी आँखो से देखा है। भैंस के पीछे-पीछे खैनी तम्बाकू माँगता है - भूत। डाकिन का पाँव उल्टा होता है। और वह पेड़ के डाल से लटक कर झूलती है।"[2]

1- राम दरश मिश्र - पानी के प्राचीर" पृ०सं० 29 ।

2- फणीश्वर नाथ"रेणु" -"मैला आँचल" पृ०सं० 133 ।

इन भूत प्रेतों का सामान्य मनुष्य के स्वास्थ पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है तथा बड़े-बड़े ओझाओं और तांत्रिकों के मंत्र जाप आदि के द्वारा ठीक कराया जाता है।

श्री लाल शुक्ल ने इस भूत प्रेतों का एवं उनके दुष्प्रभाव का वर्णन करते हुए अपने आँचलिक उपन्यास "राग दरबारी" में लिखा है -

" शराब खाने से लगभग सौ गज आगे एक पीपल का पेड़ था। जिस पर एक भूत रहता था। भूत काफी पुराना था और आजादी मिलने जमींदारी टूटने गाँव सभा कायम होने कालिज खुलने जैसी सैकड़ों घटनाओं के बावजूद मरा न था। जिन्हें उसके वहाँ होने की खबर थी वे सूरज डूबने के बाद उधर से नहीं निकलते थे। अगर कभी निकल जाते तो उन्हें तरह-तरह की आवाजें सुनने में आतीं। उन आवाजों से आदमी को बुखार आने लगता था।"[1]

"बलचनमा" आँचलिक उपन्यास में इन भूत प्रेतों के प्रहार का एवं उससे छुटकारा दिलाने वाले ओझा का वर्णन करते हुए उपन्यासकार नागार्जुन ने एक स्थल पर लिखा है -

"कभी कभी वह (सुखिया) चिग्घाड़ मार कर रो पड़ती थी। कोंचा खोलकर नंगी हो जाती और हाय बाप, हाय बाप करती हुई बीभ निकालती। बोलती - ही ही ही ही मैं काली हूँ पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ खा जाऊँगी समूचा गाँव। बकरा दो

1- श्री लाल शुक्ल - "राग दरबारी" पृ०सं० 293।

बकरा/.......... ग्रामीण समाज में भूत प्रेत का प्रभाव दूर करने वाले ओझाओं के विषय में लेखक ने लिखा है -

दामों ठाकुर ओझा थे । झाड़ फूक पूजा-पाठ टोना टपार करना जानते थे । .... तीनबार बुलाने पर वह आते दच्छिन वाले घर में उन्हें बैठने को कहा जाता । मलिकाइन उनसे परदा करती थी। बड़े मालिक की लड़की का नाम जयमंगला वहबाल विधवा थी । देखने में वह खूब सुन्दर । सावली । बड़ी बड़ी आंखों वाली उसे ऐसे समय बुला लिया जाता । वह बिधवई का काम करती । चूहे के बिल की मिट्टी पुराने बिनौले, तोड़े हुए कुश के तिने, चार बूंद गंगा जल, पीपल के सूखे पत्ते.. ..... इतनी चीज मिलाकर दामों ठाकुर झाड़ना शुरू करते " ।[1]

"पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में गेंदा पर आक्रमण करने वाली चुड़ैल के विषय में रामदरश मिश्र ने लिखा है -

"हाँ गेंदा को चुड़ैल अब भी पकड़ती है ।इतनी पूजा करने के बाद भी देवी देवता उसके सहायक नहीं होते । चुड़ैल नेउसे पकड़ा सो पकड़ ही रखा । सोखा ओझा के शब्दों में कभी बँसवारी की चुड़ैल होती है, कभी पोखरी की, कभी बड़की बारी की । यह चुड़ैल घंटों तक बेचारी के मुँह से झाग उगलवाती है, बेहोश रखती है। सोखा ओझाइसे बहुत धमकाते हैं, किन्तु वह जाती नहीं । जब से वह पूजा-पाठ कर उदास रहने लगी है तब से यह दौरा और बढ़ गया है ।"[2]

1- नागार्जुन -"बलचनमा" पृ0सं0 21, 22 ।

2- रामदरश मिश्र- पानी के प्राचीर" पृ0सं0 212 ।

इन भूत प्रेतों के प्रभाव को दूर करने वाले औघड़ बाबा के विषय में उपन्यासकार नागार्जुन ने लिखा है -

"जहाँ कहीं भूत प्रेत का उपद्रव उठ खड़ा होता, जहाँ कहीं देव देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रह्नकर्णपिशाची चुड़ैल आदि की खुराफातें उभरती वहाँ औघड़ बाबा की गुहार होती । उस सिद्ध डोम के पहुँचते ही आधी गड़बड़ी दुरूस्त हो जाती । जटाधारी औघड़ जोरों से चिमटा पटककर जब ओ ऽऽऽ अलख निरंजन भगु ताऽऽऽ ले``` । की ऊँची आवाज मारता तो बाकी खुराफात भी खतम हो जाती । काफी दान दक्षिणा और भेंट सौगात देकर लोग उसे विदा करते ।"[1]

शिव प्रसाद सिंह ने अपने आंचलिक उपन्यास "गली आगे मुड़ती है" में इन भूत प्रेतों का शमन करने वाले ओझाओं का वर्णन करते हुए लिखा है -

"कहो भगत सब मुरगवा लालै रंग के हैं न ?" ओझा ने पूछा । हाँ हो, मुरगा चूचा मिलाई के सब पाँच है आ पांचो लालै रंग के है" ।

"हम मुरगा के खून नाही पिउबै, हम मनई के खून पिउबै .....
रज्जो जोर से बोली और हाथ पैर पटक कर हँसती रही, फिर जाने किसी ने कोई सूत खींच दिया हो गुड़िया की तरह हाथ में सिर छुपाकर फफक-फफक कर रोने लगी ।

आओ हो रामरूप भगत इहाँ के काम खतम है। मुरगा त फाटक बहरे भी चढ़ाय देहैं ।"[2]

1- नागार्जुन- "बाबा बटेसर नाथ" पृ0सं0 66 ।
2- शिव प्रसाद सिंह-" गली आगे मुड़ती है"पृ0सं0 243 ।

"मैला आँचल "आँचलिक उपन्यास में डाइन का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने एक स्थान पर लिखा है –

"करसामाँ है [करिश्मा] ..... डाइन का करसामाँ है .. .... समझे हीरू ? ... सुकवार कोअमावस्या है । जिस पर तुमको संदेह हो उसके पिछवाड़े बैठ रहना..... ठीक दोपहर रात को वह निकलेगी । उसका पीछा करना । वह तुम्हारे बच्चे को जिला कर तेल फुलेल लगाकर गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी तो .... । उस समय यदि उससे बच्चा छीन लो – तो फिर उस बच्चे को कोई मार नहीं सकता । ... इन्द्र का बज्र भी फूल हो जायगा ।"[1]

एक अन्य स्थल पर ओझा के विषय में रेणु जी लिखते हैं –

"खलासी जी दीया की बाती को नचा रहे हैं और मुँह में लेकर बत्ती बुझाते है फूँक मार कर भक् से फिर दीया जलाते है ....कबूतर को कच्चा ही चबा कर खा रहा है .... असल ओझा है, खलासी जी ।"[2]

"रांगेय-राघव" ने अपने आंचलिक उपन्यास"कब तक पुकारूँ " में भूतों को भगाने वाले टोने बाज चंदन के विषय में लिखा है –

"शराब चंदन के जादू टोने से सम्बद्ध थी । चंदन प्रसिद्ध टोने बाज था और मरघट तो उसका घर समझा जाता था। उससे गांव के लोग भी डरते थे । भूतों का ठेका मेहतर और धोबियों के हाथ में ही होता था।"[3]

1– मैला आँचल– "फणीश्वर नाथ"रेणु" पृ0सं0 320 ।

2– "मैला आंचल– फणीश्वर नाथ"रेणु" पृ0सं0 332–33 ।

3– रांगेयराघव – कब तक पुकारूँ पृ0सं0 426 ।

मुस्लिम समाज में भूत प्रेत को जिन्न नाम से जाना जाता है और ग्रामीण मुस्लिम समाज में जिन्न आदि पर लोगों का एक प्रकार से अंध विश्वास सा है। जिसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार राही मासूम रज़ा ने अपने आँचलिक उपन्यास "आधा गाँव" में लिखा है -

" तमाम औरतें जनाना इमाम बाड़े की तरफ बढ़ी।

इस इमाम बाड़े के बारे में अजीब-अजीब बाते मशहूर थी। मशहूर था कि हर जुमे {शुक्रवार} की रात को इसमें जिन्नात मजलिस करते हैं। इस लिए शाम को उधर से कोई गुजरता नहीं था। लेकिन मोहर्रम के चाँद के माने यह होते हैं कि इमाम हुसैन कर्बला से हिन्दुस्तान आ गये है और इमाम बाड़ा जिन्नात के हाथ से निकल कर आदमियों के कब्जे में आ गया है। फिर भी मैंने सोचा कि चाँद तो अभी-अभी हुआ है क्या जाने कोई भूला भटका जिन्न रह ही गया हो या जिन्नात जल्दी में जाते-जाते अपनी कोई चीज भूल गये हों। और उसे लेने के लिए कोई रास्ते से ही लौट आया हो।"[1]

नैतिक मान दंड -

शहरों की भाँति ग्राम जीवन परक उपन्यास के नायक के "सामने प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत नैतिक मान दंड झूठे पड़ गये हैं और न केवल समाज के प्रति वरन् स्वयं अपने प्रति विद्रोह करने के लिए आकुल है। प्रयत्नशील है।

1- राही मासूम रज़ा- आधा गाँव" पृ०सं० 38 ।

उसके लिए हर सन्दर्भ अर्थ हीन हो गए हैं और नैतिक मान्यताएं बल्कि सारी की सारी आचार संहिताएं खोखली एव जर्जर पड़ गयी हैं। जितना ही वह सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है उसमें व्यर्थता का बोध गहराता जा रहा है और वह असमर्थ होता जा रहा है "।[1]

इन नैतिक स्थितियों का आलेखन ग्राम परक उपन्यासों में बड़ा ही जीवन्त बन पड़ा है।

धार्मिक तत्व के अन्तर्गत नैतिकता से जुड़ा हुआ पाप पुण्य एक ऐसा कृत्य है जिसका परिणाम व्यक्ति को किसी न किसी रूप में भुगतना पड़ता है। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में ग्रामीण समाज में पाप पुण्य की विचार धारा के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

"रेणु" जी के परती परिकथा-आँचलिक उपन्यास में बूढ़ा भैस बार सम्पूर्ण युग के कष्टों का कारण पाप बताता है। वह सारे युग को बेईमान कह रहा है।" एक-एक आदमी पाप मुक्त जिस दिन हो जाएगा सारी धरती हरी भरी हो जायगी। ... प्राणों के नये नये रंग उभरेगें।"[2]

"मैला आँचल आँचलिक उपन्यास में भी लोगों की यह धारणा है कि पाप करने के कारण ही बालासी जी का देह गल जाता है"।[3]

1- सुरेश सिन्हा- "हिन्दी उपन्यास" पृ0सं0 95।

2- फणीश्वर नाथ "रेणु" "परती परिकथा" पृ0सं0 60।

3- फणीश्वर नाथ "रेणु" "मैला आँचल, पृ0सं0 272।

इन्हीं अनैतिकताओं के कारण ग्रामीण जन जीवन में व्याप्त धार्मिक दृष्टिकोण व विचारों का ह्रास होता जा रहा है । "परती परिकथा" में इस धार्मिक स्वरूप के परिवर्तन के सम्बन्ध में एक ग्रामीण कथाकार बूढ़ा इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करता है -

" अब तो बेमान जमाना आ गया है बाबू साहब ! किसी चीज का न धरम है और न तेज । न रहे कोई देवता न रहे कोई देव । जब से रेल गाड़ी आयी सभी देव देवी भागे पहाड़ पर एक आध पीर, फकीर , साई गोसाई रह गए वो भी अब रेलगाड़ी में चढ़कर दूरदराज हज्ज करने चले जाते हैं । नहीं तो दुलारी दाय के गाँव में लगातार साल-साल सूखा पड़े भला "[1]।

भारतीय संस्कृति का धर्म मूलक होना और धर्म का साधुता के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होना ही वह सूत्र है जिसमें लोक मानस का श्रद्धाभाव आबद्ध है किन्तु यह श्रद्धाभाव प्रायः अंध श्रद्धाभाव है । आँचलिक उपन्यासों में धर्म जिस रूप में वर्णित हुआ है उसे देखकर लगता है कि गाँव में धर्म पाखंड अथवा अन्ध विश्वास बनकर शेष रह गया एकदम खोखला । हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में ग्रामीण जन समाज का साधुओं के परम्परागत मठों, साधुओं की साधना-पद्धतियाँ, उनके ढोंगों एवं जनता में उनके प्रति परम्परागत एवं परिवर्तित श्रद्धा तथा विश्वास का चित्रण पाया जाता है ।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" "परती परिकथा" पृ०सं० 18 ।

धर्म का ढोंग रचने वाले महात्मा किस प्रकार से अपने शिष्यों को ढोंग करने को शिक्षा देते हैं इसका उदाहरण 'लोक-परलोक' आँचलिक उपन्यास में दृष्टव्य है –

" एकबात ध्यान रखना जरूरी है। कोई आए तो उसे मेरे पास सीधे-मत आने दिया करो, कहो – स्वामी जी समाधि में हैं" या कभी यह कि इस समय चिंतन कर रहे हैं। लेकिन यह बात कभी-कभी कहनी चाहिए, हमेशा नहीं समझे ? " ...

"नही जो आज्ञा महाराज। महाराज कहने की आदत डाल। यह स्कूल नहीं है। यहाँ जितना आडम्बर होगा उतना पुजोगे। याद रखो इस काम में बहुत चालाकी की जरूरत है। समझे तुम लोग गले में रूद्राक्ष की माला डाले रहा करो हरिओम् शिवोऽहम कहा करो"।[1]

"मैला आचल "आँचलिक उपन्यास मठ के महंत जब तक ब्रह्मचारी रहते हैं तब तक जनता की श्रद्धा के पात्र रहते हैं परन्तु लक्ष्मी को दासिन बनाने के उपरान्त जनता से सम्मान अर्जित नहीं कर पाते है।[2]

दिन रात भजन, बीजक, पाठ और सत्संग का दिखावा करने वाला "सतगुरू हो की टेक के साथ उठने बैठने वाला, खंजड़ी पर निरगुन में डूबने वाला महंत सेवादास का चेला रामदास एकदिन रात में लक्ष्मी कोठारिन के यहाँ पहुंच जाता है। वहाँ का मठ तो अनैतिकता का अड्डा ही बन कर

1– उदय शंकर भट्ट – लोक –परलोक" पृ०सं० 53–54 ।

2– फणीश्वर नाथ"रेणु" –मैला आँचल "पृ०सं० 27–28 ।

रह गया है । मठ का निरीक्षण करने पर उनके कामुकता और दूषित आचार विचार का बोध होता है । सेवा दास अंधा होते हुए भी रंगेलिन रखता है। लक्ष्मी के बगैर वह रह नहीं सकता । मठ की कोठारिन लक्ष्मी पर एक नहीं तीन तीन महंत अपनी महंती का अधिकार जताते हैं । रामदास चुपचाप अंधेरे में बड़ी तरकीब से अन्दर की चटकनी खोल जब लक्ष्मी के पास अपनी प्यास बुझाने को प्रस्तुत होते हैं तो चांटे खाते हैं और धक्कों से गिर जाते हैं । उसके खीझ भरे वाक्य में उसकी अनैतिकता स्पष्ट है -

" कैसी गुरुभाई तुम मठ की दासिन हो । महंत के मरने के बाद नये महंत की दासी बनकर तुम्हें रहना होगा तू मेरी दासिन है ।"[1]

मुजफ्फर के पुपड़ी मठ से आए हुए साधु लरसिंघ दास की तो हालत ही और है । सारी रात लक्ष्मी को पाने की फिराक में रहता है । प्रातः प्रातः उसके स्नान करते समय उसे बांस की टट्टी में छेद कर देखता है। फरेबी लरसिंह दास महन्ती सम्भालने का गठबंधन बड़ी चातुरी से कर लेता है । नागा बाबा भी नशे में चूर रहता है । महन्त की पदवी के लिए खूब झगड़ा होता है इसमें नागा बाबा की खूब पिटाई होती है ।

'बलदेव भी गांधी विचारों का होते हुए भी लक्ष्मी के शरीर से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध निकलता हुआ महसूस करता है इस सुगंध में एक नशा है : इसलिए लक्ष्मी को देखते ही मन पवित्र हो जाता है ।"[2]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु"- मैला आंचल " पृ०सं० 122 ।
2- " " पृ० सं० 62 ।

" लोक-परलोक " आँचलिक उपन्यास में चमेली एवं स्वामी जी की बातों के माध्यम से अनैतिकता का जो रूप उपन्यासकार ने उद्घाटित किया है वह इस प्रकार है –

" तुम सन्यास ले लो"

मैं पापिन हूँ

" पाप धुल जायेंगें चमेली । स्वामी जी ने चमेली के कंधे पर हाथ रख दिया । चमेली ने हाथ हटाते हुए व्यंग्य से कहा ब्रह्मलीन स्वामी जी जाइये । बहुत दूर आ गए ।"

स्वामी खड़ा देखता रहा । बोला, यही अवसर है चमेली बाई, अब बहुत दिन नहीं है, निहाल कर दूँगा ।"

चमेली ने उत्तर दिया " कीचड़ में पड़ा हुआ दूसरे को कीचड़ से नहीं निकाल सकता। आज मेरी आँखे खुल गयी ।"[1]

भारतीय ग्रामीण समाज में विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग हैं । जिसमें हिन्दू और मुसलमान धर्म को मानने वालों की संख्या अधिक है। हिन्दू और मुसलमानों के सम्बन्धों में परस्पर साम्प्रदायिक झगड़े तथा देश प्रेम की भावना साथ-साथ परिलक्षित होती है । आँचलिक उपन्यास साहित्य में भारतीय ग्रामीण समाज के इस्लाम धर्म के स्वरूप, इस्लामियों के हिन्दुओं के साथ सम्बन्ध उनकी साम्प्रदायिकता एवं राष्ट्रीय भावना का चित्रण पाया जाता है ।

1- उदय शंकर भट्ट - "लोक-परलोक "पृ०सं० 64 ।

"परती-परिकथा" आँचलिक उपन्यास में मुसलमान टोली के लगभग पचास घर हैं जो आज भी परानपुर की पुरानी प्रतिष्ठा की रक्षा करने की बात सामूहिक रूप से सोच सकते है" ।[1]

"आधा गाँव " आँचलिक उपन्यास में उत्तर प्रदेश के भोजपुरी भाषी शिया मुसलमानों के जीवन के धर्म सम्बन्धी विश्वासों, पर्वों उत्सवों का व्यापक रूप से वर्णन मिलता है । "आधा गाँव " आँचलिक उपन्यास में फुन्नन की नानी मन्नत मानती है ।

" आँख बचाकर लकड़ी के उस ताजिये के पास गयी जो अभी सजाया नहीं गया था । और इधर उधर देखकर चुपके से बोली है इमाम साहब फुन्नन के नाना से मत कहियेगा ..... कि हम आपसे कुछ कहे आये रहे बाकी फुन्नन को लाम पर (लड़ाई पर) जाय से रोक दीजिये ...... परसाल हम आप पर नवा कपड़ा चढ़ा देंगे" ।[2]

इसी प्रकार वे बाबा के मठ पर भी मान्ता मनाती हैं

मुस्लिम धर्म में मोहर्रम के अवसर पर ताजिये निकाले जाते हैं जिसका वर्णन 'आधा-गाँव' उपन्यास में उपन्यासकार ने करते हुए लिखा है --

"दस मोहर्रम को तीसरे पहर बड़े ताजिये का दरबार लगा करता था । लकड़ी के बीसों ताजिये अपने-अपने चौकों से सोजरव्वाओं की निकाबत में आते और बड़े ताजिये के इधर उधर बैठ जाते । ....औरतें

1- राही मासूम रजा -"आधा-गाँव" पृ०सं० 108 ।

2- राही मासूम रजा -"आधा-गाँव" पृ०सं० 74 ।

बच्चों को बड़े ताजिये के नीचे से निकालती । मन्नतें मानती । जारी पढ़ती और शरबत चढ़ाती"।[1]

मुसलमानों के अजान देने, मोहर्रम ईद एवं बकरीद आदि धार्मिक त्यौहारों का वर्णन आधा गाँव उपन्यास में देखने को मिलता है "।

भारतीय ग्रामीण समाज में सम्प्रदायिक संघर्ष की अपेक्षा हिन्दू मुस्लिम धर्मावलम्बियों के बहुमत में परस्पर स्नेह तथा भाई चारे की भावना अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है।आँचलिक उपन्यासों में हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक स्नेह एवं परस्पर सद्भाव तथा सहयोग के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । "मैला आँचल'आँचलिक उपन्यास में गांधी जी की विचार धारा पर आधारित तिवारी जी के गीत में हिन्द मुस्लिम एकता का वर्णन मिलता है -

"अरे , चमके मन्दिरवा में चाँद
मसजिदवा में बंशी बजे ।
मिली रहू हिन्दू मुसलमान
मान-अपमान तजो ।[2]

"अलग-अलग"वैतरणी"आँचलिक उपन्यास में मुसलमान एवं हिन्दुओं के परस्पर प्रेम एवं सम्मान के उदाहरण मिलते है । "अलग अलग वैतरणी के कलीम मियाँ का बेटा बदरून पाकिस्तान चला जाता है । वह अपने अब्बा

1- राही मासूम रज़ा - आधा गाँव"पृ०सं० 11 से 18तक ।
2- फणीश्वर नाथ "रेणु"-"मैला आँचल" पृ०सं० 247 ।

खलील मियाँ को भी वही बुलाना चाहता है परन्तु भारत प्रेमी खलील मियाँ वहाँ जाने के लिए मना कर देते हैं और उसके वहाँ जाने पर भी भला बुरा कहते है । जब विपिन खलील मियाँ से यह पूछता है कि आप वहाँ क्यों नहीं चलते तब खलील मियाँ जवाब देते हैं -

आज तक उपर खुदा गवाह है बेटे मैंने कभी हिन्दू और मुसलमान में फर्क नहीं किया । मैंने दसमी नहीं मनायी की दिवाली के दीये नहीं जलाये ? तुमने तो देखा ही है कि होली के दिन मेरे सहन में जाजिम बिछ जाती और क्या छोटा और क्या बड़ा सब इकट्ठे होते । फाग गाने वाली टोली पहले यहाँ छावनी पर जमती थी फिर यहाँ से उठकर लोग सीधे मेरे दरवाजे आते । मैं अहिरों को बुलवाकर पहले से ही कंडाल भर ठंडई बनवाये रहता । लोग खूब छानते और खूब गाते । मेरे घर में होली के दिन पुड़ियों और सिवइयों की टाल लग जाती । सारी ठकुरहन पुराने रिवाज को निभाती रही । ईद के मौके पर लोग हमारे यहाँ मुबारकबाद देने आते । बुड्ढे मलिकार खुद पिछलीबार आये थे । आज तक खलील मियाँ की बेटी बहू को या उनके किसी पुश्त में खानदान की किसी लड़की को कभी हिन्दुओं ने अपनी बेटी बहू से अलग नहीं माना"[1]।

"आधा गाँव" आँचलिक उपन्यास में हिन्दू और मुसलमान औरतें बड़े तायिदे से मन्नते माँगती हैं ।"

1- शिव प्रसाद सिंह -"अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 272 ।

देवी देवताओं में ग्रामीण जनता का बहुत अधिक विश्वास है अतः जब भी कोई कार्य पूरा नहीं होता तो ग्रामीण जनता देवी देवताओं से मान्यता मनौती करती है। मनौतियाँ पूरा होने पर लोग आकर धूमधाम से मनौतियाँ चढ़ाते हैं।[1]

नागार्जुन ने अपने आँचलिक उपन्यास 'नई-पौध' में भगवान की मनौती का वर्णन करते हुए लिखा है –

"औरत मर्द सभी हाथ जोड़कर भगवान से मनाया करते कि चाहे जैसे भी हो बिसेसरी का ब्याह अगहन के लगन में अवश्य हो जाय। पंडिताइन ने आंचल पसार कर और मत्था टेककर जोड़ा छागर (खस्सी बकरा) कबूला था। दुर्गामाई के आगे। बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगा जल भर कर पैदल पहुँचेगी और अपने हाथों से बाबा बैदनाथ को नहलाएगी"।[2]

"पानी के प्राचीर" आंचलिक उपन्यास में शीतला देवी को शांत करने के लिए ग्रामीण लोग देवताओं की पूजा करते हैं। उपन्यासकार के शब्दों में "दोहाई आदि शक्ति गाँव आपकी शरण है। ..... देवताओं की पूजा हो रही है.....रात .....रात ..... फैली हुई रात ..... बड़े बड़े मशाल जला कर गाँव वाले गाँव के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। जय.. जय.. जय डीह राजा की जय.....काली माई की जय.....बरम बाबा की जय .... पानी की भाँति दिग्दिगंत तक अंधकार छिल रहा है।

1– राही मासूम रज़ा –"आधा गाँव" पृ०सं० 74 ।
2– नागार्जुन –"नई पौध" पृ०सं० 92 ।

धार क्रूर ...... जय जय कार ..... मशाल मानों जमें हुए जीवन के सन्नाटे को चीर कर आने वाले कल को बुला रहे हैं। जन समूह के आगे आगे सुमेश पँडे तीन अन्य सोखों के साथ नाच कूद रहे हैं जा रही है शीतला फूलमती की सवारी(महामारी की देवी) इस गाँव से जा रही है।"[1]

"अलग-अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने लिखा है निःसन्तान देवी चरण सिंह को विन्ध्याचल देवी की उपासना से संतान प्राप्ति हुई शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में –

"गाँव के स्वर्गीय जमींदार जैपाल सिंह के पितामह स्व0 ठाकुर देवी चरण सिंह निपूते थे। विन्ध्याचल में साक्षात भगवती ने दर्शन दिया था उनको। फिर अपनी मूर्ति देकर कहा था कि ले जा इसे अपने गाँव में प्रतिष्ठित कर। तेरी सकल कामना पूरी होगी। विन्ध्यवासिनी धाम से यह मूर्ति देउ सोवा ले आये थे। इसे ठाकुर देवी चरण ने हीपत्थर का विशाल मंदिर बनवाकर पूजा अर्चा की विधि से पधराया। बाबू जैपाल सिंह के पिताजी के जमाने में मंदिर मे नया कलश चढ़ा। भगवती की दोनों आँखें सोने की बनी। आरती पूजा का सारा साज सामान नया किया गया। क्योंकि उसी साल करैता के जमींदार की सौभाग्यवती पत्नी की पवित्र कोख से जैपाल का जन्म हुआ देवी के इस प्रताप की कहानियाँ चारों ओर फैल गयी और हर साल रामनवमी के अवसर पर बाँझ और निपूती औरतों की भीड़ इकट्ठी होने लगी"।[2]

1– रामदरश मिश्र – पानी के प्राचीर पृ0सं0 238।
2– शिवप्रसाद सिंह – अलग-अलग वैतरणी"पृ0सं0 14।

"बाबा बटेसर नाथ" आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता मनोकामना पूर्ण होने पर बटेसर-नाथ को मनौतियाँ चढ़ाती है। उपन्यासकार नागार्जुन ने लिखा है -

"मनोरथ पूरा होने पर लोग आकर धूम धाम से मनौतियाँ चढ़ाते रेशम के झूले कोढ़िला के बने सिर मौर और मण्डप, जरी गोटे की मालाएं, पीतल कांसे की घंटियाँ लाल झकरेंगे का टुकड़ा धूपदीप, फूल-फल अच्छत, दूब, दूध और गंगाजल बेल और तुलसी के पत्ते .... धूप धरहरी मिठाइयाँ, पकवान, पान मखाना ..... ढोल ढाक पिपही बारह महीने में बीस पच्चीस बकरे भी बलि चढ़ते थे।"[1]

धर्म के क्षेत्र में ग्रामीण समाज में अंध विश्वास इतना अधिक परिव्याप्त है कि ऐसा लगता है कि कोई भी कार्य बिना इस अंध श्रद्धा भाव के पूरा नहीं होगा। आँचलिक उपन्यासों में धर्म के प्रति अंधविश्वास और अंध श्रद्धा भाव का प्रतिफलन स्थान-स्थान पर उपन्यासकारों ने किया है जादू टोना झाड़ फूंक आदि अंध विश्वास का ही एक रूप है। अंध विश्वासों के मूल में ग्रामीणों की अशिक्षा है। पुराना विश्वास नये अविश्वासों के साथ मिलकर और उलझ जाता है। 'धरती परिकथा' में नयी नयी कृषि क्रान्ति लाने के लिए कृत संकल्प जितेन्द्र के धरती तोड़ने की प्रतिक्रिया में गाँव की प्रतिगामी शक्तियाँ एक एक सांस्कृतिक षड्यंत्र करती हैं। निरहुवाली पर धरती के देवता परमाबाबा आते हैं और धरती तोड़ने के प्रति अपनी गहरी अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

1- नागार्जुन - "बाबा-बटेसर नाथ -पृ०सं० 61।

इन धार्मिक अंध विश्वासों के विषय में फणीश्वर नाथ"रेणु" ने अपने आँचलिक उपन्यास`मैला आँचल में' लिखा है –

गाँव के लोग बहुत अंध विश्वासी हैं " तभी तो वे भोज आदि के दिनों में जंगल की ओर दो पूड़ियाँ फेंक देते है "जंगल के देवी देवता और भूत पिशाच के लिए "।[1]

जोतखी जी का विश्वास है कि डाक्टर लोग रोग फैलाते हैं सुई भोंक कर देह में जहर दे देते हैं हैजा के समय कुओं में दवा डाल देते हैं सारा गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। इसके अलावा विलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है ...... गाँव के लोगों का विश्वास है कि यदि "विश्वनाथ प्रसाद मालती माँ का पक्ष न लेते तो गुन मंतर शेष हो जाता"।[2]

डाक्टर से आपरेशन करवाने के स्थान पर स्त्री की मौत को अच्छा समझा जाता है क्योंकि बच्चे को पेट काट कर निकालना शिव हो । शिव हो ।"[3] यही नहीं बुरा भला कहने पर तुरन्त शराप मिल जाताहै तथा दुहाई बाबा पीर । भूल चूक माफ करो । मेरे बच्चा की मौत फेर दो महात्मा । सिन्नी और बद्धी चढ़ाऊँगी ।"[4] ये सब बातें भी अंध विश्वास की परिचायक हैं ।

1– फणीश्वर नाथ"रेणु" "परतीपरिकथा" पृ०सं० 111 ।
2– फणीश्वर नाथ "रेणु" "मैला आँचल पृ०सं० 193, 331 ।
3– " ,, ,, " पृ० सं० 21 ।
4– " ,, ,, " पृ० सं० 195 ।

इसी प्रकार उपन्यासकार "रेणु" जी ने 'परती-परिकथा' आँचलिक उपन्यास में धार्मिक अंध विश्वास की ओर संकेत करते हुए लिखा है -

ग्रामीण जनता के विचार से " डेढ़ सौ एकड़ की पाँच परिधियों में ब्रह्म पिशाच का राज्य था ।"[1]

यही नहीं वे लोग विश्वास करते है कि " हँसी ठिठोली भला देवता बरदास्त करें ...... कभी नहीं ठिठोली करने से ही देख लो सभी बेबात हो गये । कोई टीकनेऊ काटकर सोसलिट में जान दे दिया तो कोई मुर्गा मुर्गी खाकर कोमनीस में अपना धरम दे दिया" । ...... ग्रामीण जनता का विश्वास है कि जब निरसू भगत पर देवी की सवारी आती है जब निरसू पर देवी की सवारी होती है तो निरसू भगत यही था रहा है न कह कर परमाबाबा आ रहे हैं "[2] कहते हैं ।

कचहरी की मिट्टी से कपाल पर टीका लगाकर देवी देवता का सुमर करते हैं। ग्रामीण जनता का विश्वास है कि यदि....आँचल में सिर्फ अच्छत गिरे तो समझो काम खराब है। यदि फूल गिरे तो मनोकामना पूरी समझो तभी तो बाक आदि लेने के लिए परमा बाबा के पास जाते है ।"[3]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" "परती परिकथा" पृ० सं० 29 ।
2- " ,, ,, " ,, पृ०सं० 115-117 ।
3- " ,, ,, " ,, पृ० सं० 119 ।

"आधा गाँव "आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता के अंध विश्वास का वर्णन करते हुए राही मासूम रज़ा ने लिखा है -

"एक साल तो ऐसा हुआ कि एक बेवा ब्राह्मणी की उलती मज़दूरों की भूल से ज़रा कम निकली हुई थी। बड़ा ताजिया उसे गिराये बिना गुज़र गया। वह बेवा - फूट-फूट कर रोने लगी कि इमाम साहब उससे रूठ गये .... कोई मुसीबत आने वाली है। .... वह अपने दोनों बेटों को लेकर नूरूद्दीन शहीद के मज़ार पर गयी उसने बेटों को बड़े ताजिये के सामने खड़ा कर दिया फिर उसने ताजिये की उन अनदेखी आँखों में आँखे डाल दी और बोली " हे इमाम साहिब। हमार लड़कन के कछऊ होगइल ना त ठीक न होई फिर उसने हम्माद मियाँ को घेरा। चलो मीर साहब। हमार उलतिया गिरवाये लेई।"[1]

मन्नत मन्नौती की ही भाँति जादू टोना जैसे धार्मिक अंध विश्वास में ग्रामीण समाज को विशेष आस्था है।

अमृत लाल नागर ने अपने आँचलिक उपन्यास बूँद और समुद्र में एक स्थल पर लिखा है -

"अरे बियाँ आओ जल्दी से। गजब हुई गया। "कहकर श्रीमती साले .... जल्दी, जल्दी प्रार्थना करने लगी - हेसत नराइन स्वामी और

1- राही मासूम रज़ा -"आधा गाँव" पृ० सं० 75 ।

तुम्हरी कथा बोलत हूँ - हे बजरंग बली तुम्हारा सवा पाँच रुपया का परसाद मानितरी हमरी रच्छा करो ....हूँ. हूँ..हूँ ।"

"अरे क्या भया बहू ?" बहुआ जाड़े में थुरथुराती हुई आई। "अरे बहुआ, ई देखो तो तनी- कौनो निपूती रॉड हमरे दरवाजे पर ई पुतले धर गई है री । जिसने हमरे लिये किया होय ईसुरनाथ उसी के आगे अवै। छिन्नदटी , चोट्टी निगौड़ी - ये नंदो रॉड का काम होगा उसी छिनारी के कुनबे पै गाज गिरिहै। और तइया निगोड़ी का तो जनम बीता एही सब लच्छन में " ।[1] ताई जो जादू टोने की कला में निपुण है । उस कला के विषय में उपन्यासकार ने लिखा है -

"उनके जादू टोने के सैकड़ों किस्से प्रसिद्ध हैं, कहते है ताई रात के बारह बजे कुछ दिनों तक किसी मेहतर के यहाँ जादू टोना सीखने भी जाती थीं । काले डोरे की करधनी मैलोटा सा धागा और कैंची बाँधकर उन्होंने सात बिरादरी और मोहल्ले टोले के घरों में गजब ढाये हैं - किसी के पलंग की पाटी पर सेंदुर मलाहै किसी के तकिये में सवा गज लंबा काला डोरा पिरोकर सुई खोंस आई है, कहीं साही का काँटा खोंस आई है, किसी के ब्याह की चुनरी चोकोर काटी है, कहीं नन्हें मुन्ने के खटोले में तेल का टपका लगाकर मारण मंत्र चलाया है, किसी लड़की की बीच माँग के बाल काटकर उसे बाँझ बनाया है, किसी के दरवाजे पर चालीस दिन तक शाम को दिया बाल कर रखा है , किसी के लिए चौराहे पर उतारे रखे हैं । ताई अनेक बार टोना करते पकड़ी गई हैं ।"[2]

'कब तक पुकारूँ "आंचलिक उपन्यास में रांगेयराघव ने जादू टोने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए बताया है –

"शराब चंदन के जादू टोने से सम्बद्ध थी। चंदन प्रसिद्ध टोने बाज था। चंदन ने कपड़ा खोला और देवी की मूर्ति के सामने मुर्गा पकड़ कर बांध दिया। ...... कौन है तेरा दुश्मन दरोगा [उसने सुखराम से पूछा] हंडी छोड़ता हूँ चंदन ने कहा उसके बीबी बच्चे हैं। हैं, वे क्या करें हैं? सुखराम क्या जबाब दे? चुप रहा उनका दुख पाप बनकर तुझ पर चढ़ेगा। तू तैयार है? चंदन ने कहा समझ ले पर बचाने वाला और भी बड़ा है। अगर उसकी मर्जी होगी तो कोई कुछ नहीं कर सकता "।[1]

"मैला आँचल" आँचलिक उपन्यास में रेणु जी ने जादू टोना कराने एवं करने वाले पात्रों का वर्णन किया है। गाँव में क्या ऊँच क्या नीच जाति के लोग जादू टोने पर सभी को विश्वास है। उपन्यासकार के शब्दों में –

विश्वनाथ प्रसाद कहते हैं – जोतखी जी से एक बार जन्तर बनवा कर देखा, झाड़ फूँक भी करवा के देखा परन्तु कुछ अन्तर नहीं आया "।[2] गाँव में पारबती की माँ को जादू टोने में सबसे निपुण मानते हैं। जोतखी जी भी कम नहीं हैं सबके हीत? गुरुवार कोअमावस्या है जिस पर तुझे सन्देह हो उसके पिछवाड़े में बैठ जाना। ठीक दोपहर रात को वह निकलेगी उसका पीछा करना

1– रांगेयराघव –" कब तक पुकारूँ " पृ०सं० 433-34 ।

2– फणीश्वरनाथ"रेणु" –मैला आँचल पृ०सं० 74 ।

वह तुम्हारे बच्चे को जिला कर तेल फुलेल लगाकर गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी ...... उस समय अपना बच्चा छीन लो " ।[1]

इसी प्रकार "रेणु" जी ने "परती परिकथा" आँचलिक उपन्यास में जादू टोने का वर्णन करते हुए लिखा है -

जादू टोना करने में ये लोग निपुण हैं - पंचहरिया मुरबान... डिब्बियों के खोलने से अमावस्या की रात होना तथा अँगूठी के नगीने से आंधी पानी को छोड़ना"।[2] जादू टोना के सफल उदाहरण है।

लुत्तो भी बामनों के सभी गुण मंतर जानता है तभी तो गुण मंतर फूँक कर चुटकी बजाकर मिम्मल पगलवा को भगा दिया/जादू के बल पर ही जलधारी लाल ब्रह्म पिशाच से भेंट कर सके है।"[3]

विवेकी राय के शब्दों में -" इस धार्मिक अवमूल्यन के मूल में जैसा कि कथा साहित्य में उभरे उसके चित्रों को देखकर पता चलता है ग्रामांचलों में शिक्षा दीक्षा का एकान्त अभाव है। भारतीय धर्म, दर्शन और सांस्कृतिक चिन्तन की जिस ऊँचाई पर स्थित है गाँव के लिए वहाँ तक की पहुँच कल्पना मात्र है और नीचे अंधकार में उतर कर वही छाया विकृत हो जाती है "।[4]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु"-"मैला आँचल पृ०सं० 321-22 ।
2- " " " 'परती-परिकथा' पृ० सं० 13-18 ।
3- " " " 'परती-परिकथा' पृ० सं० 336 ।
4- विवेकी राय- स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य" पृ०सं० 247 ।

धर्म शास्त्रीय कर्मकांड का भी ग्रामीण परख आँचलिक उपन्यासों में प्रतिफलन हुआ है " इन कर्म कांडों में श्राद्ध कर्म, पितरों " को भोजन के निमित्त ब्रह्मभोज आदि करना ऐसे कार्य है जिनका वर्णन शिव प्रसाद सिंह ने अपने आँचलिक उपन्यास अलग-अलग वैतरणी" में किया है । उपन्यासकार के शब्दों में -

" अबे परियार साल ही तो इन्तकाल हुआ । हम उनके गाँव गये थे । बड़ा भारी सराद्ध हुआ था हजारों करन्न, डोम, भिखमंगे जुटे थे । देखने लायक मजमा था हाँ । पाँच सौ बामन खिलाये थे । सबको एक-एक मलमल का गमछा और चवन्नी दच्छिना में मिली रही । बाकी दिन भर दौड़ धूप करते करते कमर भी झुक गयी" ।[1]

पितृ पक्ष में मातृ नौमी का विशेष महत्व है।नागार्जुन ने अपने उपन्यास" `नई-पौध' में लिखा है -

"आज मातृनवमी थी । अपनी अपनी माँ नानी, सास, दादी और परदादी के निमित्त सबको एक एक ब्राह्मण चाहिये था।इतने ब्राह्मण कहाँ से आवे ...मोहनपुर को नौघरे में न्योता था। सूलो को सात घरों में गौरीनन्दन, दुनाई बुद्धर किसी को भी पाँच पाँच से कम घरों में नहीं जीमना था । ...... माहे मुखिया के घर पूड़ा दही से पितरपच्छ के ब्रह्मभोजी बेहाल थे वह जो छूटा तो बाबू नीलकंठ मल्लिक के यहाँ पूड़ी तरकारी का बहरावन करता हुआ बाहर निकला"।[2]

बलभद्र ठाकुर ने मुक्तावती आँचलिक उपन्यास में श्राद्ध कर्म के विषय में लिखा है -

"दुखिया माँ के जीवन का एक मात्र सहारा वह चल बसा । गरीबनी के पास ब्रह्मसभा की लंबी फीस देने के पैसे कहाँ! मेरी माँ के आगे आज रोई कलपी, तो उन्हें दया आ गयी । आपके आने से कुछ क्षण पहले उसी बारे में बता रही थी फिर उसी की याद अभी दिला रही है, ताकि श्राद्ध की तैयारी में विलम्ब न हो जाय ।"[1]

धर्म से ही जुड़ा हुआ तत्व पर्व तीज त्योहार मेले इत्यादि है जिनका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है ।

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में भारतीय ग्रामीण समाज के धार्मिक स्वरूप सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में ग्रामीण समाज के ईश्वरवाद आत्मवाद बहुदेववाद भूत-प्रेत ओझा साधु संतों में विश्वास पाप पुण्य की धारणा आदि ऐसे विषय है जिनको लोक संस्कृति के नियामक तत्व के रूप में स्वीकार किया जाता है इनसे अलगहट करलोक संस्कृति की कल्पना एक प्रकार से अधूरी होगी ।

आर्थिक व्यवस्था -

हिन्दी के आँचलिक उपन्यास साहित्य में गाँवों की आर्थिक स्थिति केस्वरूप, एवं स्वतंत्रोत्तर काल में जमींदारी उन्मूलन के फलस्वरूप जमींदारों, भूपतियों आदि की आर्थिक स्थिते, ग्रामीण जन समाज तथा भू-विहीन कृषकों एवं श्रमिकों के प्रति इन भूपतियों का व्यवहार, गाँव के लोगों की आर्थिक समस्याएं जैसे घर की समस्या, भोजन वस्त्र की समस्या आदि सभी विषयों का आँचलिक उपन्यासकारों ने बड़ी सूक्ष्मता एवं गहराई से यथास्थान चित्रण किया है ।

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर करती है, क्योंकि ग्रामीण समाज का मुख्य उद्योग कृषि है और किसानों की आर्थिक स्थिति मुख्य रूप से भूमि के स्वामित्व पर निर्भर करती है।गाँवों में जमींदारी प्रथा का बोलबाला होने के कारण भूमि के स्वामी जमींदार ही हुआ करते थे । इन जमींदारों के विषय में एम॰बी नानावती एवं अन्जारिया ने अपनी पुस्तक 'द इंडियन रूरल प्रोब्लम' में लिखा है - "जमींदार जो मूलतः सरकारी प्रतिनिधि समझे जाते थे अंग्रेज प्रशासन द्वारा उस भूमि के स्वामी घोषित कर दिये गये, जिससे वे कर वसूल करते थे । .... सरकारी कर, भूमि के विविध वर्गों की उत्पादक क्षमता का निरीक्षण किए बिना अथवा भूमि के अधिकारों एवं हितों का सर्वेक्षण किए बिना विषमतापूर्ण एवं पूर्व निर्णय के आधार पर निर्धारित किया जाता था । भूमि के किरायेदारों के हितों की सुरक्षा पर कभी ध्यान

नहीं दिया गया । भूस्वामीगण कृषकों से अधिकाधिक कर वसूल करने में रुचि रखने वाले, कार्यरहित तथा आश्रित वर्ग बन गये"।[1] जमींदारी प्रथा वंशानुगत चलती रहती थी। स्वतंत्रता से पूर्व ये जमींदार गाँव के लोगों के साथ मनमाना एवं क्रूरता पूर्ण व्यवहार करते थे ।'बाबा बटेसर नाथ' आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने इन जमींदारों के क्रूरतम अत्याचार का वर्णन करते हुए लिखा है ।

"शत्रुमर्दनराय को बीच आँगन में खड़ा कर दिया गया । लट्ठ लिये हुए चार सिपाही सामने मुस्तैद थे । बाहों को माथे के उपर खड़ा करके एक सिपाही ने बांध दिया।दो गज के फासले पर दो ईंटे डाल दी गयी । एक ईंट पर एक पैर, दूसरी पर दूसरा पैर। इस तरह राय जी खड़े किये गए । यमदूत सी मूछों वाला एक अधेड़ भोजपुरिया जमादार कोड़ा लिये नजदीक आया । दूसरी ओर से एक और आदमी आया जिसके हाथ में मुँह बंद हाँड़ी थी ।

जमादार का इशारा पाकर वह शत्रुमर्दन के बिलकुल करीब पहुंचा और हांडी का मुँह खोलकर लाल चींटों का छत्ता निकाल लिया । छत्ते में डोरी लगी थी । उसने खाली हांडी नीचे जमीन पर रख दी और बिलबिलाते लाल चींटो भरा आम के अधपके पत्तों का वह पोतला राय जी के माथे पर टिकाया, उपर डोरी पकड़े रहा .... चींटे हजारों की तादाद में शत्रुमर्दनराय की देह पर फैल गये । मारा सिनाकार बेचारे ने बंधे हाथों को

उपर झटकने की कोशिश की कि पीठ पर कोड़े पर कोड़े पड़े सपाक्-सपाक् चार बार। खबरदार। जमादार गरज पड़ा अपनी खैर चाहते हो तो वैसे के वैसे खड़े रहो, वरना .... आँख, नाक, कान मुँह, होंठ, गर्दन, कपार और बाकी समूचे बदन से चिपक गयें लाल चींटे। थोड़ी देर तक शत्रुमर्दन राय हाय-हाय होय, होय, हुई-हुई करता रहा। एक साथ हजारों की संख्या में चलती फिरती, भूखी प्यासी जहरीली सुइयों ने लाचार आदमी पर हमला कर दिया था। शत्रुमर्दनराय काफी देर तक छटपटाता रहा ....।[1]

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जनता की आर्थिक व्यवस्था का संचालन एक प्रकार से जमींदारों के हाथ में सन्निहित था। इन भूपतियों एवं जमींदारों की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति एवं गरीब किसानों पर उनके द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन करते हुए रामदरश मिश्र ने अपने आँचलिक उपन्यास पानी के प्राचीर में लिखा है -

"गजेन्द्रबाबू ओसारे में काठ के सफेद कुन्दे के समान आराम कुर्सी पर जाघ तक धोती बटोरे बैठे थे और दो नौकर मुक्की लगा रहे थे। उसी समय उनका जवान खवास बाबू साहब के पास आया और पैर छूकर सलाम करने लगा। उस काठ के कुन्दे ने उस नौकर को उठाकर ओसारे के बाहर फेंक दिया और फिर उतर कर उसे चहल चहल कर मारने लगा। पूछने पर नीरू को ज्ञात हुआ कि वह खवास अपना गवना कराने चला गया था। छुट्टी दो दिन की ली थी लेकिन लग गये तीन दिन। बहू को घर उतार कर मीतों

1- नागार्जुन -बाबा बटेसर नाथ " पृ०सं० ४६-४७ ।

की गूंज लेकर वह सद्यः मालिक से आशीर्वाद लेने आया तो बाबू साहब ने उसे इस रूप में आशीर्वाद देना शुरू किया । पिता, माँ छुड़ाने आये तो उन्हें भी पीटना शुरू किया"।[1]

इसी उपन्यास में जमींदार के मुंशी जी के अत्याचारों द्वारा किसानों के साथ किए गए अत्याचारों का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"दरबार में बीसों किसान पकड़ कर लाये गये थे । सबके सब फटेहाल, नंगे बदन, धूल धूसरित सर वाले मुंशी जी सबको बारी बारी से मुर्गा बना कर पीट रहे थे । चिलचिलाती धूप चोट के ऊपर लेपन कर रही थी। मुंशी जी गरजते जा रहे थे -

मैं सबकी नस पहचानता हूं, तुम सब साले चोर हो । बिना मारे तो सुनते ही नहीं हो लात के देवता हो बात से क्या मानोगे ? दो दो साल की लगान बाकी है। सिपाहियों के जाने पर घर छोड़ कर भाग जाते हो । .... मुंशी जी ने एक डंडा जमाया, सिपाही ने लाठी के हूरे से ढकेल दिया । किसान मुर्गे की हालत में ही गिर पड़ा। उसका ललाट ठीकरे से लग कर फूट गया । मुंशी जी के हाथ दुख गये थे । उनके आदेश पर सिपाही किसानों की मरम्मत कर रहे थे । किसान कसाई के हाथ में पड़ी गाय की तरह निरीह आंखों से दया की भिक्षा मांग रहे थे ।[2]

1- रामदरश मिश्र -"पानी के प्राचीर" पृ०सं० 195 ।
2- रामदरश मिश्र -"पानी के प्राचीर" पृ०सं०219 ।

किसानो के ऊपर किये जा रहे अत्याचारों का वर्णन करते हुए रामदरश मिश्र ने एक स्थल पर पानी के प्राचीर आँचलिक उपन्यास में लिखा है -

"नीरू बहुत व्यस्त होकर किसानों से लगान और कर्ज वसूल रहा था । कोई रियायत नहीं । मेला अगर फेल हो गया तो कितनी बदनामी होगी गजेन्द्र बाबू की । इसलिए किसानों पर सख्ती बरती जा रही थी । मारपीट, गाली गलौज, धूप में मुर्गा बनाना आदि सारी क्रियाएं हो रहीं थी । किसानों में तलहका मच गया था । हिदायत थी कि जो कोई भागेगा उसका घर उजाड़ कर फेंक दिया जायगा, उसके खेत की फसल कटवा ली जायगी। किसान हाय हाय कर रहे थे ।

गाँव की बहू बेटियों के साथ भी ये लोग दुर्व्यवहार करने से बाज नहीं आते।ग्रामीण श्रमिक किसान एवं सेवकों की बेटियों एवं बहुओं को ये जमींदार लोग अपने भोग विलास की वस्तु समझते हैं । इसका एकमात्र कारण यही है, कि बेचारे किसान गरीब हैं और वे जमींदारों और उनके बेटों के खिलाफ कुछ नहीं बोल सकते।श्रमिक मजदूरों की गरीबी का नाजायज फायदा वे इस रूप में भी उठाते हैं । नागार्जुन ने अपने आँचलिक उपन्यास"बलचनमा" में बलचनमा के द्वारा स्वयं इस बलात्कार का वर्णन करते हुए बताया है -

---

1- रामदरश मिश्र-" पानी के प्राचीर"पृ0 सं0 286 ।

" बहुत दिनों से उसकी [मालिक की] आँखें मेरी बहन पर लगी हुई थी । वह मौका खोज रहा था और दैव की इच्छा आज शैतान को वह मौका हाथ लगा था । एक साधु के मुँह से मैंने एक बड़ा ही अच्छा पद सुना था। भैया ! लेकिन अब याद नहीं है । उस पद का मतलब यही था कि कामिनी और कंचन के पीछे किसी का मन जब खिंचता है तो उस पर सौ बोतल दारू का नशा चढ़ जाता है । सो हमारे छोटे मालिक पर भैया उस दिन सौ बोतल दारू का नशा चढ़ गया था । अपना होश हवास वह खो बैठे थे । आखिर उन्होंने रेवती को जबरन जमीन पर गिरा दिया और खुद उसके बदन पर काबू पाने की कोशिश करने लगे । पन्द्रह साल की वह असहाय लड़की अपनी समूची ताकत बटोर कर उस पस्त हालत में भी मुकाबिला करने लगी । कुत्ते और बिल्ली की लड़ाई कभी तुमने देखी है भैया ? वही हाल था। मेरी बहिन ने हार नहीं मानी । उसने मालिक की कलाई पर इतने जोर से दांत गड़ा दिए कि सरकार अचेत हो गये और रेवती बिजली की फुर्ती से उठकर भाग आई ।"[1]

मध्य युगीन भारतीय ग्रामीण समाज में आर्थिक शोषण के सन्दर्भ में जमींदार एक प्रतीक कीभाँति पाये गये हैं।इसी कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण जनता को आर्थिक स्वतंत्रता एवं [illegible] प्रदान कराने के लिए जब इनका उन्मूलन हुआ तो आर्थिक दृष्टि से मुक्ति की मानों सामूहिक सुखानुभूति की एक आशा भरी लहर सामान्य ग्रामीण जन मानस में प्रतीत होती हुई दिखाई पड़ी ।

1- नागार्जुन -"बलचनमा" पृष्ठ 91 ।

उपन्यासकार शिव प्रसाद सिंह नेअपने आँचलिक उपन्यास" अलग-अलग वैतरणी"[1] में भूतपूर्व जमींदार ठाकुर जयपाल सिंह का पुश्तैनी आर्थिक वैभव समाप्त होता हुआ दिखाया है।उपन्यासकार के शब्दों में -

"जमींदार की पुश्तैनी पुख्ता दीवले एक हल्के से धक्के से ही जमीन पर आ रही हैं। देखते ही देखते करैता का पूरा माहौल बदल गया। आसामियों ने खानदानी लाज शरम छोड़कर जमींदार की छावनी से अपना रिश्ता तोड़ लिया। अब कभी दशहरे के मौके पर आसामियों की भीड़ जुहार करने नहीं आती न ही छावनी के मुख्य द्वार पर रखा बड़ा सा परात नजराने के रुपयों से ही खनकता है। अहीरों ने दही, दूध, कोइरियों ने साग सब्जी, मल्लाहों ने मछलियाँ, जुलाहों ने मुरगी और गड़ेरियों ने सलामी में खस्सी देना एक दम बन्द कर दिया। ..... न तो अब छावनी के लड़कों को देखकर कोई सत्तर साल का बूढ़ा झुककर सलाम करता था न औरतों को देखकर अपने चबूतरे की चारपाई से उठकर खानदानी लिहाज दिखाता था।"[1] इसी सन्दर्भ में उपन्यासकार ने आगे लिखा है -

इतने पर भी यह असम्भव लगता है कि युग-युग का मांसाहारी बाघ शाकाहारी कैसे हो जायगा।"[2].. वह ऐसा होता भी नहीं है।वह स्वयं को नव्य प्रजातांत्रिक शोषक के रूप में रूपान्तरित कर लेता है। उसकी यह नीति की गति की बंसता के सामने माथा झुकाकर छिपे तौर पर उसके भाग्य विधाता बने रहें।"[3]

1- शिव प्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ0सं0 32।
2- शिव प्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी- पृ0सं0 32।
3- शिव प्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी-"पृ0सं0 48 ।

आँचलिक उपन्यासकारों ने इन आर्थिक स्वार्थों की टकराहट को प्रगतिशील स्पर्श के साथ उठाया है। "परती-परिकथा" आँचलिक उपन्यास में "रेणु" जी ने इसी ओर संकेत करते हुए लिखा है -

"मुन्शी जल धारी लाल दास तहसीलदार और रामपरवारन सिंह सिपाही, परानपुर स्टेट के इन दो कर्मचारियों ने मिलकर, कलम की नोंक और लाठी के जोर से जमींदारी की रक्षा की । जमींदारी उन्मूलन की चपेट से स्टेट को बचाने का सारा श्रेय मुंशी जलधारी लाल दास को है । साबित कर दिया- परानपुर पट्टी परती है, जमीन खुदकाश्त है, बकाश्त है, रैयती हक है आदि। जिले के जमींदार और राजाओं की जमींदारियों का विनाश अवश्य हुआ । किन्तु हिन्दुस्तान के सबसे बड़े किसान यहीं निवास करते हैं । ....गुल्वंशी बाबू जमींदार नहीं, किसान है । दस हजार बीघे जमीन है, दो दो हवाई जहाज रखे हैं । दूसरे हैं भोला बाबू । पन्द्रह हजार बीघे जमीन है डेढ़ दर्जन टैक्टर रखे हैं पर यह बात भी सच्ची है कि वे जमींदार नहीं। किसान सभा की सदस्यता से किस आधार पर वंचित करेंगे उन्हें ? यहाँ पाँच सौ बीघे वाले किसान तृतीय श्रेणी के किसान समझे जाते हैं और हर गाँव पर इन्हीं किसानों का राज है ।"[1]

उपन्यासकार नागार्जुन ने "बलचना के बेटे" आँचलिक उपन्यास में इस आर्थिक स्वार्थ की टकराहट को प्रगतिशील रूप में दर्शाया है।उपन्यासकार ने एक स्थल पर लिखा है ।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु"- परती-परिकथा" पृ0सं0 30, 31, 32 ।

गोढ़ियारी गाँव के मछुआरों का गरोखर (गढ़पोखर) स्थानीय मगरमच्छ रूपी जमींदार हड़प कर डालना चाहते हैं । एक ओर मछुआरे यह अनुभव करते है कि –

" खाने वाले मुँहों की तादाद तेजी से बढ़ रही थी । दूसरी ओर उनकी जीविका का एक मात्र साधन ये पोखरा धाधली करके भूतपूर्व जमींदार द्वारा नये सिरे से बन्दोबस्त होने जा रहा है । कभी पोखरा देपुरा के मैथिल जमींदारों का था । जमींदारी उन्मूलन के बाद इसका पट्टा गोढ़ियारी के मल्लाहों ने ले लिया ।" अब भूतपूर्व जमींदार के सम्मुख इस आर्थिक मोर्चे पर संघ बद्ध होकर डट जाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता ।"[1]

भूपति और भूमिहीन का आर्थिक अन्तरविरोध न तो जमींदारी उन्मूलन से और न ही लैंडलर्ड आपरेशन से ही मिटता दिखता है । नये आर्थिक कोणों की टकराहट में लोग तीज त्योहार भूल गये । शिव प्रसाद सिंह के शब्दो में –

"होली के मौके पर न अब भारी कुंडाल में ठंडाई घोली जाती थी न अबरक का चूरा मिली अबीर धूल की तरह चरखा पर बिखेरी जाती थी ।"[2]

धरती परिकथा में रेणु" जी ने लिखाहै –

संत्रास और अन्सर्थ इतना भीषण की एक एक आदमी का माथा चकरा रहा है "

1– नागार्जुन– "वरुण के बेटे" पृ०सं०18 ।
2– शिव प्रसाद सिंह–"अलग–अलग वैतरणी"पृ०सं० 32 ।

गाँव में बेदखलियां होती है तनाव बढ़ता है। कहीं बटाई दारों को पर्चा मिलता है कहीं नहीं मिलता। मारपीट और रक्तपात के आयाम उभर कर सामने आते हैं। किन्तु अन्ततः इस विषम आर्थिक समस्या का कोई हल निकलता प्रतीत नहीं होता[1]।

फणीश्वरनाथ रेणु ने परती परिकथा की समस्या जो भूमिहीनों की प्रमुख समस्या है एवं लैंड सर्वे जैसे विषय को लेकर एक मई 1970 के "दिनमान" पत्रिका में दिये एक साक्षात्कार में अत्यन्त निराशा व्यक्त की है। उन्होंने कोसी अंचल के बेकार पड़े विशाल भूखंड के बारे में बताया है कि –

"सभी पार्टियों ने कहा कि जमीन का सर्वे होना चाहिये सन् 1950 के आस-पास की बात है। इसके साथ ही साथ सर्वोदय का भी कारबार चला तो जमीन वालों ने सोचा कि सर्वोदय में ज्यादा जमीन दे दें – जो सर्वोदय मे थे वही पहले कांग्रेस में थे – उन लोगों ने सोचा कि सर्वे जब होगा तो यही लोग जो फैसला करने आयेंगे। तब ये हम पर दया दृष्टि रखेंगे"।

लेकिन सर्वे के समय जब परिवार के लोगों ने परिवार के लोगों को ही हक नहीं देना चाहा तो फिर किसान मजदूरों को क्या देते? सोशलिस्ट भी किसानों का साथ नहीं दे रहे थे। कम्युनिस्ट पार्टी वाले इतने थे नहीं लेकिन जो थे वे भी मध्य वर्गीय परिवार के ही थे।"
इसी साक्षात्कार में रेणु जी ने आगे बताया कि –

1– फणीश्वर नाथ "रेणु" परती परिकथा" पृ०सं० 41 ।

दस सैकड़ा लोगों को जमीन मिली । पर इसके बाद दीवानी मुकदमों का दरवाजा तो खुला ही था । अन्ततः मुकदमें के बल पर दस मे से पाँच सैकड़ा लोगों की जमीन तो छिन ही गई । जितनी उम्मीद थी उतना सुधार हुआ नही ।.....बड़े किसानों को कुछ नहीं हुआ । पहले एक जहाज था अब दूसरा जहाज भी खरीद लिया है । सर्वे से जो फायदा होने वाला था नहीं हुआ । सर्वोदय से और भी कम हुआ ।.... इस बीच कोसी योजना सफल हुई लोगों को पानी मिलने लगा । खाद मिली नये किस्म के बीज लोगों ने लिये । .... इस हरी क्रान्ति को जो भी नाम दे दिया जाय उसके होते हुए लोग वकालत, प्रोफेसरी छोड़कर खेती करने लगे और जो गरीब खेती करने वाले थे वे टुकुर-टुकुर देखनें लगे । ... किसानों और भूमिहीनों को किसी कार्यक्रम पर भरोसा नहीं है "।

"रेणु" जी के द्वारा दिये गये इस साक्षात्कार से भूमिहीनों, कृषक मजदूरों की स्थिति का स्पष्टरूप दृष्टिगोचर होता है । जमींदारी उन्मूलन से विभिन्न राजनीतिक पार्टियों एवं उनके कार्यकर्ताओं में जागृति तो आयी विद्रोह की प्रवृत्ति को बढ़ावा तो मिला परन्तु भूमिहीन किसान मजदूरों की समस्या हल नहीं हुई ।"[1]

जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् ग्रामीण समाज में लघु भूमि के स्वामी कृषकों का एक ऐसा वर्ग विकसित होकर आया जिसके पास खेती करने के सारे अधिकार हैं। यह वर्ग अपनी आजीविका के लिए पूरे साल खेती करके अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति अपने आर्थिक साधनों से कैसे तैसे कर लेता

1- दिनमान 1 मई 1970 पृष्ठ 40 ।

है । इस वर्ग की आर्थिक स्थिति सामान्यतः श्रमिक वर्ग अथवा शारीरिक श्रम बेचकर दैनिक आवश्यकता की पूर्ति करने वाले वर्ग से प्रायः उच्च तथा विशाल भूमि के स्वामियों से सदैव निम्न रही है । इस मध्यवर्गीय कृषक वर्ग के सम्बन्ध में "रेणु" जी ने "मैला आँचल" में एक स्थल पर लिखा है ।

" इस इलाके के मंझले दर्जे के किसानों के पास यदि थोड़ी पूँजी हो गयी, तम्बाकू, धान पाट और मिर्च का भाव एक साल बढ़ गया घर में शादी गमी नहीं हुई तो वह तुरन्त लमनाह्‌[खुशहाल हो] , जाते हैं। यदि मालिक जवान हो तो तुरन्त औन पौन करने लगता है । हरमुनियां, फर्श, शतरंजी, शामियाना, जाजिम सैट, पंचलैट, पहाड़िया घोड़ा शम्पनी, टेबुल-कुर्सी, बेंच खरीदकर ढेर लगा देता है। इससे भी जब गरमी कम नहीं होती तब बन्दूक के लैसन्स के आफिसरों को डाली देना शुरू करता है ।.... लाल बाग मेला के समय रात-रात भर मुजरा सुनता है और दिन भर आफिसरों के साथ कचहरी में घूमता है। बन्दूक के लैसन्स के बाद नौटंकी कम्पनी खोलता है। इससे भी मगज ठण्डा नहीं होता तो कोई खूनी केस होकर सब समाप्त हो जाता है "।[1]

भारतीय ग्रामीण सामाजिक अर्थ व्यवस्था में खेतों में काम करने वाले श्रमिक मजदूरों का एक महत्वपूर्ण वर्ग पाया जाता है । सबसे अधिक काम करने के बाद भी यह वर्ग सबसे अधिक निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त इस भूमिहीन मजदूर वर्ग की आर्थिक स्थिति एवं जमींदारों के साथ उसके सम्बन्धों का वर्णन आंचलिक उपन्यासकारों ने किया है -

1- फणीश्वर नाथ रेणु - "मैला आँचल पृ०सं० 234-235 ।

"अलग -अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने इसी श्रमिक वर्ग का वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है -

" हाँ, उ का जानेंगे ? अपने दोनों जून दाल रोटी चाब लेते हैं जिसका पेट भरा होता है उसका गाल बहुत बजता है । करूरिवाही का नाम है तो यही सही । अब पेट जला के काम नहीं होगा । हमारी आँख के सामने लड़का लड़की बेचारे दाना बिना कुलबुला कर रह जाते हैं । आदमी जाँगर पीटता है, पसीना बहाता है काहे को ? इसीलिए न कि लड़का- पानी को दोनों जूनरूखा -सूखा पेट भरने को मिल जायगा । यहाँ तो हाड़ तोड़ के काम भी करो, तो भी मुँह में दाना मुअस्सर नहीं होता । ..... मालिक से रोटी के लिए अनाज माँगता है तो बदले में पिटाई पाता । ...

उपन्यासकार के शब्दों में - और मारो बाबू और मारो । मार के जान लेलो । लेकिन हम एक बार नहीं सौ बार कह रहे हैं । हम बिना रोजीना बन्नी के काम नहीं करेंगे । धरती खेत लेकर हम का ओम्मा अपनी कब्बर बनायेंगे । छोटे-छोटे लड़िका चार दिन से भूखे सोय रहे हैं हमसे अइसा काम नहीं होगा ।"[1]

इसी उपन्यास में एक स्थल पर खेतिहर श्रमिक चमार हड़ताल कर देते हैं।उपन्यासकार शिव प्रसाद सिंह ने लिखा है ।

1- शिव प्रसाद सिंह - अलग-अलग वैतरणी" पृ0सं0 248 ।

" उस साल चमारों ने हड़ताल बोल दी । चार सेर लेकम रोजिना मजूरी के बिना कोई हल नहीं जोतेगा। जैपाल कहते हैं कि यह सब देवकिसनु की शरारत है चढ़ते असाढ़ पानी बरसा । और झड़-झड़ी लगी । धरती गहगहाकर खिल उठी । पर उस साल करैता में बहुतो के हल नहीं नधे ।"[1]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते है कि यद्यपि समसामयिक ग्रामीण समाज के खेतिहर मजदूर एवं श्रमिक वर्ग परम्परा से चली आ रही जमींदारों द्वारा शोषण की प्रवृत्ति से निकलकर स्वतंत्रता, समानता, स्वावलम्बन की ओर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं।आर्थिक पराधीनता से कुछ अंशो में मुक्त हुए हैं फिर भी ये मजदूर श्रमिक वर्ग आर्थिक रूप से पूरी तरह अपने पैरो पर नहीं खड़ा हो पाया है तथा गरीबी एवं बेबसी की दीवारों में जकड़ कर अपना जीवन व्यतीत करता है । वह अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुएं भी प्राप्त करने में असमर्थ हैं ।

ग्रामीण समाज की आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी हुई अनेक समस्याएं है, जिनमें गरीबी या निर्धनता प्रमुख समस्या है अन्य सभी समस्याएं इसी गरीबी से ही जुड़ी हुई है जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी भोजन वस्त्र आवास एवं अस्वस्थता है । अस्वस्था का मुख्य का कारण बीमारी है।आंचलिक उपन्यास कारों ने अपने उपन्यासों में अन्य विषयों के अतिरिक्त गरीबी एवं निर्धनता का भी यथा स्थान वर्णन किया है ।

शिव प्रसाद सिंह ने अपने आंचलिक उपन्यास में एक स्थान पर लिखा है -

---

1- शिवप्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ0 सं0 595 ।

गरीबी हर चीज का अवमूल्यन कर देती है । शशिकान्त बोला - पहले शोषण था, अत्याचार था, गरीबी और जहालत थी । पर दिमाग में कुछ ऐसा भी था जो इन्सान को सीमा लाँघने से रोकता था। अब वह अंकुश नहीं रहा । न ईश्वर का डर न समाज का।अब आदमी सचमुच में स्वतंत्र है । बिलकुल स्वतंत्र । पर लोग यह भूल जाते है कि बंदर के हाथ में चाकू का रहना कितना खतरनाक है। [जमींदारी उन्मूलन के पश्चात ये किसान मजदूर एक प्रकार से स्वच्छन्द हो गए हैं] स्वतंत्रता बिना अकल केआदमी के हाथ में दुधारी तलवार की तरह होती है । मिसिर जी जो दूसरे पर वार कम करती है और अपने पर ज्यादा । गरीबी पहले से भी बढ़ गयी, आबादी की ही तरह । इन्सान है कि पहले से तंग हो गया, दिमाग से, मन से, तन और कर्म से । जिधर देखिये आपको दमघोंट सन्नाटा मिलेगा ।[1]

अज्ञेय ने अपने उपन्यास नदी के तट पर भूमिका भाग में ग्रामीण अंचलों में फैली गरीबी के विषय में लिखा है -

"यह देश का ही दुरभाग्य है । हमारे प्रायः सभी आंचलिक समाज निर्धन और दीन है और इसीलिये उनके चित्र अनिवार्यतः उत्पीड़न, द्वेष और प्रतिहिंसा के चित्र हो जाते है "।[2]

गरीबी के कारण ही गाँव के लोगों में निराशा व्यथा दुख आलस्य घर करे रहता है । गाँव का किसान अथक परिश्रम के बाद भी आर्थिक

1- शिव प्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 54-55 ।

2- अज्ञेय - नदी के तट पर भूमिका भाग से ।

चिंताओं से घिरा रहता है । उपन्यासकार शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में -

"आदमी सब जगह ऐसे ही होते हैं भइया । मसल है खाली पेट शैतान काडेरा । काहें लोग दिन रात मर-मर कर कोड़ते गोड़ते हैं । पसीना बहाते हैं । मरते जीते हैं । तब भी पेट नहीं भरता। का करें देखो नाहीं लोग खेखर की तरह हो गये हैं । किसके चेहरे पर तुम्हें जरा भी रुन्नक दिखाई पड़ती है। जानो सबको पिशाच लगा है .... भीतर ही भीतर घुन खाये जाये औरआदमी कुछ न करे "।[1]

गाँवों के आर्थिक आयोजन के परिणाम आज अभी अस्पष्ट स्थिति में हैं । अतः गाँव बहुत कुछअपनी आशा आकांक्षाओं में निराश हुए है, खेतिहर श्रमिक गाँव से शहरों की ओर धनोपार्जन के लिए जा रहे हैं । मैला आँचल उपन्यास में श्रमिक ग्राम छोड़कर शहर की ओर जा रहा है । "गाँव में वैज्ञानिक यंत्रो के उपयोग की वृद्धि के कारण श्रमिकों के लिए काम कम हो गया है। श्रमिक ग्राम छोड़कर कटिहार मिल में मजदूरी करने जाते है "।[2]

जनजाति मूलक आंचलिक उपन्यासों में अर्थ उत्पादन के साधन जैसे जड़ीबूटी एकत्र करना, शिकार करना, खेती करना आदि का वर्णन मिलता है 'वरुण के बेटे' आंचलिक उपन्यास में मछलियों को पकड़ने का वर्णन करते हुए नागार्जुन ने लिखा है -

---

1- शिव प्रसाद सिंह - अलग-अलग वैतरणी" पृ०सं० 685 ।

2- फणीश्वर नाथ"रेणु" "मैला आँचल पृ०सं० 320 ।

"मछलियों को लिये दिये महाजाल पानी के किनारे पहुँच रहा था। उसके दोनों छोर सिमट कर करीब आ रहे थे। मछुए अब आखिरी दफे मानों दसगुना जोर लगा रहे थे। काम खत्म पर था इसी से समूह को वह विराट श्रम शक्ति आशा और उमंग की उद्दीप्त स्वर लहरी में अपनी शब्दों के विजय सूचक गीतें दगने लगे।"[1]

उपन्यासकार नागार्जुन ने एक अन्य स्थल पर लिखा है -

"दिन दिन भर और रात रात भर वे मछलियों के मोर्चे पर डटी रहीं। छोटी मछलियाँ पकड़ने फंसाने का काम प्रायः ही लड़के लड़कियाँ और स्त्रियों के जिम्मे था। बड़ी मछलियाँ पकड़ना, नाव चलाना, ताल मखाना की फसल उपजाना, माल की खपत का प्रबन्ध करना .... ये सारे काम मर्द मछुओं के थे।"[2]

भारत की लगभग सभी जनजातियाँ आर्थिक दृष्टि से विपन्नावस्था में जीवन व्यतीत करती हैं। रांगेयराघव ने अपने आँचलिक उपन्यास " कब तक पुकारूँ " में करनट जाति के लोगों के जीवकोपार्जन से सम्बन्धित व्यवसाय का वर्णन करते हुए लिखा है -

"गाँव वह जा नहीं सकता। आज गाँव जाता है कभी शहद बेच आता है। कभी डाँग में दवादारू कर देता है। कबरी जाकर सब बेच आती। इसी से जो मिल जाता है उससे पेट भर जाता है। सुखराम शिकार मार कर लाता है। दोनों उस मांस को भर पेट खाते हैं। उसके पास जमीन नहीं कि

1- नागार्जुन -"वरुण के बेटे" पृ० सं० 69।

2- नागार्जुन- " वरुण के बेटे" पृ०सं० 83।

खेती करे । पैसा नहीं कि बिन्जी फिरें ।"[1]

सुखराम अपनी आर्थिक स्थिति बताता हुआ कहता है -

" हमारे पास कुछ नहीं । हम, जुवारी, चोर, उच्चके, बेईमान, कमीने, धोखेबाज झूठे हैं । हमारी औरतें, कुतियों की तरह रहती हैं । ये सिपाही, ये बड़े लोग उन्हें बीमारी देते हैं । फिर ये औरतें वे ही बीमारी हमें देती हैं फिर हम मरते हैं । ...... हम बेघरबार कुत्तों की तरह घूम-घूम कर जूठन खाने कोअपनी आजादी कहते है । पर हम रोते नहीं "।[2]

उन लोगों के पास कपड़े नहीं होते । इसीलिये वे आग जलाकर चारों ओर बैठ कर हाथ और शरीर तापते हैं फिर भी उससे काम नहीं चलता तो पौरुष औरस्त्रीत्व एक दूसरे को तप्त करने का यत्न करते हैं । सब कुछ घृणित । एक भयानक सूनापन मुझे इस विचार से ही खाये जा रहा है कि मनुष्य को यह सब सहन करना पड़ता है ।[3]

उदय शंकर भट्ट ने अपने आँचलिक उपन्यास 'सागर लहरें और मनुष्य " में मछली मारों के कार्य व्यापार के विषय में लिखा है-

"घन मच्छी कू तो वैसी हम कमती नई करता। वहाँ बी मिलतार्इ [illegible]य । दिन दिन भर वान पर रहताय । तब किदर जाकर दो काटी हात आता। दस पाटी मछली से कमती में कुछ नहीं होवेगा ।

1- रांगेयराघव - "कब तक पुकारूँ "पृ० सं० [illegible] ।
2- रांगेयराघव-" "कब तक पुकारूँ"पृ०सं० [illegible] ।
3- रांगेयराघव-" कब तक पुकारूँ" पृ० सं० 35 ।

तीन रुपया तो मार्किट तक भाड़ा होताय । छोटी मच्छी का दाम भी तो कमती उठताय" ।[1]

"मछलियों के टोकरे ट्रक में रखवा कर वह अपने आप बाजार जाती और अच्छे से अच्छे दामों पर माल बेचती मजाल है कोई उसे कम्र सके उसे धोखा दे सके " ।[2]

देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपने आँचलिक उपन्यास "ब्रह्म पुत्र" में धनोपार्जन के साधन मछली पकड़ने के विषय में वर्णन करते हुए लिखा है-

"धर्मानन्दी ने बात का रुख फिर से अतुल की ओर मोड़ते हुए कहा "मछलियां पकड़ना तो हमारा धन्धा है। हम मछलियाँ न पकड़े तो खाये कहाँ से ? चाहे कोई हमें पापी ही क्यों न कहे, मछलियाँ पकड़ने तो हम निकलते ही रहेंगे अपने अपने जाल लेकर ।"[3]

इसी उपन्यास में एक अन्य स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है -

"हाट बाजार की रौनक तो देखते ही बनती है। भोर से पहले ही दूर दूर की नौकाएं दिसांग मुख के नाव घाट पर आ लगती है । सब अपनी अपनी बिक्री की चीजें लाते हैं । बत्तखें ले लो । मुर्गियाँ भी हाजिर हैं। मछलियां और कछुए भी बड़े हैं । कबूतर ले लो । सूअर ले लो । अण्डों से भरी टोकरियाँ भी जल्दी जल्दी खाली हो रही है । मूँगा के थान भी बिक रहे है । अराड़ी की चादरों का सौदा हो रहा है ।"[4]

1- उदय शंकर भट्ट - सागर लहरें और मनुष्य" पृ0सं0 93 ।

2- उदय शंकर भट्ट - सागर लहरें और मनुष्य" पृ0 सं0 1? ।

3- देवेन्द्र सत्यार्थी - "ब्रह्म पुत्र" पृ0 सं0 41 ।

4- देवेन्द्र सत्यार्थी-" ब्रह्म पुत्र" पृ0 सं0 42 ।

आँचलिक उपन्यासों में गाँव की जनता के निम्न स्तर से सम्बन्धित निर्धनता के परिचायक ग्रामीण श्रमिक एवं मजदूर वर्ग की भोजन वस्त्र एवं आवास समस्या का भी उपन्यासकारों ने वर्णन किया है । 'अलग-अलग वैतरणी' में उपन्यासकार ने आर्थिक स्थिति के नियामत तत्व भोजन की समस्या का वर्णन करते हुए लिखा है -

"नये चावल का भात और चने केसाग का सालन । बस यही तो था करैता के तमाम लोगों की कमर तोड़ मेहनत का फल । इसी के लिए क्या क्या नहीं करना पड़ा है लोगों को " ।[1]

एक अन्य स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है -

"लाल लाल अंगाकड़ी प्याज मिर्च और नमक खाने के बाद भर लोटा पानी - बसइतने से ही संतोष के लिए यह दिन भर की जांगर तोड़ कमाई "।[2]

'पानी के प्राचीर' आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने भोज पदार्थ का जिस रूप में वर्णन किया है उसे देखकर गरीब किसानों की दयनीय दशा का ही परिचय मिलता है ।

उपन्यासकार के शब्दों -

"बैठा सोच रहा था कि आज माँ ने शायद पेट भर कुछ रोटी या भात खाने को रखा होगा ।" .....

आ बचवा मेरा सोनवा दौड़िया रहा था कहते हुए माँ ने

1- शिव प्रसाद सिंह - ... वैतरणी" पृ० सं० 375 ।

2- शिव प्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी-" पृ०सं० 595 ।

गंजी से भरी हुई थाली उसके सामने रख दी केवल बिना हाथ मुँह धोये ही उस पर झपट पड़ा लेकिन थोड़ी सी खाने के बाद में उसे लगा कि गंजी की थाल उठाकर फेंक दे। गंजी गंजी गंजी रोज गंजी इतनी दूर से बोझ ढोकर लाये और गंजी। न चावल न रोटी न खिचड़ी बस गंजी। उसे रोना आ गया।"[1]

'बलचनमा' आँचलिक उपन्यास में भोज्य पदार्थ के विषय में उपन्यासकार नागार्जुन ने अपने आंचलिक उपन्यास बलचनमा में एक स्थल पर लिखा है -

"जलतीम {मछली} से तरकारी का काम चलता है। मुसहर भी सेर आध सेर छोटी मछलियाँ डबरे से छाँक लाते हैं। आग में भूनकर बिना नमक भी मछरी भून कर खाओं तो बुरी नहीं लगेगी। गरीब गुरबा लोग मंहगी अकाल के जमाने में महीनों मछरी पर गुजार देते हैं"।[2]

नागार्जुन ने अपने दूसरे आँचलिक उपन्यास वरुण के बेटे में गरीब मछुआरों के भोजन का वर्णन करते हुए लिखा है -

" पाव डेढ़ एक मुंबिया चावल चंगेरी में लाकर माधुरी कीअम्मा ने सामने रख दिया लो उठो भी।

नई फसल के कच्चे चावल थे। खुरखुन ने उन्हे अंगोछे में बाँधकर पोटली सी बना ली। अंगोछा गरोखर के पानी का भीगा अब भी सूखा नहीं था। तो भी चावलों की पोटली को उसमे पानी भरे डोल के अन्दर डुबो

1- रामदरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 150।
2- नागार्जुन -"बलचनमा" पृ0 सं0 875 ।

लिया । कच्चे चावलों से दाँतो मसूड़ों की बाजिश नाहक कौन करवाए । क्या है घडी आधी घड़ी का जलयोग पाकर नरम तो ये पड़ ही जाऐंगे ।"[1]

उपन्यासकार रांगेयराघव ने " कब तक पुकारूँ " आँचलिक उपन्यास में गरीबी का वास्तविक स्वरूप चित्रित करने वाली समस्याओं में प्रमुख समस्या भोज्य पदार्थ का वर्णन करते हुए लिखा है -

"तू भूखों सोएगी ? बूढ़ी ने पूछा: जा मटके में चने धरे हैं। चबा ले मैं तो दाँत बिना खा न सकी । जब रहा न गया तो थोड़े कूट कर पानी के साथ फांक लिये थे । आधार बन ही गया ।

'बाबा बटेसर नाथ' आँचलिक उपन्यास में भोजन सम्बन्धी समस्या को उठाया है । नागार्जुन ने एक स्थल पर इस उपन्यास में लिखा है -

"बस्ती भर में तीन ही परिवार ऐसे थे जिन्हे एक जून अन्त तक चावल नसीब होता रहा । एक था तर्क पंचानन का परिवार दूसरा परिवार था राजबहादुर के पुरोहित का । तीसरा था राजपूत काश्तकार का घर । बाकी दस एक घर ऐसे थे जिनमें सिर्फ बच्चों को भात मिलता था, सो भी मचलने पर - सयाने जुन्हारी, मकई, अरहर और चनों पर निर्भर थे । महीने में एक आध बार पतली खिचड़ी मिल जाती । बीस पच्चीस परिवार जमीन बेच बेचकर शकरकंद से पेट की आग बुझाते थे .... मध्यवर्ग का यही सिलसिला था जो निचले तबके के भी निचले स्तर पर थे उन्हे शकरकन्द भी एक ही

1- नागार्जुन -" बलचनमा के बेटे" पृ0 सं0 12 ।

जुन मिल पाती थी" ।[1]

भोजन के साथ-साथ गाँव के लोगों के वस्त्रों के निम्नस्थिति एवं नग्नता के उदाहरण भी आँचलिक उपन्यासों में द्रष्टव्य है।

पानी के प्राचीर आँचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता की वस्त्रों की स्थिति जो कि उनकी आर्थिक विपन्नता की परिचायक है उसका उल्लेख करते हुए रामदरश मिश्र ने लिखा है "पत्नी है यह । एक चिरकुट लपेटे हुए अनेक जगहों से शरीर दिखाई पड़ रहा है । धीमड़ के पास भी क्या है । कपड़े का एक ही टुकड़ा उसी को इधर से उधर अदल बदल कर नहा धो लेते है । कुरते की आवश्यकता पड़ने पर उसी को जरा पेट पर डाल लेते हैं"।[2]

एक अन्य स्थल पर इसी उपन्यास में उपन्यासकार ने लिखा है -

"केशव लीला सुमेरा और माँ एक कमरे में जमीन पर फटी पुरानी गुदड़ी बिछा कर सोये हुए थे । गुदड़ी के नीचे पुवाल की हल्की पर्त थी जिसे सुमेरा कहीं बांगर पर से माँग कर ले आया था। ओढ़ने के लिए भी दो एक फटी फटी गुदड़ियां थी जिसके नीचे सारा परिवार पड़ा हुआ था। अधिक जाड़ा लगने पर लीला माँ की गोद में और केशव सुमेरा की गोद में जा चिपटता ।"[3]

मैला आँचल उपन्यास में गरीब जनता की फटेहाली व बेबसी का वर्णन करते हुए [illegible]कार ने लिखा है ।

1- नागार्जुन- "बाबा बटेसरनाथ" पृ0सं0 50,51 ।

2- रामदरश मिश्र- "पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 216 ।

3- " " " " पृ0 सं0 146 ।

.... कफ से जकड़े हुए दोनो फेफड़े, ओढ़ने को बिस्तर नहीं सोने को चटाई नहीं, पुआल भी नहीं। भीगी हुई धरती पर लेटा न्यूमोनिया का रोगी मरता नहीं जी जाता है। ..... कैसे"।[1]

'वरुण के बेटे' आँचलिक उपन्यास में नागार्जुन ने गरीब जनता की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए लिखा है –

"खजूर के पत्तों से बिनी मामूली सी चटाइयाँ – पीतल का पिचका लोटा, अलमुनियम की लुंज थाली। बाकी बर्तन बासन मिट्टी के .... बुरकुन का संसार वही था।"[2]

एक अन्य स्थल पर नागार्जुन ने इस उपन्यास में लिखा है।

"जाल बुनते हुए या धागा बाँटते हुए अर्धनग्न बूढ़े हुक्का गुड़गुड़ाती या टिकिया सुलगाती हुई बुढ़ियाँ। कतारों में केकड़े या कछुए खोजते हुए नंग धड़ंग लड़के। जलते चुल्हों पर काली हाँडियाँ, करीब बैठकर हल्दी लाल मिर्च पीसती हुई सयानी लड़कियाँ फटी मैली धोती वाली यह साधारण झाँकी थी उस दुनिया की"।[3]

"सागर लहरें और मनुष्य" आँचलिक उपन्यास में गरीबी का दृश्य दर्शाते हुए उपन्यासकार ने लिखा है –

1– फणीश्वर नाथ रेणु" मैलाआँचल पृ० सं० 226।
2– नागार्जुन "वरुण के बेटे" पृ० सं० 86।
3– " " पृ० सं० 19।

झोपड़ी में टूटे मिट्टी के बर्तन इधर उधर बिखर रहे थे। दो फटे चीथड़ों पर वह पड़ी थी।"[1]

शिव प्रसाद सिंह ने अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में गरीब किसानों की निर्धनता का वर्णन करते हुए लिखा है -

" किसी को घर है तो बैल नहीं किसी के तन पर पूरा वस्तर नहीं किसी को भर पेट खाने को अन्न नहीं .... अब देखो न धरमू सिंह की हालत जाने कब से खटिया पकड़े है बेचारे। जवान बेटी सर परहै घर में दोनों जून चूल्हा जलने की भी नौबत नहीं है।"[2]

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में गाँव के मजदूर श्रमिक लोगों की गरीबी का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"कपड़े के बिना सारे गाँव के लोग अर्धनग्न हैं। मर्दों ने पैंट पहनना शुरू कर दिया है और औरतें आँगन में काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेट कर काम चला लेती है। बारह वर्ष तक के बच्चे तो नंगे ही रहते हैं"।[3]

भोजन, वस्त्र कि निम्न-स्थिति के साथ-साथ ग्रामीण जनता की निर्धनता के परिचायक आवास निवास के स्थान घरों की स्थिति भी निम्न स्तर की है।

नागार्जुन ने "बल्चा के बेटे आँचलिक उपन्यास में आवास की समस्या का वर्णन करते हुए लिखा है -

---

1- उदय शंकर भट्ट -" सागर लहरें और मनुष्य" पृ०सं० 60।
2- शिवप्रसाद सिंह -"अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 158।
3- फणीश्वर नाथरेणु -"मैला आँचल "पृ०सं० 149।

"खपरैल और छत वाले घर दो तीन परिवारों के ही थे। बाकी छान फूँस की कुटीरें थीं। आग लगती तो इस ओर से उस छोर तक समूचा गाँव स्वाहा, बाढ़ आती तो घरों में पानी घुस जाता, भीतें धँस जातीं और छप्पर बह जाते। हैजा और मलेरिया का तांडव आबादी को मसान बना कर छोड़ जाता"।[1] घरों की स्थिति के सम्बन्ध में डॉ० रामदरश मिश्र ने जलटूटता " उपन्यास में लिखा है।

" अधिकांश घरों में लोग रात भर चारपाई यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ कर रहे थे। दीवारें टूटी हुई थीं, जगह जगह थूनियाँ लगाकर गिरती कड़ियों और धन्नियों को रोका गया था। छतें आठ आठ आँसू रो रही थीं। कहीं कहीं घर के गिरे हुए अंशों को टाटी से घेरकर आड़ कर दिया गया था। इन्हीं अभागे घरों में गाँव के अनेक अभागे परिवार निशा जागरण कर रहे थे। बंसी तिवारी का घर इन्हीं घरों में से एक था। बंसी का छोटा भाई और महावीर दूबे पड़ोसी के दरवाजे पर सो रहे थे। किन्तु बंसी की बीबी और दो बच्चियाँ घर में सोई थीं। सभी जगह पानी चूं रहा था। झपटी के कारण टाटी को चीर-चीर कर पानी की बौछारें अन्दर आ रहीं थीं।x ..... रहा सहा अनाज कहीं भीग कर बरबाद न हो जाय, इसीलिए हांडी-तौले में रखे कुछ पिसान और दाल को कभी छींटे से तोपती, कभी यहाँ सरकाती कभी वहाँ सरकाती। ...कितनी बार कहीं कि घर छवा डालो किन्तु कोई सुनता ही नहीं। बरसात की यह बैरिन रात कटे नहीं कटती"।[2]

1- नागार्जुन- बलचनमा के बेटे" पृ०सं० 94।
2- रामदरश मिश्र - जलटूटता हुआ"पृ०सं० 37 ।

"अलग-अलग वैतरणी" उपन्यास में गरीबी के कारण अस्वच्छता एवं उससे उत्पन्न मच्छर मक्खी एवं उनसे फैली बीमारी का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"यह एक जीता जागता नरक है जिसमें वही आता है जिसके पुण्य समाप्त हो जाते हैं। चारो ओर कीचड़, बदबूदार नाबदान, गूमूत बीमारियाँ, कुलबुलाते कीड़े, मच्छर, जहरीली मक्खियाँ इसके बीच भुखमरी, किचरीली आँखों और बीमारी से फूले पेट वाले छोकरे"।[1]
एक अन्य स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है -

"गाँव की अस्वच्छता गाँव में हैजा फैलाने में सक्षम है। "उसके तीन चार रोज के बाद ही तो हैजा फैला और देखते ही देखते पुरफेकन उसके दो लड़के और उसकी बूढ़ी माँ एक एक दो दिन में ही साफ हो गये। धनेसरी छाती पीटकर ही रह गयी। उसके आगे पीछे कोई न बचा "..

डा० देवनाथ विपिन बाबू से कहते है - एक दो रोग हो तो नाम गिनाऊँ। बहराल फिफड़े पर तपेदिक है। सारा फेफड़ा खराब हो गया है"।[2]

स्वतंत्रोत्तर काल में भी गाँव के लोगों के सामने ऋण की समस्या पूर्ववत बनी हुई है।

उपन्यासकार शिव प्रसाद सिंह ने "अलग-अलग वैतरणी" में लिखा है -

1- डा० शिव प्रसाद सिंह-"अलग अलग वैतरणी" पृ०सं० 663-664

2- डा० शिव प्रसाद सिंह-" अलग अलग वैतरणी" पृ०सं० 256।

"बाबू ने मालिक काका से रुपया लिया था। आजी के किरिया करम में। दो सौ या तीन सौ, मैं ठीक नहीं जानती। बाबू कहते हैं कि वे अपनी तनख्वाह में से काटते रहे पर वो मुआ नक्शादिक मुंशी कहता है कि नहीं एक पैसा भी नहीं दिया है अब तक। सो कुल चार सौ रुपये का मुकदमा चलाया। उसी की कुर्की है विपन। तुम जानते ही हो चार पाँच साल से पैदा एकदम नहीं हो रही है। खाने तक केलिए उधार लेना पड़ता है।"[1]

"अभी चैती फसल कटेमुश्किल से एक महीना ही बीता है पर शायद ही दो चार जन ऐसे हों जिनके चेहरे पर घर मे अनाज होने की खुशी नजर पड़ती हो बहुत सा अनाज तो खलिहान से ही पिछले कर्ज की पटाई में और महाजन की उधारी चुकाने में खतम हो गया था। ऐसी सूरत में अधिकतर घरों में जौ-चने के सत्तू ने दोपहर के भोजन का स्थान ले लिया था। किसी तरह इस घोल को आम की चटनी के साथ पेट में उतार कर लोग इस उसके ओसरे में जा जमते "।[2]

समसामयिक ग्रामीण जन समाज की ऋण से उत्पन्न समस्या के सम्बन्ध में ओंकार नाथ श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य। परिवर्तन के सौ वर्ष' में लिखा है -

प्रस्तुत प्रसंग में गाँवों की कर्जदारी की समस्या हमारे लिए सबसे अधिक महत्व की है क्योंकि इसके सामुदायिक अंतर्सम्बन्धों पर सबसे अधिक

1- शिवप्रसाद सिंह - "अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 104।

2- शिव प्रसाद सिंह -"अलग-अलग वैतरणी"पृ०सं० 133।

असर डाला है। आधुनिक आर्थिक प्रगति में ऋण का बड़ा महत्व है क्योंकि ऋण उत्पादन के लिए लिया जाय इस तरह सामुदायिक धन का बेहतर उपयोग होता है और उत्पादन बढ़ता है। मगर भीषण गरीबी ने जनता को उपभोग केलिए ऋण लेने पर बाध्य कर दिया, इसके कारण उत्पादन के क्षेत्रों मे धन के प्रवाह की संभावनाएं बन्द हो गयी और समाज में सूद खोरी की अनार्जित आय का और दौरा हो गया है।[1]

इस प्रकार हम कह सकते है कि आँचलिक उपन्यास साहित्य में वर्णित ग्रामीण जन समाज की समस्याएं तीव्रता से प्रभावित करती हुई चित्रित हुई है।नये आर्थिक कार्यक्रम के प्रति ग्रामीण जन समाज की उदासीनता में भी समस्या का केन्द्र आर्थिक ही है। ग्रामीण किसान मजदूर कृषि के लिए नये उपकरणों को खरीद नहीं पाते है, क्योंकि उनके पास जीवन यापन करने वाली वस्तुओं तक का ही अभाव रहता तो वे नये उपकरणों के लिए आवश्यक धन कहाँ से लायें।

लोक संस्कृति के पूरक तत्वो में ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा उससे उत्पन्न समस्याओं का वर्णन आवश्यक है। इसके अभाव में लोक संस्कृति का चित्रण अधूरा सा प्रतीत होता है।

1- ओंकार नाथ श्रीवास्तव -" हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष " पृ०सं० 115 ।

राजनीतिक तत्व -

भारतीय ग्रामीण समाज को लेकर लिखे गये आँचलिक उपन्यासों में राष्ट्रीय जनजीवन से सम्बद्ध राजनीतिक चेतना का आँचलिक उपन्यासकारों ने विस्तार के साथ वर्णन किया है । नये संविधान ने जहाँ एक ओर ग्रामीण जन समाज को उनके अधिकारों से परिचित कराया वहीं दूसरी ओर सरकार ने राजनैतिक समानता की बात छेड़ी । ग्रामीण विकास के लिए छोटी बड़ी योजनाएं भी बनाई जिससे कि स्वतंत्रा मात्र वैचारिक या मात्र राजनीति न हो क्योंकि आर्थिक स्वतंत्रता के बगैर यह अस्तित्व हीन है । ग्रामीण जन जीवन के चारों ओर नियोजित एवं संकल्पित योजनाओं ने स्वतंत्रता संघर्ष में कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने वाले इन ग्रामीण जन समुदाय को उनकी आशा आकांक्षा एवं उम्मीद के पूरा न होने वाले तत्वों ने उन्हें यह सोचने को मजबूर कर दिया कि क्या इसीलिए उन्होंने ये सब कष्ट उठाये थे । राजनीतिक स्तर पर उनकी क्या आशा आकांक्षाएं थी, कैसे पूरी हुई तथा इस राजनीतिक स्तर पर क्या विसंगतियाँ रह गई हैं । इन सभी विषयों का आँचलिक उपन्यासों में विस्तार से वर्णन मिलता है ।

भारतीय ग्रामीण जन समाज को सबसे अधिक प्रभावित एवं परिचालित करने वाली उनकी मानसिकता में उथल पुथल करने वाली घटना हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं उससे सम्बन्धित विकास कार्य है । स्वतन्त्रता प्राप्ति और उससे सम्बन्धित [illegible] ने हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों को विशाल पृष्ठभूमि दी । हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में वर्णित ग्रामीण जन समाज के राजनैतिक दृष्टि

को नवीन दिशा प्रदान करने वाले भारत सरकार के राजनीतिक प्रयास, ग्राम पंचायत, सहकारी बैंक, ग्रामीण जन समाज के पुनरुद्धार सम्बन्धी सरकारी सुधार नियोजनआदि सरकारी कर्मचारियों की परम्परागत एवं परिवर्तित भूमिका, भारत सरकार की न्याय व्यवस्था, ग्रामीण समाज की राजनैतिक भावना की अभिव्यक्ति, विभिन्न राजनीतिक दल इत्यादि विषयों को प्रस्तुत अध्याय में वर्णित किया गया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाजवादी सिद्धान्तों के आधार पर ग्रामीण सामाजिक संरचना का पुनर्निर्माण करनेके लिए सरकार ने भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में फैले हुए अनेक प्रकार की जाति, लिंग धर्म सम्बन्धी भेदभाव को समाप्त किया। कानून की दृष्टि में अब प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो ऊँच हो या नीच हो सब समान हैं। राजनीतिक दृष्टि से समानता स्थापित करने के अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय चुनाव व्यवस्था में शताब्दियों से पिछड़े हुए हरिजनों को विशेष सुविधाएं प्रदान की। विधान निर्माताओं को चुनने का वयस्क मताधिकार वास्तव में ग्रामीण जन समाज में एक ऐतिहासिक क्रान्ति का सूचक है। आज हरिजन सभा करते हैं एवं नेतागण उन्हें प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित करते हैं। आंच अध्यायों में ग्रामीण जनता में अवतरित इस परिवर्तन को पूर्ण रूप से विस्तार पूर्वक व्याख्या प्रदान की गयी है।

स्वतंत्रोत्तर काल में ग्रामीण व्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिए सरकार ने पंचायती राज्य की पुनः स्थापना की। पंचायती राज्य का लक्ष्य

सत्ता का विकेन्द्रीयकरण है जिससे गाँव का प्रत्येक व्यक्ति सत्ता का साझेदार बन सके एवं उसकी रीति नीति में उसकी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन में जागरूकता के साथ भाग ले सके । ग्राम जीवन की आगामी विकास योजनाओं ने ग्रामीण वातावरण में नयी हलचलों को जन्म दिया है। गाँव की सामुदायिक विकास योजनाओं में संलग्न विभिन्न कार्यकर्तागण ग्रामीण जीवन में प्रजातंत्र की सार्थकता का बोध कराते हैं ।

स्वतंत्रता से पूर्व गाँवो में जातिगत पंचायतें होती थी और प्रत्येक जाति का व्यक्ति लड़ाई झगड़ा होने पर अपनी ही जाति की पंचायत में जाकर गुहार करता था।आँचलिक उपन्यासकारों ने इन जातिगत पंचायतों का वर्णन अपने उपन्यास साहित्य में किया है "परती-परिकथा" आँचलिक उपन्यास में 'रेणु'जी ने जातिगत पंचायत का वर्णन करते हुए लिखा है -

"टोले के लोग महीचन के आगन में आकरजमा होने लगे । कायदा पंचायत बैठ गई तुरन्त । ... हाँ हाँ मारपीट हल्ला गुल्ला नहीं । जब मलारी अपने माँ बाप के बस कब्जा में नहीं तो जात की पंचायत को अब सोचना चाहिये उसके बारे में "।[1]

"आधा गाँव' आँचलिक उपन्यास में राही मासूम रजा ने हज्जामों की पंचायत के विषय में लिखा है -

"रहीम हज्जाम के आने तक कुन्नियाँ टहलते रहे चुनांचे मोहर्रम के बाद ही हज्जामों की पंचायत बैठ गयी ।

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" - परती परिकथा पृ0 सं0 206 ।

" रहीम खड़ा हुआ - हम पंचन से खाली एक ठे बात पूछे खड़े भये हैं कि आखिर हमन्नों की कौनों इज्जत बाय कि ना बाय .... " उसने सारी राम कथा सुना डाली पंच लोग गरदन न होड़ाय सुनते रहे । मसला जरा पेचीदा था । क्योंकि पंच लोगों को यह बात मालूम था कि हमन्नो को कौनों इज्जत न बाए । " इज्जत तो सिर्फ जमींदार की होती है और वह माई बाप होता है ।"[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्राम पंचायतें कहने को तो ग्रामीण जनता को न्याय दिलाने के लिए थी किन्तु वास्तविकता यह है कि ग्राम पंचायतों ने कभी जमींदारों के खिलाफ कोई भी फैसला नहीं दिया ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त लोकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित होने पर एवं वयस्क मताधिकार के आधार पर ग्राम पंचायतों में यद्यपि काफी बदलाव आया है फिर भी ग्राम पंचायतों को मिलने वाली सरकारी सुविधाओं का लाभ उन्हीं लोगों को मिला जो आजादी मिलने से पूर्व किसी न किसी रूप में प्रशासन से जुड़े हुए थे या गाँव की जनता का नेतृत्व करते हुए उनके अगुआ बने हुए थे । आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास जगत में इस विषय को व्यापक स्तर पर उठाया है ।

ग्राम पंचायत के चुनाव के उम्मीदवार के रूप में खड़ा हुआ ततीजा गाँव के लोगों में राजनीतिक चेतना जगाता है उपन्यासकार रामदरश मिश्र ने एक स्थान पर लिखा है -

---

1- राही मासूम रज़ा -"आधा गाँव" पृ0 सं0 139, 140 ।

आप सभी लोग जानते हैं कि पंचायत राज्य कायम होने वाला है । यह पंचायत राज्य पिछली पंचायतों से भिन्न होगा । यह सरकारी राज्य होगा । इसमें पंचों को सरकार की ओर से मजिस्ट्रेट के अधिकार दिये जायेंगे । इसीलिए जो अब तक ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू जमींदार मुखिया और दलाल रहे हैं वे इस बहती गंगा में हाथ धोना चाहते है । वे आज देश भक्त हो गये है । वे पंच सरपंच बनकर अपना उल्लू सीधा करने और लोगों से बदला लेने की सोच रहे हैं । पंच बनने के लिए तरह तरह की चालें चलते है । कहीं किसी का खेत कटवा रहे हैं कहीं किसी को व्यभिचार में फंसा रहे हैं । कहीं और तरह से बदनाम कर रहे हैं ।"[1]

"माटी की महक" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने इन पंचायत के लोगों के विषय में ग्रामीण जनता के मुख से कहलाते हुए एक स्थल पर लिखा है –

गाँव के कुछ लोग कहते हैं नयी बोतल में पुरानी शराब जैसी यह पंचायत है । वे ही भ्रष्ट लोग पंचायत के सब कुछ बन गये हैं जिन्होंने गांव को तबाह कर रखा है ।"[2]

"अलग-अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थापित ग्राम पंचायत का वर्णन करते हुए शिव प्रसाद सिंह ने लिखा है –

1– रामदरश मिश्र – "जल टूटता हुआ" पृ०सं० 300–301 ।
2– सच्चिदानन्द धूमकेतु –" माटी की महक" पृ० सं० 324 ।

"करैता गाँव की पंचायतें अब मलिकाने के चबूतरे पर नहीं होती । अब इन पंचायतों में ठाकुर जैपाल सिंह मुखिया के आसन पर नहीं बैठते । अब गाँव के लोग राय और फैसले के लिए उनका मुँह नहीं ताकते । पर यदि गाँव का कोई भी आदमी पिछले सात महीनों के भीतर करैता गाँव में हुई वारदातों और उनके फैसलों का लेखा जोखा करें, तो उसे यह जानकर बड़ी हैरत होगी कि एक भी फैसला ठाकुर के मन के खिलाफ नहीं हुआ । जाहिरा तौर पर सुखदेव ही पंच था । पर फैसले ठाकुर की मर्जी से होते थे । गाँव वालों को एक फायदा जरूर हुआ कि मामूली मामूली जुर्म के लिए पहले से दूनी सजायें मिलने लगीं क्योंकि करैता में अब एक नहीं दो पंचो का राज्य था ।"[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने हरिजनों को विशेष सुविधाएं प्रदान की हैं । आज हरिजन सभाएं कर सकते हैं अपने हक के लिए जमींदारों के विरोध में मुकदमें कर सकते हैं। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने हरिजनों के जीवन में आये इस राजनीतिक जागृति का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जन्म के आधार पर यदि किसी वर्ग के व्यक्तियों का उत्थान हुआ है तो वह हरिजन वर्ग का ही हुआ है ।

फणीश्वर नाथ "रेणु" ने अपने आंचलिक उपन्यास "परती परिकथा" में लिखा है -

---

1- शिव प्रसाद सिंह -" अलग अलग वैतरणी" पृ0 सं0 82 ।

"लूटनातंत्र का अर्थ जनतंत्र कहो प्रजातंत्र कहो लेकिन असल में है यह लूटनातंत्र" ।[1]

भारत सरकार ने सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे दलित वर्ग के शोषण को समाप्त करने के लिए अनेक प्रकार की वैधानिक सुविधाएं प्रदान की । सरकार के द्वारा किये गये इस प्रयास के फलस्वरूप आज हरिजनों में नयी चेतना जागृत हुई है । उपन्यासकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने अपने आँचलिक उपन्यास "माटी की महक" में इस दलित वर्ग में आयी नवीन चेतना को वाणी प्रदान करते हुए लिखा है -

"भारत को गणतंत्र राज्य घोषित किया गया । हमारा नया संविधान बना । संविधान के अनुसार हरिजनों को समता का अधिकार दिया गया। चौपाल में उनकी चर्चा होने लगी । हरिजनों के टोले में लूटन संविधान द्वारा दिये गये अधिकारों की चर्चा करने लगा और जहाँ तक समझ पाया था लोगों को समझाने लगा"।[2]

आधा गाँव आँचलिक उपन्यास में हरिजन" सुखराम" द्वारा जमींदार को नोटिस दिये जाने का वर्णनमिलता है । राही मासूम रजा के शब्दों में -

"यही सुखराम जिसे कुर्सी पर ढंग से बैठना नहीं आता और जो सदैव गाँव के जमींदारों के लिए उनकी जूती के समान रहा है आज जमींदारों

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" - "परती परिकथा" पृ०सं० 146 ।

2- सच्चिदानंद धूमकेतु -" माटी की महक" पृ० सं० 190 ।

पर मुकदमा चलाने की नोटिस दे रहा है ।"[1]

"अलग-अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यास में हरिजनों में नवीन जागृत चेतना की अभिव्यक्ति उनके कथन द्वारा स्पष्ट होती है -

"इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू । चाहें चमारकी हो चाहें ठाकुर की । हम अपना काम करते हैं, मंजूरी लेते है । हमें गरज है कि करते है, आपको गरज है कि कराते हो । इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये ।[2]

भारत सरकार द्वारा वयस्क मताधिकार ने भारतीय ग्रामीण जनता के सामाजिक रूप से पिछड़े हुए दलित वर्ग को सबसे अधिक लाभ पहुँचाया है ।

"परती परिकथा" आँचलिक उपन्यास में रेणु जी ने एक स्थल पर इन हरिजनों की राजनीतिक जागरूकता का वर्णन करते हुए लिखा है -

"ऐ ? जयमंगल तांती भी लेक्चर देगा ? क्यों नहीं देगा कालेज में पढ़ता है। किसपर सरकार के पैसे से पढ़ता है । कहाँ लिखा है किस कानून की किताब में लिखा हुआ है कि भाषण केवल ऊंची जाति वाला ही देगा ? तांती टोलीवालों को कम सताया है इस्टेट वालों ने ? .... वाह जय मंगल तांती लाउडस्पीकर के सामने कितना शोभता है, देखो-देखो" ।[3]

1- राही मासूम रजा- "आधा गाँव" पृ०सं० 330 ।
2- शिव प्रसाद सिंह -" अलग अलग वैतरणी" पृ०सं० 257 ।
3- फणीश्वर नाथ रेणु" -"परती परिकथा" पृ० सं० 95, 96 ।

इसी उपन्यास में एक अन्य स्थल पर 'रेणु'जी ने लिखा है -

" और पुनः चुनाव में परसुराम हरिजन विधायक चुना जाता है तथा सम्पूर्ण क्षेत्र की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है "।[1]

इस प्रकार दलित वर्ग में आये हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनों के अनेकों उदाहरण विभिन्न आँचलिक उपन्यासों मे दृष्टिगत होते हैं ।

"आधा गाँव " आँचलिक उपन्यास में एक स्थल पर उपन्यासकार ने लिखा है -

"अलिया ने एक अचम्भे की बात बताई कि सुखरमवा चमार का लड़का परसरमवा खद्दर की टोपी पहिने ऐसी ऐसी तकरीर कर रहा था कि मौलवी इब्नेहसन का करि हैं । खुदा गारत करे ई मिट्टी मिले कांग्रेसियों को जिन्होंने चमारों और भंगियों का रुतबा बढ़ा दिया है "।[2]

भारत के ग्रामीण जन समाज की दयनीय आर्थिक स्थिति में सुधार करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया । जिससे ग्रामीण जनता सरकार से ऋण इत्यादि लेकर अपने व्यवसायिक कार्य कर सके । मोगरा आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने सरकार द्वारा बनायी पंचवर्षीय योजना से लाभ उठाने वाले श्रमिक का वर्णन करते हुए लिखा है -

"भाइयों और साहबों, राम राम । मैंने इतनी अच्छी खेती कैसे की यह मैं आप लोगों को बता सकता हूँ, पर यह आप लोगों की समझ में

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" -"परती परिकथा" पृ0 सं0 65 ।

2- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव " पृ0 सं0 353 ।

आएगा कि नहीं यह नहीं कह सकता । मैं रइपुरा ग्राम में जुन्ना गोंटिया का बेटा हूँ । मेरे दिन काफी खराब हो गये थे । ऐसे समय में मेरी बहिन ने मुझे खेती की याद दिलाई पर मेरा हाथ खाली था । अगर सरकार मेरे जैसे छोटे किसानों की मदद नहीं करती तो मेरे लिए कुछ भी नहीं होता । आज हमारी सरकार छोटे किसानों की बहुत मदद कर रही है । .... मुझे बहसाखू भइया से इसके बारे में मालूम हुआ" ।[1]

इसी प्रकार अन्य ग्रामीण मजदूर लोग सरकारी सहायता लेकर अपने छोटे मोटे उद्योग धन्धे करके अपना आर्थिक विकास करते हुए अनेक आँचलिक उपन्यासों में दृष्टिगत होते हैं ।

इन पंचवर्षीय योजनाओं से ग्रामीण जनता का चतुर्मुखी विकास हुआ है । सरकार ने गाँवों में अस्पताल, स्कूल, कालेज, बाँध योजनाएं सड़क निर्माण सिंचाई कार्य आदि के माध्यम से ग्रामीण जनता को हर प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने का कार्य किया है ।

"परती परिकथा" आँचलिक उपन्यास में कोसी निर्माण का वर्णन मिलता है। सरकार कोसी योजना कार्यान्वित करती है तथा जनता के करोड़ों रुपये की बचत एवं करोड़ों की आय की स्थायी व्यवस्था हो जाती है 'रेणु' जी के शब्दों में -

"पिछले पाँच सौ वर्षों की बेकार पड़ी परती पर खेती के लायक जमीन पायी गई । ... कोसी योजना की सबसे बड़ी पेचीदा समस्या हल

1- शिव शंकर शुक्ल -" बोमरा, पृ०सं० 95 ।

हुई । दुलारी दाय को कोसी की मुख्य धारा से संयुक्त करके सिर्फ करोड़ों रूपये की बचत ही नहीं, करोड़ो की आमदनी भी होगी " ।[1]

.. दुलारीदाय में कुल उपजाऊ जमीन ढाई हजार एकड़ है जबकि परती पर सात आठ हजार एकड़ जमीन अगले वर्षों में तैयार हो जायगी । ... दुलारी दाय के पाँच कुंडों में बारहों महीने पानी भरा रहेगा। गीतबास के पास एक छोटा बांध तैयार होगा । .. परती की सिंचाई ...गंगा के किनारे तक दुलारीदाय केकछार पर फैली उसर धरती खेती के लायक हो जाएगी । . दुलारी दाय के किसानों को परती पर जमीन दी जायगी इसके साथ बेजमीन लोगों को भी .... । फसल की कीमत के साथ नगद क्षतिपूर्ति । .... तीन साल तक सरकारी सहायता मिलेगी"।[2]

"आधा गाँव- आँचलिक उपन्यास में सरकार द्वारा गंगोली ग्राम में सड़क निर्माण किये जाने से वहाँ की ग्रामीण जनता बहुत खुश होती है।उपन्यासकार राही मासूम रजा ने लिखा है -

" जमींदारी तो जरूर गयी बाकी गाँव एकदमे से बदल गया है । मार सब गलियन में खड़ंजा लग गया गाजीपुर से हियातक पक्की सड़क बन गयी है, अब तो बरसातों में मोहर्रम पड़े तो कोई के आये में जहमत न हो सकिहे "।[3]

1- फणीश्वर नाथ रेणु - परती परिकथा पृ0 सं0 472-73 ।
2- फणीश्वर नाथ रेणु -" परती परिकथा" पृ0 सं0 480, 81
3- राही मासूम रजा -"आधा गाँव " पृ0 सं0 360 ।

इसी उपन्यास में परशुराम एम. एल. ए. हम्माद मियाँ से गाँव में सड़क और स्कूल खुलने के विषय में बताता है। उपन्यासकार के शब्दों में - इत्ती तकावी यहाँ बाँटी गयी है। दो तरफ से पुख्ता सड़के बन गयी है कि अब आधे घंटे में आप लोग शहर पहुँच जाते है, गाँव में हरगली पक्की हो गयी है । दो स्कूल चल रहे है ..... और कोई सरकार इससे ज्यादा क्या कर सकती है "।[1]

"वरूणा के बेटे "आँचलिक उपन्यास में सरकार द्वारा गाँव के स्कूलों को मान्यता दिये जाने एवं गाँव के बच्चों की शिक्षा का वर्णन करते हुए उपन्यासकार नागार्जुन ने लिखा है -

" बच्चों के जरिये प्राइमरी शिक्षा भी परिवारों में प्रवेश पा रही थी। दो तीन लड़के मिडिल पास कर चुके थे । भोला का छोटा लड़का दसवी कक्षा में इम्तिहान देकर इस वर्ष ग्यारहवी अर्थात् मैट्रिक फाइनल में आने वाला था । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने गोढ़ियारी लोअर प्राइमरी स्कूल को पिछले साल मान्यता दी थी " ।[2]

गाँव में पुस्तकालय इत्यादि की भी सुविधाएं ग्रामीण जनता के लिए सुलभ है 'परती परिकथा' आँचलिक उपन्यास में "रेणु" जीने लिखा है -

"नवीन परानपुर पुस्तकालय में पठनागार है जिसे कभी कभी गप्प घर बना दिया जाता है । ... छुट्टियों में स्कूल कालेज के विद्यार्थी

1- राही मासूम रजा - "आधा गाँव "पृ0सं0 354 ।

2- नागार्जुन -"वरूण के बेटे" पृ0सं0 18 ।

गाँव आते हैं । पठनागार में बैठकर नाटक ड्रामा का रिहर्सल करते हैं "।[1]

परानपुर गाँव के स्कूल में लड़कियाँ गर्ल्सगाइड की ड्यूटी के माध्यम से अपनी राजनीति के प्रति नवजागृत चेतना का परिचय देती हैं। उपन्यासकार रेणु जी के शब्दों में –

गाँव मे अट्ठारह पार्टी है और रोज अठारह किसिम का प्रस्ताव पास होता है । हमारे स्कूल में भी प्रस्ताव पास हुआ है। आज हेडमिस्ट्रेस ने नोटिस दिया है गर्लगाइड की लड़कियाँ रात में हवेली में तैनात रहेंगी – मलारी ने आँगन से निकलने के पहले कहा– रात में गाँव के कुछ बाबुओं ने हर टोले में कुछ हरकत की है । आज गर्ल गाइड की ड्यूटी रहेगी । न झगड़ा न हल्ला गुल्ला और न रास्ते में भूत का डर । बाल गोबिन अवाक होकर देखता रहा "।[2]

एक ओर जहाँ हम ग्रामीण जन जीवन में स्कूल कालेज की शिक्षा के माध्यम से सुधार एवं प्रगतिशील विचार धारा पाते हैं वहीं दूसरी ओर यह भी देखने में आता है कि गाँव के ये स्कूल कालेज राजनीतिक गुटबंदी के अड्डे बने हुए हैं । उपन्यासकार श्री लाल शुक्ल ने अपने आँचलिक उपन्यास 'रागदरबारी' में इस विषय में लिखा है –

"क्योंकि इस कालेज की स्थापना राष्ट्र के हित में हुई थी इस लिये उसमें और कुछ हो या नहीं गुटबंदी काफी थी । अब बड़ी मेहनत के बाद कालेज के नौकरों में दो गुट बन पाए थे, पर उसमें अभी बहुत काम

1– फणीश्वर नाथ"रेणु" –" परतीपरिकथा" पृ०सं० 87 ।
2– फणीश्वर नाथ"रेणु" –" परती–परिकथा" पृ० सं0 209 ।

होना था । प्रिंसिपल साहब तो वैद्य जी पर पूरी तरह आश्रित थे, पर खन्ना मास्टर अभी उसी तरह रामधीन के गुट पर आश्रित नहीं हो पाए थे । उन्हें खींचना बाकी था । लड़कों में भी अभी दोनों गुटों की हमदर्दी के आधार पर अलग-अलग गुट नहीं बने थे । उनमें आपसी गाली गलौज और मारपीट होती तो थी, पर इन कार्यक्रमों को अभी उचित दिशा नहीं मिली थी "।[1]

"फिर तुम इस कालेज का हाल नहीं जानते । लुच्चों और शोहदों का अड्डा है । मास्टर पढ़ाना लिखाना छोड़कर सिर्फ पालिटिक्स भिड़ाते हैं । दिन रात पिता जी की नाक में दम किये रहते हैं कि यह करो वह करो तनख्वाह बढ़ाओं । हमारी गर्दन पर मालिश करो । यहाँ भला कोई इम्तहान में पास हो सकता है "।[2]

भारत सरकार ने सम्पूर्ण भारत की जनता के कल्याण के लिए एवं जनता के जनधन की सुरक्षा के लिए सरकारी सेवक के रूपमें पुलिस विभाग बनाया एवं जनता की सुरक्षा का उत्तरदायित्व पुलिस विभाग के कंधों पर सौंपा । ग्रामीण जन समाज का भी पुलिस विभाग से अनेक अवसरों पर सम्पर्क पड़ता है किन्तु सरकार के नाम पर सरकारी व्यवस्था को सुरक्षा प्रदान करने वाली पुलिस ग्रामीण जनता का शोषण करती थी । हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में प्रशासन तंत्र की संरक्षक पुलिस, दरोगा की गतिविधियों का चित्रण मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ब्रिटिश शासन

1- श्री लाल शुक्ल - रागदरबारी" पृ० सं० 99 ।

2- श्री लाल शुक्ल - राग दरबारी" पृ० सं० 44 ।

काल में पुलिस विभाग के कर्मचारियों का ग्रामीण जनता के साथ हुए दुर्व्यवहार का वर्णन विभिन्न आँचलिक उपन्यासों में दृष्टिगत होता है। "पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में रामदरश मिश्र ने दरोगा के दुर्व्यवहार एवं अनैतिकताओं का वर्णन करते हुए लिखा है –

" क्यों साला केउआ बम्मन होकर चमाइन रखता है दरोगा कड़क उठा और केवू की पीठ पर धम्म से एक लात जमाई। ..... दरोगा ने एक भद्दी सी गाली देकर कहा उठ चमार। सिपाहियों ने जबरदस्ती उसे उठाकर खड़ा कर दिया। दरोगा काफी हट्टा कट्टा जवान था। यों जवान तो केवू भी कम न था मगर जैसे इस समय उसका बल आधा हो गया था। दरोगा ने एक तगड़ा झापड़ केवू की कनपटी पर लगाया ...। दरोगा बिंदिया की ओर बढ़ा एक लात जमा कर उसे डाँट पर सुला दिया फिर दोनों हाथों से उसका गला दबा कर झकझोरने का अभिनय करता हुआ अंगुलियाँ के ऊपर उठाकर उसके गालों का स्पर्श करता रहा .... मीरू दरोगा के इस व्यवहार को भांप रहा था"।[1]

दरोगा केवू को गिरफ्तार करने के लिए आते हैं किन्तु मुखिया के बीच बचाव करने पर और उन्हें घूस दिये जाने की व्यवस्था करने पर और घूस के रुपये लेने के बाद केवू को छोड़कर दरोगा वापस चले जाते हैं"।

"माटी की महक" आँचलिक उपन्यास में गाँव में झगड़ा होने पर थानेदार साहब आ जाते है, और दोनो दलों से रुपये ऐंठना आरम्भ कर

1– राम दरश मिश्र– " पानी के प्राचीर "पृ0सं0 50 ।

देते हैं । बलात्कार के अपराधियों से दो हजार रुपये लेकर थानेदार साहब उन्हें छोड़ सकते है"।[1]

पुलिस दरोगा के इस भ्रष्टाचार पूर्ण घूस लेने की प्रवृत्ति से गाँव की भोली भाली जनता भली भाँति परिचित है।इसलिए इनके दरवाजे पर खाली हाथ जाने से काम नहीं बनेगा।इस विषय पर प्रकाश डालते हुए उपन्यासकार देवेन्द्र सत्यार्थी ने ब्रह्म पुत्र उपन्यास में लिखा है -

" चलते चलते वह सोचने लगा- मैं तो खाली हाथ हूं । खाली हाथ भी किसी का काम बना है ? पुलिस का तो विभाग ही ऐसा है । ये लोग या तो नगद नरायण चाहते हैं, या फिर अच्छी खासी घूस- कोई मुर्गी सुअर और बत्तख । ... उसके जी में आया कि उन्हीं पैरों लौटकर नारायण दरोगा के लिए एक मोटा सा सुअर ही उठवा लाये । मुफ्त में तो थाने में दाल गलने से रही"।[2]

इसी उपन्यास में पुलिस दरोगा के स्वार्थ के विषय में उपन्यासकार ने लिखा है -

"गाँव में साधारण झगड़ा होता है । फिर यह झगड़ा मारपीट में बदल जाता है। थाने वाले सोचते हैं हम किस लिए हैं ? वे नहीं चाहते कि झगड़ा शान्त हो जाय । उनकी ओर से यही यत्न किया जाता है कि झगड़ा जिला सदर की कचहरी में पहुँचे ।"[3]

" कब तक पुकारूँ " आँचलिक उपन्यास में पुलिस द्वारा करनटों एवं उनकी महिलाओं के शोषण के अनेकों चित्रण मिलते हैं । करनट सुखराम पुलिस के विषय में कहता है –

" हम इतना ही जानते हैं कि सिपाही में बड़ी ताकत होती है, वह राजा का आदमी होता है। वह सबसे घूस लेता है। गाँव के लोग उससे डरते हैं।वह बड़ी जाती में उठता बैठता है। वह जिधर जाता है उधर ही करनट दौड़कर छिप जाते हैं। हम तो यही देखते आ रहे थे कि चाहे जब जिस नटनी कंचरिया को पकड़ ले जाता है । हम सब उससे डरते थे क्योंकि वह थाने में पकड़ ले जाता था"।[1]

इसी उपन्यास में सिपाही के अनैतिकताओं का वर्णन करती हुई सोनो कहती है –

" जानती है सिपाही क्यों आया था ?

जानती हूँ । प्यारी ने कहा दरोगा मुझे दिन में घूर रहा था । मरे की तबियत आ गयी है। पर सुखराम तो न मानेगा अरी ये तो औरत केकाम है । उसे बताने की जरूरत ही क्या है " । सो तो है पर वह बुरा समझेगा ।

औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा भला क्या ? कौन नहीं करती । नहीं तो मारमार कर खाल उड़ा देगा दरोगा । और तेरे बाप और खसम दोनों को जेल भेज देगा। फिर कबेरा न रहेगा तो क्या

1– रांगेयराघव –" कब तक पुकारूँ " पृ0 सं0 63 ।

करेगी ? फिर भी तो पेट भरने को यही करना होगा" ? ।[1]

सिपाहियों के प्रति करन्ट जाति की स्त्रियों के विचार उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाते हैं कि वे भी उनसे डरती है और जैसा सिपाही लोग चाहते है उनसे करवाते हैं और उन्हे बरबस मजबूर होकर उनकी मरजी के अनुसार करना पड़ता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं आजादी के उपरान्त सरकारी सेवकों से सम्बन्धित पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार पूर्ण कार्यों के विरोध में ग्रामीण जनता संगठित प्रदर्शन एवं विद्रोह करती हुई पायी जाती है। जिसका प्रतिफलन हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में यथास्थान द्रष्टव्य है ।

जनतंत्र के आविर्भाव से गाँव की जनता भी अपनी शक्ति को पहचानने लगी हैसाथ ही ग्रामीण समाज का शिक्षित वर्ग प्रशासन के भ्रष्टाचारी सेवकों का विरोध खुले आम करने लगे हैं ।

शिव प्रसाद सिंह ने अपने आँचलिक उपन्यास में विपिन द्वारा थानेदार साहब का विरोध करते हुए दर्शाया है।उपन्यासकार ने इसी विषय को वाणी प्रदान करते हुए लिखा है -

"मेरे दरवाजे पर तो आप इनको गिरफ्तार नहीं ही कर सके थानेदार साहब और उधर गली गली में भी किया तो मैं आपको बिना अदालत दिखाये छोड़ूँगा नहीं । जमाना बदल गया अब

1- रांगेय राघव- "कब तक पुकारूं " पृ0 सं045 ।

आप लोगों का रवैया नहीं बदला । दस आदमी यहाँ बैठे हैं । आप पूछते हैं कि क्या हुआ क्या नहीं ? बस आपने तो आते ही " गवर्नमेंट का आदमी " सरकार का आदमी " जपना शुरू कर दिया और तहकीकात पूरी हो गयी "।[1]

इसी उपन्यास में आगे विपिन दरोगा से कहता है –

"आगे बढ़ने की कोशिश मत कीजियेगा दरोगा जी"। विपिन चारपाई से उठकर बोला । सिपाही से पकड़वाने का आपका कोई अधिकार नहीं ।

ब्रह्मपुत्र आँचलिक उपन्यास में शिक्षित नवयुवक अतुल दरोगा से टैक्स के विषय में प्रतिरोध व्यक्त करते हुए कहता है –

"दरोगा जी सरकार को यह तो देखना चाहिए कि वह लोगों को टैक्स देने योग्य बना सकी है या नहीं ।

हम पहले से कहीं अधिक निर्धन हो गये हैं । बाढ़ हमारा कचूमर निकाल देती है । सरकार हमारी सहायता करती भी है तो नाममात्र के लिए । फिर यदि वही ब्रह्मपुत्र जो हमें कष्ट करता है हमारे लिए उपहार स्वरूप लकड़ी ही बहाकर लाता है तो वह लकड़ी हमारे लिए कर मुक्त क्यों न हो ? एक ओर जहाँ ग्रामीण जनता का सुशिक्षित वर्ग प्रशासन के भ्रष्टाचारी लोगों का विरोध करने लगा है वहीं दूसरी ओर ग्रामीण जन समाज का सुशिक्षित वर्ग वैयक्तिक स्वार्थ एवं स्वाहित के लिए अपेक्षाकृत अधिक निपुणता के साथ भ्रष्टाचार पूर्ण व्यवहार करता हुआ उपन्यास जगत में दिखाई देता है ।

1– शिव प्रसाद सिंह –" अलग-अलग वैतरणी" पृ0 सं0 37। ।

'जल टूटता हुआ' उपन्यास में सरकार की भू सुधार सम्बन्धी योजनाओं के कार्यान्वयन के समय जिस प्रकार सरकारी सेवक स्वार्थी ग्रामीण लोगों से साठ-गाँठ करते हुए एवं अपने आत्महित में व्यस्त देखे जा सकते है "।[1] उसी प्रकार धरती परिकथा उपन्यास में भी सरकारी सेवक गण सरकारी योजना की मूल आत्मा की अपेक्षा एवं आत्म हित केलिए गाँव की जनता का दोहन करते हुए पाये जाते हैं ।

पानी के प्राचीर आँचलिक उपन्यास में मुखियाँ अपने निजी स्वार्थ की सिद्धि दरोगा एवं केवू की माँ के बीच मध्यस्थता करके पूरी करते है, उपन्यासकार के शब्दो में -

सरकार इसके पास रूपये हैं नहीं, पचीस तीस ले लीजिये ... .केवू की माँ अपनी मोटी सी हँसुली गले से निकालती हुई बोली मुखिया बाबू ! यह हँसुली ही बस मेरे पास जो कुछ है सो है । .... हँसुली भँजाने में तो काफी देर लगेगी । फिर कुछ रूक कर बोला अच्छा लाओ दो तब तक मैं अपने पास से दे देता हूँ फिर इसका इन्तजाम करूँगा। .... मुखियाँ ने दरोगा के पास जाकर उसके हाथ में पचीस रूपये थामा दिये ...... दो घंटे बाद मुखिया केवू के घर पहुँचा बोला यह लो, हँसुली सुम्मेसर साहु के यहाँ रख दी है उसने कुल पचास दिये पचीस दरोगा को दिया ये बस रूपये तुम्हारे है"।[2]

1- राम दरश मिश्र- "जल टूटता हुआ" पृ0 सं0 467-468 ।
2- राम दरश मिश्र- पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 53-54 ।

"परती-परिकथा" आंचलिक उपन्यास में लैंड सर्वे सेटिलमेंट के समय सरकारी सेवक जनता से मनवांछित रुपये लेते हैं। वे दुलारी दाय से नहर निकालने की सरकारी योजना से जनता को परिचित नहीं कराते हैं उस समय ग्रामीण जनता अज्ञानतावश सरकार की इस योजना का विरोध करती है । ग्रामीण जनता के जुलूस को समझाते हुए जितेन्द्र कहता है -

"दोष हमारे विरोधियों का नहीं । हमारी सरकार के पुराने कल पुर्जे ही इसकेलिए जिम्मेदार हैं। वरना जैसा कि मैंने बतलाया आप आज तोड़ने फोड़ने के बदले गढ़ने का सपना देखते । ..... इतना बड़ा काम हो रहा है किन्तु आप इतने नाबालिक है कि क्या हो रहा है किसके लिए हो रहा है । मुझे ऐसा भी लगता है कि जानबूझकर ही आपको अंधकार में रखा जाता है क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है .... इन कार्यों में आपका लगाव होते ही नौकरशाही की मनमानी नहीं चलेगी ।"[1]

इस प्रकार सरकारी सेवकों के परम्परागत व्यवहार के प्रति कार्यकर्ता लोग ग्रामीण जनता को जागरूक करते हुए दिखाये गये हैं ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन काल में जो सरकारी नौकर गाँव के लोगों को अपने हित के लिए निःसंकोच प्रयोग करते थे वे ही सेवक गण स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त

1- फणीश्वरनाथ रेणु -"परती परिकथा" पृष्ठ [illegible] ।

जनता को स्वहित के लिए प्रयोग करने में हिचकिचाते हैं। फिर भी इस पुलिस विभाग में अभी पूर्ण परिवर्तन नहीं आया है। वे अपनेस्वार्थ के लिए मौके की तलाश करते हुए पाये जाते हैं एवं पुनर्निमाण के कार्य में रोड़े अटकाते हुए पाये गये हैं ।

भारत सरकार ने जनता को न्याय दिलाने केलिए न्यायालय की स्थापना की। ग्रामीण जन-समाज के पुनर्निर्माण के लिए अनेकों न्यायिक विधानों का निर्माण किया परन्तु सरकारी सेवकों के जनता के प्रति व्यवहार एवं लाभकारी विधानों से केवल आत्महित सम्पादित करने वाले समाज विरोधी तत्वों तथा परस्पर झगड़ने वाले लोगों में समुचित न्याय प्रदान करनेकी परम्परागत व्यवस्था में कोई भी बदलाव नहीं दिखाई दिया। न्याय के नाम पर कोर्ट कचहरी में भी अन्याय एवं भ्रष्टाचार का जाल फैला रहा साथ ही पैसे का ही खेल न्यायस - में दृष्टिगोचर होता रहा। विभिन्न उपन्यासकारों ने अपने आंचलिक उपन्यासों में इस विषय को वाणी प्रदान की है ।

"मैला आँचल"आंचलिक उपन्यास में ग्रामीण जनता के न्यायस में आने पर उनके जेब से होने वाले आर्थिक व्यय के विषय में बताते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"कचहरी में जिले भर के किसान पेट बांध कर पड़े हुए हैं। दफा 40 की दरखास्त नामंजूर हो गई है । मोआर कोर्ट से अपील करनी है । ..... अपील ? कौनो पैसा [illegible] समझते ? क्या कहते हो ? पैसा नहीं है तो हो चुकी अपील । पास में [illegible] हो तो मजदूरी करने जाओ ।...... कानून

और कचहरी कम्पाँउ में पलने वाले कीट पतंग भी पैसा माँगते है" ।[1]

'परती-परिकथा' आँचलिक उपन्यास में न्याय व्यवस्था के भ्रष्टाचार का वर्णन करते हुए रेणु जी ने लिखा है -

वीरभद्दर बाबू के शब्दों मे इस भ्रष्टाचार का परदा फ़ाश करते हुए रेणु ने लिखा है -" जब कचहरी में डबल फीस दाखिल करने से एक ही दिन में दस्तावेज का निकास होता है तो सामबत्ती की क्या बात है ।"[2]

"माटी की मँहक" आंचलिक उपन्यास में कोर्ट कचहरी में होने वाले आर्थिक व्यय से बचने के लिए सलाह देते हुए मैनू काका कहते हैं -

" अगर ज्यादा पैसा हो गया है तो गाँव में कोई पिरती बनवा दीजिये । आज तक जितने भी कचहरी में पैर रखा है पनप नहीं सका । अगर दरखास्त पर मोहर भी लगवाना है तो पहले चपराती के हाथ में चवन्नी थमा दो, तब कहीं मोहर पड़ेगी । अनाज बेचकर, जमीन बेच कर, मुकदमा लड़ना कहाँ की अक्लमंदी है " ।[3]

"आधा गाँव " आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने कोर्ट कचहरी के प्रति ग्रामीण जनता की उदासीनता एवं उपेक्षा का वर्णन करते हुए लिखा है -

परसराम के पिता ने हकीम साहब पर नालिश कर दिया जिससे हकीम साहब काफी परेशान हो गये ।

1- फणीश्वर नाथ रेणु-" मैला आँचल "पृ० सं० 182 ।

2- फणीश्वर नाथ"रेणु" "परती परिकथा" पृ० सं० 228 ।

3- सच्चिदानंद धूमकेतु -" माटी की मँहक" पृ० सं० 224 ।

उपन्यासकार के शब्दों में -

" ई दौलत अब हमें बाये को पड़ी । पने पल्सरमवा हरामजादे के पास आउर ओ कहे के पड़िहे कि अपने बाप से कहके मुकदमा उठवा ले । चाहे तो ई घर लिखवा ले .... बाकी ई मुकदमें में हमें कचहरी मत बुला । ...... हकीम साहब रो पड़े ।'[1]

उपरोक्त उदाहरणों से आँचलिक उपन्यास साहित्य जगत में न्याय व्यवस्था से सम्बन्धित कोर्ट कचहरी की स्थिति एवं ग्रामीण जनता पर इस न्याय व्यवस्था के प्रभाव का वर्णन मिलता है साथ ही ऐसा प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी न्याय व्यवस्था के प्राचीन स्वरूप में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है ।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना को जागृत करने वाले विभिन्न राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । वास्तविकता तो यह है कि ग्रामीण परिवेश में स्वतंत्रता प्राप्ति की कामना ही ग्रामीण जनता की राजनीतिक चेतना का मूल कारण रही है । विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ इसी की प्रभाव परिणतियाँ है।स्वतंत्रता प्राप्ति एक ऐसा केन्द्र बिन्दु था जिसने ग्रामीण जन जीवन में राजनीतिक चेतना को गति प्रदान की है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व विभिन्न राजनैतिक दल के नेता ग्रामीण जन जीवन में राजनीतिक चेतना जगाते हुए दिखाई पड़ते हैं।हिन्दी के आँचलिक

1- राही मासूम रज़ा -"आधा गाँव" पृ०सं० 341 ।

उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों में इस राजनीतिक जागृति को वाणी प्रदान की है ।

'ब्रह्मपुत्र' आँचलिक उपन्यास में देवेन्द्र सत्यार्थी ने गांव के लोगों में स्वतंत्रता पाने की ललक के कारण क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रति जागरूकता दर्शाते हुए लिखा है -

"मणिधर ने ठण्ड से सिकुड़ते हुए कहा, देवकान्त से मेरी बातें हुई हैं वह तो कहता है - विदेशी राज्य का तख्ता तभी उल्टा जा सकता है जब हिंसा और अहिंसा के दोनों उपाय काम में लाये जायें । उसके मतानुसार न केवल हिंसा कुछ कर सकती है, न केवल अहिंसा ही " ।[1] "पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में कांग्रेस दल के कार्यकर्ता गण अंग्रेज सरकार से भारत माता को स्वतंत्र कराने के लिए नारे लगाते हैं । उपन्यासकार के शब्दों में -

" इन दिनों गांधी जवाहर का नाम बड़े जोरों पर था।ऐसा मालूम पड़ता था कि आजादी अब मिली तब मिली । "भारत माताकी जय,गांधी बाबा की जय,जवाहर लाल नेहरू की जय और फिर जय जयकार का नाद संगीत में बदल जाता । नेताजी के पीछे चलने वाले लोग जोर से गाते -गांधी की जय हो जवाहर की जय हो, अरे भाई नेता गनेसी की जय जय जय हो ... अपने नाम के जय जयकार से गनपति फिर बच्चों की तरह खिलखिला पड़ता । कैलू, टिर्रई और भगत हरिजन भी अपने झुण्ड के साथ जुलूस में शामिल होते और हैंस हैंस कर नारे लगाते "।[2]

1- देवेन्द्र सत्यार्थी - "ब्रह्मपुत्र "पृ० सं० 274 ।

2- राम दरश मिश्र -" पानी के प्राचीर" पृ० सं० 95 ।

इसी उपन्यास में एक अन्य स्थल पर उपन्यासकार ने यह दर्शाते हुए लिखा है कि गाँव के लोगों मे ये विश्वास पक्का हो गया है कि अब स्वराज मिल कर ही रहेगा। स्वराजी नेताओं के जेल में पकड़ ले जाने से ग्रामीण जनता में जोश पूर्ण भावना उत्पन्न होती है और ग्रामीण नेता के नेतृत्व मे वे जुलूस निकालते हुए दिखायी पड़ते है। उपन्यासकार के शब्दो में -

" पूरे गाँव में जयजयकार होने लगा । आगे आगे गनपति नेता झंडी लहराते हुए चल रहे थे । पीछे गाँव के कुछ लोग जय जयकार कर रहे थे । करान्ती हो गयी भाइयों । सारे देश में आग लग गयी है। नेता लोग जेहल खाने में ढकेल दिये गये हैं । कालिज, इसकूल के लड़के अंग्रेजी सरकार को तोड़ रहे है । अब सुराज मिल कर रहेगा । गांही बाबा को कौन जेहल में बाँध सकता है अवतारी आदमी है । कल ही जेहल खाने से तीस कोस दूर कहीं दिखाई पड़ेंगे अब सुराजमिलकर रहेगा"।[1]

"मैला आँचल "आँचलिक उपन्यास में गांधी वादी नेता बलदेव और बामन दास ग्रामीण जनता में राजनीतिक गतिशीलता प्रदानकरते हुए दिखाये गये हैं। ये लोग स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में कई बार जेल भी जा चुके हैं। उपन्यासकार के शब्दो में -

.... लेकिन सिपारे भाइयों हमने भारत माता का नाम, महातमा जी का नाम लेना बंद नहीं किया ।

1- राम दरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 255-256 ।

तब मलेटरी ने हमको नाखून में सुई गड़ाया, तिस पर भी हम इस विस नहीं किये। आखिर हार कर जेल खाना में डाल दिया। आप लोग तो जानते ही है कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं – जेल नहीं ससुराल वार हम विहार करन को जायेंगे। मगर जेहल में अंग्रेज सरकार हम लोगों को तरह तरह की तकलीफ देने लगा। भात में कीड़ा मिला देता था। घास पात की तरकारी देता था"।[1]

"बाबा बटेसर नाथ" आँचलिक उपन्यास में सत्याग्रह आन्दोलन में गिरफ्तार हुए और जेल में भेजे गये ग्रामीण राजनीतिक नेताओं का वर्णन करते हुए नागार्जुन ने लिखा है –

"बबुआ यह कोई चोरी छिनाली की गिरफ्तारी तो थी नहीं, यह स्वाधीनता संग्राम की गौरवमय परम्परा का एक सामान्य प्रदर्शन था। गिरफ्तार होना, जेल के अन्दर कैद काटना, लाठियों की चोट बरदाश्त करना। पुलिस और मिलिटरी की फौजी बूटों से कुचला जाना..... इन बातों से जरा भी नहीं घबराते थे लोग। सत्याग्रह और पिकेटिंग त्यौहार बन गए थे। पुलिस एक को गिरफ्तार करती तो उस एक ही जगह दस आदमी आ डटते, दस गिरफ्तार कर लिए जाते तो उन दस की जगहों पर सौ जवान खड़े हो जाते। घर वाले सत्याग्रह और पिकेटिंग के लिए जाते हुए अपने आदमी को माला पहनाकर और टीका लगाकर विदा करते मानो वह शादी करने जा रहा हो। गजब का जोश था बेटा, उत्साह का अपूर्व वातावरण था रे"।[2]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" "मैला आँचल" पृ०सं० 31।

2- नागार्जुन – "बाबा बटेसर नाथ" पृ० सं० 97।

भारतीय ग्रामीण जनता की गांधी वादी सिद्धान्तों में विशेष आस्था थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एकता और संगठन गाँव के लोग इसी सिद्धान्त के आधार पर करते थे। उपन्यासकार रामदरश मिश्र के शब्दों में —

अरे भाई तुम लोग कैसे हो ? गान्ही जी का आडर है कि सुराज लेने केलिए हमें एक होना पड़ेगा। जब हम लोग अपने हीगाँव में मेल नहीं करापायेंगे तो सुराज कैसे मिलेगा। चलो चलो तिरंगा झंडा उठा लो और हम लोग गान्ही जी कीअहिंसा का उन्हे उपदेश दें। गान्ही जी का कहना है कि सुराज प्रेम और अहिंसा से मिलेगा।[1]"

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त मेरीगंज गाँव में खुशियाँ मनाई गयी उपन्यासकार ने लिखा है —

"कहीं नौटंकी हो रही है, नाच हो रहा है पूरे गाँव के लोग भारत माता की मूर्ति हाथी पर जुलूस के साथ निकाल रहे हैं"।[2]

'पानी के प्राचीर" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार रामदरश मिश्र ने इस राष्ट्रीय पर्व पर आयोजित कार्यक्रमों का व्यापक स्तर पर वर्णन किया है।"[3]

1— राम दरश मिश्र— "पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 180।
2— फणीश्वर नाथ रेणु —" मैला आँचल पृ0 सं0 285 ।
3— राम दरश मिश्र —" पानी के प्राचीर "पृ0 सं0 342 ।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ग्रामीण समाज में जो धन सम्पन्न वर्ग था उसके पास सिर्फ एक ही चाह थी कि धन के आधार पर शक्तिशाली दल का सदस्य बनकर अपने अंचल के उच्च राजनीतिक पद प्राप्त कर अपने निहित स्वार्थों को पूर्ण कैसे किया जाय शायद इसी कारण से कांग्रेस दल के सत्ता में आने पर भ्रष्टाचार का विकास हुआ। ये भ्रष्टाचार राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टव्य होता है।

विरोधी दलों को कमजोर बनाने के लिए कांग्रेस दल के नेता भ्रष्टाचार पूर्ण तौर तरीके अपनाते हुए आँचलिक उपन्यास साहित्य में दर्शाये गये है।

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में रेणु जी ने कांग्रेसी कार्यकर्ता छोटन बाबू के राजनीतिक भ्रष्टाचार पूर्ण कार्यों का वर्णन करते हुए लिखा है -

" अमीन बाबू से कहना होगा। मेरीगंज में अब बालदेव से काम नहीं चलेगा, वहाँ सेन्टर को चौपट कर दिया। घर घर में सोशलिस्ट घर-घराने लगे। अभी तो सब डकैती केस में ऐरेस्ट हैं। गाँव का इ0 कोमनिस्ट था वह भी ऐरेस्ट है .... उसको तो हम्हीं ने ऐरेस्ट कराया है। कटहा का नया दरोगा हमारा क्लास फ्रेन्ड है "।[1]

"रेणु जी के दूसरे आँचलिक उपन्यास "परती परिकथा" का पात्र लुत्तो परानपुर का नंबीबाज राजनीतिज्ञ है। उसका राजनीतिक चेहरा कांग्रेसी है लेकिन उसकी कार्यविधियों में प्रतिक्रियावादी तत्व विद्यमान है। इन तत्वों के साथ विद्वेष, स्वार्थपरता, बेईमानी आदि भी उसमें है। पंचायत का निर्माण

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" - मैला आँचल "पृ0 सं0 283 ।

उसकी राजनीतिक चालों का खेल है। गरूड़ धुज झा से मिलकर मुखिया और सरपंची के उम्मीदवारों को पैसों से तोड़ता है। मुखिया गीरी के लिए रोशन बिस्वा को तिजोरी खोल पैसे देने पड़ते है। तभी तो सुचित लाल मडर आदि को मैदान से बैठाता है। किसी को साड़ी तो किसी को ईंटें इस उपलक्ष्य में प्राप्त होती हैं/सुरतों गरूड़धुज झा से बताता है "दोनों कैण्डेट समझिये कि मेरी मुट्ठी में हैं। मैंने लंगी लगा दी है। एक को सरपंची का लोभ दिया और दूसरा कुछ रूपया चाहताहै"।[1]

"जितेन्द्र जहाँ एक ओर गाँव की परती धरती को तोड़ने में जागरूक एवं क्रियाशील है वहीं दूसरी ओर गाँव के अशिक्षित लोगों की भीड़ को निरन्तर भड़काने में सुरतों जैसे कांग्रेसी, रामनिहोरा एवं जयदेव जैसे समाजवादी, सुचित लाल मडर तथा मकबूल जैसे कम्युनिस्ट नेता अपने षड़यंत्रों में संलग्न हैं और कोसी बाँध के खिलाफ जुलूस निकलता है। इस जुलूस में जितेन्द्र घायल हो जाता है।"[2] सचमानिये तो गाँव के विकास कार्यों की यही दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति है। यहाँ गुंडे गुंडई के खिलाफ जुलूस निकालते हैं।

रागदरबारी आँचलिक उपन्यास के वैद्य जी महाराज भी सत्ता लोलुप हैं। वैद्य-गिरी के साथ वे स्कूल प्रबन्धक भी हैं। सहकारी समिति के प्रबन्ध निर्देशक है तथा "ग्राम पंचायत में भी अपना अधिकार जमाए रखने केलिए अपने शनिचरा को चुनाव लड़वाते हैं ताकि वहाँ भी उनका अधिकार रहे।"[3] गाँव की पंचायतें इन स्वार्थी के हाथों में पड़कर क्रियाहीन हो गयी है।

लोकतंत्रात्मक राज्य में शासक दल के अतिरिक्त अन्य विभिन्न विरोधी दलों का भी विशिष्ट स्थान होता है । इस विरोधी दल की कमजोर स्थिति के विषय में वार्ष्णेय जी ने 'समसामयिक हिन्दी साहित्य'* नामक पुस्तक में लिखा है –

" राष्ट्रीय स्तर पर संगठित एक सशक्त और प्रभावशाली विरोधी दल के अभाव ने भी देश के प्रजातंत्रवाद को एक विचित्र रूप दे रखा है – जो इग्लैंड और अमेरिका के प्रजातंत्रवाद से भिन्न है ।"[1] फिर भी इस लोक तंत्रात्मक देश में विरोधी राजनैतिक दलों का बाहुल्य है और वे आँचलिक परिवेश में ग्रामीण जन के भीतर चेतना जगाते हुए उनके सर्वोतमुखी हितों की सुरक्षा प्रदान करते हुए विभिन्न आँचलिक उपन्यासों में दर्शाये गये हैं ।

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में सोशलिस्ट पार्टी के नेता कालीचरण किसान सभा करता है। वह जनता को उत्तेजित करते हुए कहता है –

"अरे वह जमाना चला गया जब राजपूत और बामन बात-बात में लात जूता चलाते थे । .... अब वह जमाना नहीं है । गाँधी जी का जमाना है । नया तहसीलदार हुआ है तो क्या ? हमारा क्या बिगाड़ लेगा ? न जगह जमीन है, हमलोग नहीं उस गाँव में रहें बराबरहे धमकी देते हैं कि जूते से "रेट" कैरेंगे । अच्छा अच्छा" ।

"जुर्मों से पीड़ित दलित और उपेक्षित लोगों को कालीचरण की बातें अच्छी लगती हैं । ऐसा लगता है कोई घाव पर ठंडा लेपलगा रहा है ।

" मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ। सोये हुए को जगाना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पार्टी आपकी पार्टी है। गरीबों की मजदूरों की पार्टी है। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि आप अपने हकों को पहचाने। आप भी आदमी हैं। आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिये। मैं आप लोगों को मीठीबातों में भुलाना नहीं चाहता। वह कांग्रेस का काम है। मैं आग लगाना चाहता हूँ "[1]।

'रेणु' जीनेइसी उपन्यासमें सोशलिस्ट पार्टी की विशेषता सैनिक जी के भाषण के द्वारा आलोकित करते हुए लिखा है –

" यह जो लाल रंग का झंडा है आपका झंडा है जनता का झंडा है आवाम का झंडा है, इनकलाब का झंडा है इसकी लाली उगते हुए आफ्ताब की लाली है .... इसका लाल रंग क्या है ? .... रंग नहीं। यह गरीबों, महरूमों, मजलूमों, मजदूरों के खून में रंगाहुआ झंडा है "।

"जिस तरह सूरज का डूबना एक महान सच है पूँजीवादी का नाश होनाभी उतना ही सच है। मिलों की चिमनियां आग उगलेंगी और उस पर मजदूरों का कब्जा होगा। जमीनों पर किसानों का कब्जा होगा चारों ओर लाल धुंआ मडरा रहाहै। उठो किसानों के सच्चे सपूतों। धरती के सच्चे मालिकों उठो। क्रान्ति का मशाल लेकर आगे बढ़ो।"[2]

1– फणीश्वर नाथ "रेणु" –"मैला आँचल "पृ0 सं0 192।

2 – फणीश्वर नाथ"रेणु"– मैला आँचल "पृ0 सं0 130

'बलचनमा' आंचलिक उपन्यास में ग्रामीण जन की राजनीतिक चेतना के जागरण के फलस्वरूप ही जमींदारों के खिलाफ डॉ० रहमान की रहनुमाई में किसान मजदूरों का एक संगठन बनता है । मजदूर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे यह बात उनके नारों से अभिव्यक्त होती है । अब वे जमींदारों की धरती नहीं मानते। क्योंकि "धरती किसकी जोते बोये उसकी । किसान की आजादी असमान से उतर कर नहीं आयेगी वह परगट होगी नीचे जुते धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर "।[1]

"वरुण के बेटे" आंचलिक उपन्यास में मोहन मांझी प्रजा समाजवादी पार्टी को छोड़कर अब कम्युनिस्ट हो गया है। गढ़पोखर के लिए लिए संघर्ष की तीव्रता में उसके प्रयत्न अनन्य हैं। उसके साथ गाँव के लोग एक मत है -

"छोड़ा नहीं जाए । गढ़पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है । जमींदार जल कर लेता था हम देते थे । नया खरीदार दूसरे तीसरे गाँव के मछुओं को मछली निकालने का ठेका देता चलेगा और हम पुश्तैनी अधिकारों से वंचित होकर क्यों फिरेंगे भला ये भी क्या मानने की बात है"।[2]

इसी प्रकार "मैला आँचल आंचलिक उपन्यास में सोशलिस्ट पार्टी का नेता कामी चरन गाँव में किसान सभा आयोजित करता है। गाँव के किसान लोग इकट्ठे होते हैं। संथालों को उत्तेजित करते हुए कामीचरन कहता है -

---

1- नागार्जुन - "बलचनमा" पृ०सं० 200 ।
2- नागार्जुन - "वरुण के बेटे" पृ० सं० 3५ ।

" जमीन किसकी ? जोतने वालों की जो जोतेगा वह बोयेगा, वह काटेगा । कमाने वाला खायेगा इसके चलते जो कुछ हो "।[1]

गाँव के आम किसानों की चेतना को उसके भाषण ने सोचने की नई दिशा दी, लोगों को यथार्थ और उसके चारों ओर घेर रहे वर्तमान को जानने की जागरूकता प्रदान की ।

'परती-परिकथा' आँचलिक उपन्यास में कामरूप नारायण जिनकी प्रभुसत्ता जमींदारी उन्मूलन के कारण समाप्त हो गयी उन्होंने एक नयी पार्टी प्रजा पार्टी का गठन किया। जितेन्द्र को इस पार्टी के विषय में बताते हुए वे कहते हैं – " अपने स्टेट के तीन सर्किल मैनेजर, पचास पटवारी और डेढ़ सौ प्यादों को लेकर मैंने प्रजापार्टी का शिलान्यास किया । कहा चलो तुम्हारी नौकरियाँ अपनी जगह पर बरकरार । जमींदारी चली गयी है काम बदल गया है। .... और आज देखो कई वामपंथी पार्टियों के सधे सधाये लोग आ गये हैं, वकील, मुख्तार, प्रोफेसर, छात्र, महिलाएं । मैंने प्रांत भर में बिखरी ऐसी शक्तियों का संचय किया है जो सही नेतृत्व के अभाव में कुढ़ी जा रही थीं । पिछले दिनों दो दो वामपंथी पार्टियों ने प्रजापार्टी के झण्डे के साथ अपना झण्डा बांधकर, विधान सभा के सामने प्रदर्शन किया है –

रेन्ट फ्री लैण्ड, बगैर किसी लगान के जमीन दे सकी है आज तक कोई पार्टी ऐसा क्रान्तिकारी नारा.।[2]

1– फणीश्वर नाथ "रेणु" –"मैला आँचल" पृ0 सं0 106 ।
2– फणीश्वर नाथ "रेणु" –"परती-परिकथा" पृ0सं0 427–428 ।

उपरोक्त पंक्तियों में रेणु जी ने जिस कुशलता से राजनीतिक अवसरवादी नेताओं को बेनकाब किया है उससे उनकी व्यंग्य शक्ति के साथ उनकी राजनीतिक पहचान का परिचय मिलता है।आज ग्राम जीवन के सामंत टूटकर भी टूटना नहीं चाहते थे, राजनीतिक पार्टियों की आड़ में अपना प्रभुत्व बनाए रखना चाहते हैं।

'बाबा बटेसर' नाथ आंचलिक उपन्यास में लेखक नयी पीढ़ी के युवकों को नया संदेश वट वृक्ष के माध्यम से देता है इस उपन्यास में साम्यवादी विचार धारा का बाहुल्य दृष्टिगोचर होता है। जैकिसुन को वह संघशक्ति से परिचय कराते हुए कहता है -

" झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होताहै सैकड़ों हजारों की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समा बंध जाता है। झींगुर की यह अखंड झंकार कई कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक शक्ति की इस एकाग्र महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहता है और होता रहेगा। "[1]

घनश्याम मधुप ने अपनी पुस्तक हिन्दी उपन्यास में लिखा है -

"वटवृक्ष के रूप में स्वयं लेखक ही जैसे संघर्षित कलयुगे की विवेचना कर रहाहै। जिस प्रकार वटवृक्ष गाँव की रगरग को पहचानता है उसे देखकर लगता है कि लेखक समाज के इस शोषित वर्ग की प्रत्येक नस नस को पहचानकर

1- नागार्जुन - "बाबा बटेसर नाथ" पृ०सं० ।। ।

उसे नयी दिशा देना चाहता है । लेखक का प्रगतिशील दृष्टिकोण सारे उपन्यास पर छाया रहता है, और उपन्यास वर्तमान की परिवर्तनशीलता का यथार्थ प्रतीक बनकर महत्वपूर्ण बन जाता है "।[1]

डॉ0 सुरेश सिन्हा ने नागार्जुन के दूसरे आँचलिक उपन्यासों के राजनीतिक पक्ष के विषय में लिखा है -

" उनके उपन्यासों में जीवन दर्शन समाजवादी चेतना के अधिक निकट है । परस्पर समानता स्थापित होना, सबको विकास करने का समान अवसर प्राप्त होना, शोषण एवं वर्ग वैषम्य का अन्त होना यही उनके उपन्यासों का मूल स्वर है। उन्होंने ऐसी क्रान्ति का सूत्रपात करने का प्रयत्न अपनी कृतियों में किया है जिसका सम्बन्ध ग्राम जीवन से अधिक है और जिसके सफल होने में ग्रामों की रूढ़ियाँ एवं जर्जरित मान्यताएं समाप्त होंगी और समाजवादी ग्राम समाज की नव रचना होगी "।[2]

फणीश्वर नाथ "रेणु" के मैला आँचल का कालीचरण और परती परिकथा का सुत्तों मेरीगंज और परानपुर गाँव में समाजवादी चेतना के स्रोत है। कालीचरण के अपने तौर तरीके हैं तो सुत्तो के अपने। परानपुर गाँव में जितेन्द्र के खिलाफ आग भड़काने में वह झूठे और सच्चे सभी हथकण्डे अपनाता है। सुत्तों के निर्देशन में समस्त पार्टियों का संयुक्त जुलूस निकलता है। जन चेतना का [illegible] चित्र, 'रेणु'जी ने चित्रित किया है -

1- घनश्याम मधुप -" हिन्दी लघु उपन्यास" पृ0 सं0 154 ।
2- डॉ0 सुरेश सिन्हा- 'हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास' पृ0 सं0 510 ।

"जुलूस के आगे आगे करीब तीस चालीस लठैत लाठी भांज रहे हैं। ... मुहर्रम का ताजिया निकला है मानों। शमसुद्दीन के गांव वाले नारा लगाने के बदले अली-अली कर रहे हैं। बालगोविन मोची चमार टोली के सभी ढोल बजाने वालों को हुक्म देता है - बाजाबंद नहीं हो ? ...... अली अली रद्द करो। कोसी कैम्प तोड़ दो गाँव हमारा छोड़ दो। दुलारी दाय ..... । बा आं आं !! डि डिग्घ, डि- डि ..घट। अभी हवलदार क्या करेगा अकेला ? आने दो नारा सुनकर भागेगा दुम दबाकर। ए! कांग्रेस का झंडा आगे रखो। .... मकबूल को क्या हुआ अपनी पार्टी के लोगों को क्या कह रहा है ? .... हसुआ हथौड़ा वाला झंडा समेटा है काहे ? .. बढ़े चलो। सुत्तो गरूड़धुज और रोशनबिस्वा के साथ बैलगाड़ी पर खड़ा है"।[1]

आँचलिक उपन्यास साहित्य में चित्रित विविध राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता नेता जहाँ एक ओर भारतीय ग्रामीण जनता की राजनीतिक चेतना को जागृत करते हुए उनके प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष राजनीतिक हितों का संवर्द्धन करते हैं वहाँ उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि ग्रामीण समाज में स्वस्थ राजनीतिक नेतृत्व का संकट भी विद्यमान है।

स्वतंत्रोत्तर काल में अनेक राजनीतिक दलों का अभ्युदय हुआ। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में उपन्यासकारों ने इन विभिन्न राजनीतिक

1- फणीश्वर नाथ रेणु" परती परिकथा" पृ0 सं0 505 ।

दलों द्वारा ग्रामीण जनता में एक ओर जहां राजनीतिक चेतना को जागृत करते हुए दिखाया वहीं दूसरी ओर ग्रामीण राजनीतिक कार्यकर्ताओं के अन्तर्गत सुदृढ़ एवं सुदूरगामी नेतृत्व का भी अभाव दिखाई पड़ता है। डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और उपलब्धियाँ' में एक स्थल पर लिखा है -

"आज सामाजिक एवं राजनीतिक विघटन केवल इसीलिए बढ़ रहा है क्योंकि सभी राजनीतिक दल जनता से दूर जा पड़े हैं और अपने-अपने व्यक्तिगत स्वार्थ एवं क्षुद्रता के संकीर्ण दायरे में पनप रहे हैं"।[1]

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में इन राजनीतिक मूल्यों के विघटन का वर्णन उपन्यासकार ने किया है। यह राजनीतिक विघटन न केवल आँचलिक उपन्यास जगत में वरन् पूरे देश में दृष्टिगोचर होता है। जहाँ निजी स्वार्थ के कारण नेता लोग दलबदल प्रवृत्ति को अपना रहे हैं। 'अलग-अलग वैतरणी' में राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा आर्थिक रूप से समृद्ध लोग ग्रामीण जन की राजनीतिक शक्ति का सिद्धान्त विहीन गुटबंदी उपयोग करते हैं।

शिवप्रसाद सिंह ने इन राजनीतिक मूल्यों के विघटन का वर्णन करते हुए लिखा है -

"जग्गन मिसिर गाँव के इन समृद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में सुखदेव राम से कहते हैं -" पैसे वाले जोर वाले, कोशिश पैरवी करने वाले लोग गरीबों

1- डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय -"हिन्दी उपन्यास और उपलब्धियाँ' पृ०सं० 65। प्रकाशक- राधाकृष्ण प्रकाशन 2 अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली।

को सताते है मुझे भी सताते हैं। मैं भरसक हार नहीं मानता। .... पहले गाँव में जुलुम जमींदार के लोग करते थे। करिंदा, सीरवाह, पटवारी, अमीन कानूनगों सबकी मिली भगत थी। ..... जमींदारी टूट गयी। उस समय जिन पर जुलुम होता था वे उससे बरी हो गये। अचंभा ई देखकर होता है सुखदेवराम जी कि जिन पर उस वक्त जुल्म होता था वे ही आज जालिम बन गये हैं। छुट-भइये लोग दो पैसे के आदमी हो गये तो आँख उलट गयी।.. अब छुट भइये गोल बनाकर अपने से कमजोरों, गरीबों को सताते है लूटते है "।[1]

भारतीय ग्रामीण समाज में राजनीतिक दलों की भूमिका एवं उनका जनता के साथ व्यवहार के अतिरिक्त राजनीति के क्षेत्र मे जनता का स्वतंत्र राजनीतिक व्यवहार भी महत्वपूर्ण तत्व है।ग्राम जीवन में राजनीति की जड़े बहुत गहरी चली गयी है जिसने परिवेश के रूप रंग के साथ वैचारिकता को भी आन्दोलित किया है। यह बात सत्य है कि ग्रामवासियों में राजनीति के सैद्धान्तिक ज्ञान की कमी है लेकिन यह भी यथार्थ सत्य है कि वहाँ के एक एक घर की सामूहिकता इस राजनीति ने व्यवहारिक स्तर पर खंडित कर दी है।

ग्रामीण समाज में मानवता की सेवा की दृष्टि से कार्य करने वाले कार्यकर्ता पाए जाते हैं। इनका लक्ष्य न तो राजनीतिक पद प्राप्त करना है और न आर्थिक लाभ प्राप्त करना ही।ये अन्तःप्रेरणा से ही मानव की सेवा में ईश्वर सेवा समझते हैं।

1- शिव प्रसाद सिंह -" अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 632 ।

'सागर लहरें और मनुष्य' उपन्यास में यशवन्त मानवता वादी आदर्शों से प्रेरित होकर सहकारी समिति की स्थापना करता है ।

"बरसोवा में मछलीमार सहकार समिति की स्थापना हुई। लोग सदस्य चुने गए चंदा करके एक ट्रक खरीदने का प्रश्न आया । हिसाब रखने के लिए एक कोली कोमंत्री बनाया गया "।[1]

इसी प्रकार "वरुण के बेटे" उपन्यास में किसान सभा कायम की जाती है । नागार्जुन ने एक स्थल परलिखा है -

"जात पाँत की दीवारें ढह रही हैं नये प्रकारकी किसान बिरादरी उनका स्थान लेने आ रही है।एकता का यह आलोक देहातों में भी प्रवेश कर चुका है । ..... मैथिल महा-सभा, राजपूत महासभा, यादव महासभा, दुसाध महासभा आदि जो भी सम्प्रदायिक संगठन हैं सभी का बायकाट होना चाहिए। इन महासभाओं के नेता आम लोगों की एकता में दरार डालने का ही एक मात्र काम करते हैं । देहातों में रहने वाली सारी जनता का खेती किसानी से थोड़ा बहुत लगाव रहता ही है तो कैसे कोई किसान सभा की मेम्बरी से इन्कार करेगा ? गढ़पोखर हमारे हाथों से न निकले इसके लिए हमें कोशिश करनी होगी । इस संघर्ष में निषाद महासभा नहीं किसान सभा चैतो मुखाके जमात ही हमारी सहायता कर सकती है "।[2]

1- उदय शंकर भट्ट - 'सागर लहरें और मनुष्य" पृ०सं० 240-241 ।
2- नागार्जुन -"वरुण के बेटे" पृ० सं० 40 ।

आज गाँव का किसान जाग चुका है। अपने हक को पाने के लिए वो समितियाँ, संघ, एवं सभाओं की स्थापना करके इनके माध्यम से अपनी आवाज को सरकार तक पहुँचाने के लिए कटिबद्ध सा हो गया है ।

न केवल गाँव का नवयुवक वर्ग ही इस हक की लड़ाई लड़ता है, बल्कि स्त्रियाँ भी इसकाम में अपना सहयोग देती है। इसी उपन्यास में माधुरी अपने गाँव के हित केलिए जेल जाते हुए इन्कलाबी नारे लगाते हुए दिखाई पड़ती है। उपन्यासकार ने एक स्थल पर लिखा है -

बाये हाथ से उसने ऊपर लटकती हुई जंजीर को थाम लिया और दाहिना हाथ घुमा घुमा कर नारे लगाने लगी । लोग दुगने चौगुने जोश में जवाबी नारे देने लगे ।

"इन्किलाब जिंदाबाद "

मछुआ -संघ जिन्दाबाद हक की लड़ाई - जीतेंगे । जीतेंगे ....

गढ़पोखर हमारा है, हमारा है । .....

पुलिस मोटर चल पड़ी मगर नारे लगते रहे"।

"[illegible] आंचलिक उपन्यास में श्री नागार्जुन ने इस किसान सभा और संघों के संगठन के वर्णन द्वारा ग्रामीण जनता की राजनीतिक [illegible] का परिचय दिया है। उपन्यासकार के शब्दों में -

"पाचों युवक जेल से छूट आये । उन्होंने दुगने जोश से काम

अपने घरेलू काम तो वे करते ही थे, किसान सभा और नौजवान संघ की ग्राम कमेटियाँ उन्होंने कायम कर ली थीं। किसान सभा के 56 मेम्बर बन चुके थे। मेम्बर होने की फीस एक आना था"।[1]

इसी प्रकार पानी के प्राचीर आँचलिक उपन्यास में गाँव के लोग नवयुवक संघ का गठन करते हैं। उपन्यासकार ने लिखा है -

" अच्छा हमारी राय है कि गाँव के सारे नवयुवकों को इकट्ठा किया जाय और नवयुवक संघ बनाया जाय। वह नवयुवक संघ पुराने लोगों के अत्याचारों का मुकाबला करे। चोर डाकुओं से गाँव की रक्षा करे "।[2]

गाँव की जनता जाग रही है। किसान जाग रहे हैं। उन पर जो बड़े लोगों का प्रभाव था तेजी से नष्ट हो रहा है। वे अब अपनी शक्ति पहचानने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगे हैं।

ग्राम जीवन के परिप्रेक्ष्य में जब हम चुनाव प्रक्रिया पर दृष्टिपात करते हैं तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना एवं उनके अंदर अधिकार बोध जगाने का यह प्रबल माध्यम है।

'लोक-परलोक' आँचलिक उपन्यास में इस अधिकार बोध का परिचय दलित वर्ग के लोगों के प्रत्युत्तर में दृष्टिगत होता है। उपन्यासकार ने एक स्थल पर लिखा है -

---

1- नागार्जुन - "बाबा बटेसर नाथ" पृ०सं० 137 ।
2- राम दरश मिश्र- " पानी के प्राचीर" पृ० सं० 81 ।

"पहले की बात पहले गयी । अब जि नाय होइगो साब तुमारे की, के हमारो बड़यरबा/निन कूँ कोऊ कछु बोलि जाय । अब हमेउ गाँधी ने बड़ो करि दयो है । हमारे उ वोट है ।"[3]

वयस्क मताधिकार ने गाँवो में छोटी व निम्न जातियों में उनके स्वत्व कोजगाया है एवं उन्हें आज अपने अधिकार का भलीभाँति बोध कराया है । सदियों से पददलित इन जातियों ने अब सम्मान और अपमान को समझ लिया है । क्रूरताएं दैन्य और प्रताड़ना इन्हीं के भाग्य में थोड़े ही लिखी है।आज ये लोग इस बात को जान गये हैं ।

स्वतंत्रोत्तर काल में गाँव की जनता जहाँ एक ओर अपने अधिकारों के लिए जागरूक हुई है वहीं दूसरी ओर राजनीतिक पार्टियाँ जातिपता के आधार पर अधिक से अधिक मत प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो रही हैं । 'मैला आँचल'उपन्यास का बावनदास ग्राम जीवन में आयी जातिवाद की भावना का मूल उत्सबड़ी राजनीति का अंग मानता है उसने बालदेव सेकहा था -

" सब चौपट हो गया ..... येह बिमारी उपर से आयी है । यह पार्टियाँ रोग हैं । ... अब तो और धूमधाम से फैलेगा ।.....भूमिहार, राजपूत, कैथ, यादव, हरिजन सब लड़ रहे हैं। अगले चुनाव में तिगुना एमेले (एम.एल. ए.) चुने जायेंगे । किसका आदमी चुना जाय इसी की लड़ाई है । यदि राजपूत पार्टी के लोग ज्यादा आए तो सबसे बड़ा मन्तरी भी

राजपूत होगा । परसों बात हो रही थी आसरम में । छोटन बाबू और अमीन बाबू बतिया रहे थे । गांधी जी का असम लेकर ससांक जी आयेंगे । छोटन बाबू बोले जिला का कोट असम जिला सभापति को ही लाना चाहिये - ससांक जी क्यों आ रहे हैं इसमें बहुत बड़ा रहस है। हाँ हा हा"।[1]

गाँव में राजनीतिक कार्यकर्ता का हरदल जातियता के प्रति सतर्क है । चाहे कांग्रेस हो या जनसंघ, कम्युनिस्ट हो या सोशलिस्ट सभी के निर्णय जाति पर होते हैं ।

'मैला आँचल' उपन्यास में गाँव के उत्साही नेता कालीचरण से गाँव की जाति विषयक जानकारी प्राप्त कर पूर्णियां जिले के सोशलिस्ट नेता वासुदेव गंगा प्रसाद सिंह यादव को पार्टी के प्रचार हेतु इसलिए भेजते हैं क्योंकि -

"मेरीगंज में सबसे ज्यादे यादवों की आबादी है । वहाँ आपका जाना ही ठीक होगा । वहाँ आर्गनाइज करने में कोई दिक्कत नहीं होगी । ... वहीं बस बलदेव है एक ।.....[2]

परानपुर गाँव में जातिवाद का काफी जोर है वहाँ की राजनीति का परिचय देते हुए रेणु जी ने लिखा है -

"राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना

'परतीपरिकथा' उपन्यास में गाँव का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राजनीतिक दल से सम्बद्ध है । जितेन्द्र प्रगतिशीलता से प्रतिबद्ध है। जयदेव सिंह और रामनिहोरा सोशलिज्म से, मकबूल, सुचित लाल मडर कम्युनिज्म से तथा लुत्तों, मीर-समसुद्दीन, रोशन बिस्वाँ आदि कांग्रेस से । सबके अपने अपने दल हैं, अपने-अपने विचार है, और गाँव के जीवन को उन्हीं के अनुसार बाँटते रहते हैं। गाँव की राजनीति के विषय में रेणु" जी लिखते है -

'बहुत उन्नत गाँव है परानपुर । सात आठ हजार की आबादी है प्रत्येक राजनीतिक पार्टी की शाखा है। यहीं धार्मिक सभाओं के कई धुरंधर धर्म ध्वनी इस गाँव में विराजते हैं । पिछले आम चुनाव में सैलिड वोट कांग्रेस को नही मिला इस लिए इस बार सौलिड वोट प्राप्त करने के लिए हर पार्टी की शाखा प्रत्येक मास अपनी बैठक में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करती है " ।[1]

परती परिकथा आँचलिक उपन्यास का लुत्तों एक स्थल पर बावन दास से कहता है-"क्या लीडरी करते हो जी अपनी जाति की औरतों पर भी तुम्हारा कोई परभाव नहीं । कोई परवाह ही नहीं करती हैं ? कोई वेलू नहीं तुम्हारा । एक साथ परभाव और वेलू (वैल्यु) वाली बात ने बाबू गोबिन के मुँह में थूक दिया । मुँह चटपटा कर बोला सब टोले का पहिचान है "।[2]

1- फणीश्वर नाथ"रेणु" -"परती परिकथा" पृ0 सं0 20 ।
2- फणीश्वर नाथ"रेणु"- "परती परिकथा" पृ0 सं0 196 ।

" रागदरबारी "आँचलिक उपन्यास में चुनावों की राजनीति एवं उसकी विसंगति के विषय में विवेकी राय ने लिखा है -

"शिवपालगंज गाँव में स्थित एक इन्टर कालेज और उसकी ब गंदी राजनीति के परिप्रेक्ष्य में आज के अस्त व्यस्त, मूल्यहीन और आदर्शच्युत राष्ट्रीय जीवन को कथाकार ने व्यंजित किया है। व्यंग्य का मुख्य लक्ष्य आधुनिक विकास है जो नेताशाही के दो पाटों में दम तोड़ रहा है "।[1]

गाँव के स्कूल की मैनेजरी हो या पंचायत की सरपंची वैद्य जी के रहते वे किसी अन्य गुट के पास कैसे जा सकती है। रूप्पन रंगनाथ को समझाता हुआ कहता है -

"देखो दादा यह तो पालिटिक्स है। इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है। यह तो कुछ भी नहीं"।[2]

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में चुनाव के हथकंडों का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

"उत्तर पट्टी में कुल कितने वोट हैं। डेढ़ सौ। है न। ये सभी जैपाल सिंह के ठोस वोट थे। मगर उन्हें मिले कितने ? सिर्फ बीस। बाकी एक सौ तीस कहाँ गए जनाब। ये गये सुखराम को। गये नहीं दिये गये। जानकर तय करके दिये गये। ताकि सरूपसिंह हार जायें। यानी बुझारथ जीतले

1- विवेकीराय - नेक-समीक्षक मासिक।

2- श्रीलाल शुक्ल - रागदरबारी पृ० सं० 190 ।

के लिये नहीं खड़ा था आपको हराने के लिए खड़ा था।"[1]

आँचलिक उपन्यास साहित्य में राजनीति से जुड़े चुनाव प्रचार एवं उससे सम्बन्धित दाँव पेंच का भी उपन्यासकारों ने वर्णन किया है। मैला आँचल उपन्यास में रेणु जी ने लिखा है –

"जिला कांग्रेस आफिस में जुलम हो रहा है। जिला कांग्रेस के सभापति का चुनाव होने वाला है। चार उम्मीदवार है दो असल और दो कम असल। राजपूत और भूमिहार में मुकाबिला है। जिले भर के सेठों और जमींदारों की मोटर गाड़ियाँ दौड़ रही हैं। एक दूसरे के गड़े मुर्दे उखाड़े जा रहे हैं। कटिहार काटन मिलवाले सेठ जी भूमिहार पार्टी में है और फारबिस गंज जूट मिल वाले राजपूतों को ...... पैसे का तमाशा कोई यहाँ आकर देखे"।[2]

'बूँद और समुद्र' आँचलिक उपन्यास में राजनीतिक दलों के चुनाव प्रचार का वर्णन करते हुए नागर जी ने लिखा है –

"बाजार में कांग्रेस और जन संघ की प्रचार ट्रकों में नारेबाजी का शोर मचा हुआ था। बैलों की जोड़ी और दीपक के निशानों से सजी हुई ट्रके स्वयं सेवकों से खचाखच भरी थीं। दोनों दल मुक्के तान कर, हाथ ऊँचे उठाकर, गले फाड़ कर एक-दूसरे को बातों से पछाड़ने के लिए दीवाना जोश दिखा रहे थे"।[3]

1– शिव प्रसाद सिंह –" अलग-अलग वैतरणी" पृ0 सं0 76।
2– फणीश्वर नाथ "रेणु" –मैला आँचल "पृ0 सं0 222।
3– अमृत लाल नागर –"बूँद और समुद्र" पृ0 सं0 190।

चुनाव महज स्वार्थ सिद्धि का माध्यम् ही बनकर रह गया है इस बात को उजागर करते हुए श्री लाल शुक्ल लिखते हैं –

" चुनाव के चोचले में कुछ नहीं रखा है नया आदमी चुनों तो वह भी घटिया निकलता है सब एक जैसे हैं । इसी से मैंनें कहा जो जहाँ हैं उसे वहीं चुन लो पड़ा रहे अपनी जगह । क्या फायदा है उखाड़ पछाड करने से ।"[1]

'सत्तीमैया का चौरा' आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार भैरव प्रसाद गुप्त ने राजनीतिक पैतरे बाजी का उल्लेख करते हुए लिखा है –

"राजनीति और पार्टी में ईमान विमान कोई चीज नहीं होता । हम अपनी पार्टी के खिलाफ फैसला नहीं दे सकते । फिर धर्म का भी यहाँ सवाल है । हमारी वजह से सती थान की एक ईंट भी खटके यह कैसे हो सकता है?"।[2]

राजनीति का यह जाल केवल राज्य प्रबन्ध तक ही सीमित नहीं है । वह समाज, धर्म, व्यक्ति और उसके परिवेश चारों ओर अपना घेरा डाल रही है ।

इन स्वार्थी राजनैतिक कार्यकर्ताओं से ग्राम जीवन को सचेत करने वाले तथा मानव मात्र की पीड़ा को दूर करने वाले मानवतावादी भावना से प्रेरित कार्यकर्ताओं भी जनता को नवीन दिशा प्रदान करते हुए विभिन्न आँचलिक उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं ।

1– श्री लाल शुक्ल – "रागदरबारी" पृ० सं० 178 ।
2– भैरव प्रसाद गुप्त– सत्ती मैया का चौरा पृ० सं० 699 ।

फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास का डॉ॰ प्रशान्त गाँव के मनुष्य मात्र की पीड़ा को दूर करने के लिए डॉ॰ बनने के बाद मेरीगंज गाँव में आता है। जनता की निःस्वार्थ सेवा करता है। राजनीतिक नेता उसे जेल तक पहुँचा देते है परन्तु वह पुनः प्यार की खेती करने मेरीगंज में आ जाता है "।[1] 'धरती-परिकथा' के जितेन्द्र के विषय में डॉ॰ राम गोपाल सिंह चौहान ने आधुनिक हिन्दी साहित्य में लिखा है -

जितेन्द्र अकेला ट्रैक्टर लेकर सारे विरोधों निंदा अपवादों का सामना करते हुए धरती जोतता है उसमें पेड़ लगाता है, जनता को प्रेरित करता है, सरकार को सहयोग देने के लिए विवश करता है और कोसी विकास योजना तैयार होती है। नये बांध बंधते हैं, धरती जमीन में आँखों की पहुँच तक फसल के झूमने के आसार स्पष्ट हो उठते हैं और फसल के झूमने के साथ ग्रामवासियों के हृदय में भी उल्लास से झूमने की आशा जाग उठती है "।[2]

जित्तन परानपुर ग्राम की जनता के मन की धरती तोड़ने के लिए परानपुर नाट्यशाला का निर्माण करता है। वह कांग्रेसी कार्यकर्ता मुत्तों द्वारा संगठित जन समूह को सम्बोधित करते हुए कहता है -

हमारी सरकार के कल पुर्जे इसके लिए जिम्मेदार है वरना जैसा किसी ने बतलाया आप तोड़ने फोड़ने के बजाय गढ़ने का सपना देखते ।.... इतना बड़ा काम हो रहा है और आप न वाकिफ है कि क्या हो रहा

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -"मैला आँचल" पृ० सं० 333-334 ।

2- रामगोपाल सिंह चौहान- आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० सं० 255 ।

है किसके लिये हो रहा है। ...... मुझे ऐसा भी लगता है कि जानबूझ कर ही आपको अंधकार में रखा जाता है क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है। ...... इन कामों से आपका लगाव होते ही नौकरशाहों की मनमानी नहीं चलेगी ....एक दिन में होने वाले काम में एक महीने की देर नहीं लगा सकेंगे। ...... नदियों पर बिना पुल बनवाए ही कागज पर पुल बनाकर बाढ़ में पुल को बह जाने की रिपोर्ट वे नहीं दे सकेंगे "।[1]

इसी प्रकार अन्य अनेक आंचलिक उपन्यासों में भी मानवतावादी भावना से प्रेरित विभिन्न कार्यकर्ता दृष्टिगोचर होते हैं।अलग-अलग वैतरणी' का विपिन, वरूण के बेटे का मोहन मांझी, 'सागर लहरें और मनुष्य' का यशवन्त, 'ब्रह्मपुत्र' का अतुल नीरद एवं देवकान्त आदि ऐसे पात्र हैं जिन्होंने देश की स्वतंत्रता से बड़ी आशाएं लगायी थीं। देश के विकास का सपना देखा था। इन विभिन्न उपन्यास के पात्रों की मानसिकता समूचे देश के उन तमाम लोगों का प्रतिनिधित्व करती है जो चाहे कहीं दुरजगंल में खेत में हल चला रहे हो या स्कूल में देश की भावी आशा का निर्माण कर रहे हो, मजदूरों का प्रतिनिधित्व कर रहे हों या पंचायत के सरपंच बन फैसला कर रहे हों। रोजी रोटी के लिए जमींदार से जूझ रहे हों अथवा उनकी झिड़कियां सह सिर झुकाये सरकारी नौकरियों या शहर की

1--फणीश्वर नाथ 'रेणु'-"परती परिकथा" पृ० सं० 481-482 ।

और कोयलरियों को ओर ताक रहे हों ।

निष्कर्षत: हम यह कह सकते है कि आँचलिक उपन्यास साहित्य में वर्णित राजनीतिक तत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण जनता में राजनीतिक जगत के विकास, उत्थान, पतन स्वार्थ पूर्ण एवं राष्ट्रीय कल्याणकारी भावना से परिपूर्ण कार्य तथा गतिविधियो को उपन्यासकारों ने वाणी प्रदान की है ।

आँचलिक उपन्यासों में नव चेतना -

हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त ग्राम जीवन में उत्पन्न हुई नयी भाव क्रान्ति को अपने आँचलिक उपन्यासों में वाणी प्रदान की है। यह नयी भाव क्रान्ति या नवचेतना ग्रामीण जन जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है।

ग्राम जीवन को सबसे अधिक प्रभावित एवं परिचालित करने वाली उनकी मानसिकता में आलोड़न विलोड़न करने वाली घटना हमारी राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं तज्जनित विकास कार्य है।

सामाजिक क्षेत्र के अन्तर्गत वर्णव्यवस्था जाति-पाँति और छुआछूत सम्बन्धी तत्वों का अपना विशिष्ट स्थान है स्वतंत्रता से पूर्व शूद्रों को समाज में कोई सम्मान नहीं प्राप्त था। ये दलित वर्ग सदैव ही अपमान अवहेलना एवं निम्नस्तर का जीवन व्यतीत करने के लिए एक प्रकार से मजबूर थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जातिवाद की समस्या को दूर करने केलिए विषमानवता कीआर्थिक प्रगति के पथ पर भारतीय जनता को लाने के लिए भारत सरकार ने शताब्दियों से दलित वर्ग को ऊपर उठाने के लिए अनेक प्रकार की वैधानिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक सुविधाएं प्रदान की है हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारों ने ग्रामीण समाज के पिछड़े

हुए वर्ग एवं अनुसूचित जातियों के लिए सरकार द्वारा किये गये कार्य एवं उनके फलस्वरूप इन पिछड़े वर्ग के मनोभावों में उत्पन्न नवीन चेतना को वाणी, प्रदान की है। संविधान के अनुसार हरिजनों को समता का अधिकार दिया गया वयस्क मताधिकार ने गाँवों की निम्न जातियों में उनके स्वत्व को जगाया है एवं उन्हें आज अपने अधिकार का भली भाँति बोध कराया है। सदियों से पददलित इन जातियों ने अब सम्मान और अपमान को समझ लिया है। क्रूरताएं दैन्य और प्रताडनाएं इन्हीं के भाग्य में थोड़े ही लिखीं है, अब ये लोग इस बात को जान गये हैं। उदय शंकर भट्ट ने अपने आँचलिक उपन्यास "लोक परलोक" में भंगी भगनी राम को प्रत्युत्तर देते हुए कहता है –

"पहले कीबात पहले गई। अब जिनाबे होइगी साथ तुमारे की के हमारी बहुयर बानिन कूँ कछु बोलि जाय अब हमेऊ गांधी ने बड़ो करिदयो है। हमारे ऊ वोट है।"[1]

सरकार के निरन्तर प्रोत्साहन प्रदान करने के एक ओर उच्च जाति वालो का विरोध क्षीण होता जा रहा है और दूसरी ओर परम्परागत हरिजन जीवन के समग्र क्षेत्र में प्रगति कर रहे हैं। उनमें नवचेतना जागृत हो रही है। विगत चार दशकों में भारत सरकार ने हरिजनों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने के बहुमुखी प्रयास किये हैं। इन प्रयासों के

1– उदय शंकर भट्ट – लोक-परलोक पृ0 सं0 110 ।

अन्तर्गत शिक्षा के क्षेत्र में विशेष सुविधा प्रदान करना, सरकारी सेवाओं के क्षेत्र में हरिजनों को विशेष स्थान प्रदान करना, राजनीति के क्षेत्र में हरिजनों को विधायक के पद पर चुने जाने के लिए विशेष व्यवस्था प्रदान करना, एवं वैधानिक स्तर पर उनकी सम्पूर्ण परम्परागत विषमता दूर करना आदि सम्मलित है। सरकार द्वारा प्रदत्त इन सुविधाओं से हरिजनों की उन्नति एवं जागृत चेतना के अनेकों स्थल हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में मिलते हैं मैला आँचल उपन्यास में रेणु जी ने महीचन चमार की पुत्री मलारी को शिक्षिका के रूप में गाँव की सेवा करते हुए दर्शाया है। साथ ही सुवंश जो जीवन बीमा का एजेन्ट है एवं ब्राह्मण जाति का है उसका मलारी के साथ अदालत में जाकर अन्तर्जातीय विवाह रजिस्टर्ड करवाना एक ऐसा कार्य है जिसे आज का नवयुवक वर्ग नवचेतना से उद्बुद्ध होकर ही कर सकता है।"[1]

सरकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज ग्रामीण जनता इस विवाह का सबसे समक्ष विरोध नहीं कर पा रही है। परानपुर गाँव के पनघट पर खड़ी महिलाएं सरकार के भय के सम्बन्ध में कानाफूसी करती हुई कहती है -

" जोर से मत बोलो। सुना है, सुवंश और मलारी के खिलाफ बोलने वालों को दरोगा साहब पकड़ कर चालान करेंगे। ...... रजिस्ट्री किया हुआ है किसी का इस गाँव में ? तब कैसे जानेगी सरकारी शादी का किया"।"[2]

1- फणीश्वर नाथ "रेणु" -"परती परिकथा" पृ० सं० 374।
2- फणीश्वर नाथ "रेणु"- परती परिकथा" पृ० सं० 346।

वास्तव में देखा जाय तो भारतीय ग्रामीण समाज में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन है। इस परिवर्तन की गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए भारत सरकार हरिजन छात्रों को पढ़ने के लिए आर्थिक सहायता दे रही है। शिक्षा ने भी गाँव के जनजीवन मे नवचेतना को जागृत करने में आग में मानो घी का काम किया है/ स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जन्म के आधार पर यदि किसी जाति के व्यक्तियों का उत्थान हुआ है तो वह हरिजनों का ।

भारत सरकार के भूमि सम्बन्धी सुधार के कारण हरिजन खेतिहर श्रमिक आज भूमि प्राप्त कर उसमे आर्थिक प्रगति कर रहे हैं "परती परिकथा" उपन्यास में विनोबा जी के भूदान यज्ञ के परिणाम स्वरूप हरिजन समाज भूमि अर्जित करता है उस भूमि की उपज ने उन्हें एक नवीन जीवन प्रदान किया है।

"आधा गाँव" आँचलिक उपन्यास का हरिजन परसराम एम०एल० ए० बन गंगौली ग्राम की आर्थिक ,शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए काम कर रहा है। आज परसराम जब गाँव में आता है तो गाँव में उसका सबसे बड़ा दरबार होताहै और उसके दरबार में सभी लखपति भी फाके मस्त सदस्य साहिबान भी आते है वे लोग कुर्सियों पर बैठते सिगरेट पीते और रेडियो सुनते "।[1]

परसराम का पिता सुखराम को कुर्सी पर बैठना तक न आया 'रेणु' जी ने लिखा है -

---

1- राही मासूम रजा- "आधा गाँव" पृ० 351 ।

" वह कुर्सी पर उकडूँ ही बैठा करता था और जब मियाँ लोगों में से कोई आ जाता तो वह घबड़ाकर खड़ा हो जाता और उसकी समझ में न आता कि वह उन लोगों के सैत कर कहाँ रखे वह जिस कदर खुशामद करता मियाँ लोगों का पूरा कुद्दतरज उठता"।[1]

और यही सुखराम जिसे कुर्सी पर ढंग से बैठना नहीं आता और जो सदैव गाँव के जमींदारों के लिए उनके जूते के समान रहा है आज जमींदारों पर मुकदमा चलाने के लिए नोटिस दे रहा है "।[2]

आज हरिजन समाज अपने सम्मान, स्वाभिमान एवं प्रतिष्ठा के प्रति पूर्ण सजग हो रहा है । और इस वर्ग की यह अनुभूति उसे नव जागृत चेतना के बिन्दु परलाकर खड़ा कर देती है ।

इसी नवचेतना की अनुभूति का ही परिणाम है कि हरिजन अपनी प्रतिष्ठा की सुरक्षा एवं उसके विकास के लिए अपनी पंचायत में बैठकर विचार करते हैं । अलग-अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यासमें उपन्यासकार ने लिखाहै -

"बैलतरा के नये चौधरी लछमीराम ने कहा भाइयों रामकिसुन जी की अरज गरज आप लोगों ने सुन ली । यह कोई इनका अकेले का मामला नहीं है । यह सारी कौम की इज्जत का सवाल है। हम लोगो को इनका शुक्र गुजार होना चाहिये कि इस कौम में अभी भी ऐसे नौजवान जन्म लेते हैं

1- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव" पृ० सं० 352 ।
2- राही मासूम रजा-" आधा गाँव" पृ० सं० 330 ।

जो मुर्दा नहीं हैं जो बेइज्जती को चुपचाप सहने के लिए तैयार नहीं है। अब वह जमाना गया कि हम बड़े लोगों की जूती चाटने कोही अपना धर्म मानते थे।"[1]

इसी उपन्यास में एक अन्य स्थल पर उपन्यासकार ने इस नव जागृत चेतना की अनुभूति को दर्शाते हुए लिखा है -

"इज्जत तो सबकी एक ही है बाबू। चाहे चमार की हो चाहे ठाकुर की। हम आपका काम करते हैं, मजूरी लेते हैं। हमें गरज है कि करते हैं आपको गरज है कि कराते हो। इसका मतलब ई थोड़े हो गया कि हम आपके गुलाम हो गये"।[2]

समय परिवर्तन वयस्क मताधिकार का ही यह प्रतिफल है कि आज समाज का हरिजन वर्ग जागरूक हो गया है। साथ ही ग्रामीण जनता समाजवादी व्यवस्था के लक्ष्यों को पूर्णरूप से प्राप्त करने के लिए समता एवं मानवता के सिद्धान्तों के आधार पर एक नवीन समाज की संरचना के लिए जागरूक हो चुकी है। हिन्दी के आँचलिक उपन्यासकारो ने ग्रामीण जनता के मनोभावों को भली भाँति अपने साहित्य में मुखरित किया है। भारतीय ग्रामीण समाज में लड़कियों को विशेष सम्मान प्राप्त नहीं था उन्हे माता पिता न तो पढ़ाते लिखाते थे और न ही विवाह करते समय वर तथा वधू की उम्र का ही ख्याल करते थे। 12 वर्ष की लड़की का विवाह 40- 45 साल की उम्र के अधेड़ से कर देते थे।

1- शिव प्रसाद सिंह - अलग-अलग वैतरणी" पृ0 सं0 602।

2- शिव प्रसाद सिंह -"अलग-अलग वैतरणी" पृ0 सं0 257 ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय जनता एवं सरकार के ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज ग्रामीण लड़कियाँ विद्यालयों में विद्या-अध्ययन करने एवं ग्रामों से शहरो में जाकर उच्च शिक्षा भी अर्जित करने लगी हैं। इनके हृदय में भी नवचेतना उद्बुद्ध हो रही है।

बिहार अँचल की मलारी एवं कछार अंचल की संध्या ऐसी ही ग्रामीण लड़कियाँ हैं जो शिक्षा प्राप्त करने केलिए ग्रामों से शहर जाती है और पुनः गाँव में आकर समाज सेविका का कार्य करती हैं।

"वरूणा के बेटे" उपन्यास की माधुरी भी ऐसी नारी है जो समाजवादी भावना से उद्बुद्ध है। वह छद्म नैतिकताओं से लड़ सकती है या फिर अपने मजदूर समाज के हितों की सुरक्षा हेतु होम तक हो सकती है। माधुरी में नवचेतना के दर्शन उस वक्त विशेष रूप से दिखायी पड़ते हैं जब वह जेल जाती है उपन्यासकार ने लिखा है -

"बाँये हाथ से उसने ऊपर लटकती हुई जंजीर को थाम लिया और दहिना हाथ घुमा-घुमा कर नारे लगाने लगी। लोग दुगने चौगुने जोश में जवाबी नारे देने लगे।
"इन्किलाब जिन्दाबाद"।
" मछुआ संघ जिंदाबाद .... हक की लड़ाई -जीतेंगे।, जीतेंगे .... ।
गढ़पोखर हमारा है, हमारा है "।[1]

---

1. नागार्जुन -'वरूणा के बेटे' पृ॰स॰ 130 ।

नारी जाति आज राजनीति के क्षेत्र में भी जागरूक हो रही है इसी जागरूकता के दर्शन माधुरी में देखने को मिलते है।
उपन्यासकार के शब्दों में -

"सम्बोधन में कई लोगों से कई बार माधुरी माधुरी सुनकर साहब ने माधुरी से कहा, मोहन माँझी ने आखिर तुम्हें भी कम्युनिज्म पाठ पढ़ा ही दिया । अच्छा तो है । ......

राजनीति ही तो एक चीज थी जिसे गाँवो की हमारी बहू बेटियों ने अब तक अपने पास फटकने नहीं दिया था, लेकिन तुम तो देखता हूँ .... "।

इसमें संदेह नहीं कि माधुरी में आधुनिक कृषक नारी का बिम्ब अपने प्रमाणिक अस्तित्व के साथ है । "डॉ० रमेश कुन्तल मेघ को उसकी इसी सराहना के लिए उसे झांसी की रानी से आगे रखना पड़ा है । शायद इसी लिये कि उसका संघर्ष झांसी की रानी के संघर्ष से अधिक यतनामय है ।"

"धरती परिकथा" की मलारी के स्वरों में ग्रामीण समाज की स्त्रियों की नवजागृत चेतना के स्वर काफी हद तक उभर कर, समाज के समक्ष आये हैं । एक ओर जहाँ उसने जीवन बीमा करके नवचेतना का परिचय दिया है वहीं दूसरी ओर सुवंश बाबू के साथ अन्तरजातीय विवाह करके क्रान्तिकारी विचार धारा का ग्रामीण समाज की असहाय विधवा स्त्रियों के लिए उदाहरण

1- नागार्जुन- "बलचनमा के बेटे" पृ० सं० 126 ।
2- अनुवीर अरोड़ा- " आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास"

प्रस्तुत किया, साथ ही ग्राम सेविका के रूप में भी वह उपन्यास में दिखायी गयी है। मलारी स्वयं अपने विषय में बताती है -

" मैने जीवन बीमा करवाया है। सुवंश बाबू बीमा कंपनी के एजेंट है। अररिया कोठ की डाक्टरनी के यहाँ तंदुरूस्ती की जाँच कराने गयी थी। सुवंश बाबू ने मेरा जीवन बीमा किया है।"[1]

इसी उपन्यास में एक स्थल पर मलारी गाँव के स्कूल की गर्लगाइड की लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती हुई दृष्टिगोचर होती है उपन्यासकार "रेणु जी ने लिखा है -

" बाहर आकर बोली- गाँवमें अठारह पार्टी है और रोज अठारह किसिम का प्रस्ताव पास होता है। हमारे स्कूल में भी प्रस्ताव पास हुआ है। आज हैडमिस्ट्रेस ने नोटिस दिया है गर्लगाइड की लड़कियाँ रात में हवेली में तैनात रहेंगी। मलारी ने आँगन से निकलने के पहले कहा रात में गांव के कुछ बाबुओं ने हर टोले में कुछ हरकत की है आज गर्लगाइड की डियूटी रहेगी "।[2]

ग्रामीण समाज में विधवा स्त्री को सबसे अधिक जहालत का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उसे ग्रामीण समाज तिरस्कृत और अपमानित करने से बाज नही आता। किन्तु मलारी ने सुवंश बाबू से विवाह करके मानों ग्रामीण समाज के उन लोगों पर तमाचा मारा है जो स्त्री को अपने पैर की जूती समझते है साथ ही ग्रामीण विधवा स्त्रियों के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया

1- फणीश्वर नाथ"रेणु"-"परती परिकथा" पृ० सं० 206 ।

2- फणीश्वर नाथ "रेणु"- परती परिकथा" पृ० सं० 209 ।

है कि वैधव्य के इस नरकीय जीवन से तब तक तुम नहीं निकल सकती जब तक तुम्हारे अन्दर छिपी हुई चेतना जागृत नहीं होगी । मलारी के इस अन्तरजातीय विवाह सम्बन्धी क्रान्तिकारी कार्य से गाँवपर लोगों की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

" ...क्रान्तिकारी विवाह । लोगों ने सुना कि सुवंश लाल और मलारी ने रजिस्ट्री करके विवाह का पक्का कागज बनवा लिया है कि बड़े बड़े लीडर और मनिस्टर लोग इस शादी के बराती थे, कि मिनिस्टर साहब ने अपनी ओर से दान दहेज दिया है सुवंश को और तिलक में नगद रुपया के अलावा पढ़ाई खर्च । ..... अब कौन क्या बोल सकता है "।[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ग्रामीण समाज मे धीरे- धीरे परिवर्तन दिखाई पड़ता है।गांव के नवयुवकगण समाज के विरोधों का सामना करते हुए जिस प्रकार विधवा स्त्री से विवाह करते है उससे उनमें जागृत नवचेतना का परिचय मिलता है । 'पानी के प्राचीर' उपन्यास का बैजू विधवा बिंदिया को अपनी पत्नी के रूपमें स्वीकार करता है उसकी सराहना करते हुए मीरू गाँव वालों को जो उत्तर देता है उससे गांव के नवयुवकों की नयी विचार धारा का परिचय मिलता है । उपन्यासकार के शब्दो में -

"मीरू बोला - मैं जानता हूँ बैजू ने एक ऐसा काम किया है जो आप लोगों के दिलों को धक्का मार रहा[illegible] है तो सोचता हूँ कि उसे

दर दर ठोकरें खाती हुई एक असहाय अबला को सहारा दिया है । असहाय अबला दुनिया भर की उपेक्षा की शिकार होती है उसे सहारा देकर बैजू ने जो मरदई की है उसके लिए वह बधाई का पात्र है। मैं जानता हूँ कि असहाय अबलाओं को छिपे छिपाए अपनी वासना के होठों से चूस कर फेंक देने वाले अपने कुकर्मों का पर्दाफाश करने वाले भ्रूणों की हत्याएं करने वाले हमारे भीतर भरे पड़े हैं लेकिन साहस के साथ दुनियाँ की झूठी बदनामी की परवाह किए बिना एक नारी का हाथ पकड़ना और उसकी संतान को अपनी संतान के रूप में स्वीकारना बहुत बड़े पुरूषार्थ का कार्य है। बैजू ने आज पवित्र कार्य किया है। मैं उसे बधाई देता हूँ "।[1]

ग्रामीण समाज में हरिजन महिलाओं की आपसी कहा सुनी से भी उनमें जागृत चेतना के दर्शन होते है । 'आधा गाँव' उपन्यास में (चमार) परसराम की बीबी के विषय में उपन्यासकार ने लिखा है -

" हुआ यह कि एक दिन परसराम की बीबी (रमदेइया) हम्माद मियाँ के घर गयी उसने नफीस साड़ियाँ पहनना सीख लिया था । उसके जिस्म पर बड़े नाजुक खूबसूरत कीमती जेवर थे । .... वह अन्दर गयी और पलंग पर बैठ गयी। कुबरा को इस चमारिन का पलंग पर बैठना बहुत बुरा लगा । उन्होंने तड़सड़ा दिया । वह भी कहाँ चुप रहने वाली थी। आखिर वह भी एम. एल. ए- की बीबी थी उसने भी कुबरा को खरी-खरी सुना दी " अबहूँ तक आप लोगन का दिमाग ठीक न भवा "।[2]

1- राम दरश मिश्र - "पानी के प्राचीर" पृ0 सं0 278 ।

2- राही मासूम रज़ा - "आधा गाँव" पृ0 सं0 354 ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त सरकार द्वारा जमींदारी प्रथा समाप्त करने के परिणाम स्वरूप आज ग्रामीण समाज में न केवल युवकों में बल्कि युवतियों में भी नव चेतना पनपती हुई दिखाई पड़ती है। "लोक परलोक" उपन्यास में जमींदार मंगनीराम बोहरे की धर्म पत्नी मेहतरानी को किसी बात पर डाँट देती है तो मेहतरानी उत्तर देती हुई कहती है -

"देखो जी काम करते है कैसे लेते तुमारी ऐसान नाएं। कभी होय, तौ बेर गरज परे तो काम कराओ चाहें मति कराओ हम चले। ....नीच होगे तुम जो मुफ्त का ब्याज खातो, और भीख माँगतौ हम भ्रायें अब नीच "।[1]

युवकों मे नवजागृत चेतना का परिचय हमें नागार्जुन के उपन्यास नई पौध में दृष्टव्य होता है। नागार्जुन ने इस उपन्यास में बिसेसरी का विवाह उसके पिता द्वारा चुने गये अनमेल वर के स्थान पर ग्रामीण नवयुवकों द्वारा चुने गये वर वाचस्पति से कराकर अनमेल विवाह की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है "।[2]

'नयी पौध' उपन्यास के सम्बन्ध में सुषमा धवन ने अपनी पुस्तक हिन्दी उपन्यास में लिखा है -

नई पौध में अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर उसका नूतन ढंग से निरूपण किया गया है। देहात के कुछ नवयुवक की नवीन चेतना के

1- उदय शंकर भट्ट - "लोक परलोक" पृ० सं० 109।
2- नागार्जुन - "नई पौध" पृ० सं०[illegible]।

प्रतिनिधि है, इस उपन्यास के प्रतिसशक्त विद्रोह करते है और अपने प्रयास में सफल होकर लेखक के प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देते है ।"[1]

ग्रामीण जनता के परम्परागत जन्म, जाति, लिंग सम्बन्धी विषमता के दृष्टिकोण में समानता की धारणा स्थान प्राप्त कर रही है जो भारतीय ग्रामीण जन समाज के प्रगति पथ पर अग्रसर होने की परिचायक है ।

हमारे ग्रामीण जन जीवन में जो द्रुतगति परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं, जिन्होने हमारे सहित्यकारों के चिन्तन की नवीन दिशाएं एवं लेखन के लिए नवीन विषय वस्तु प्रदान की है उनमें वैज्ञानिक माध्यमों का प्रमुख स्थान है। राष्ट्रीयभाव धारा एवं तत्कालीन युग बोध से ग्रामों को परिचित रखने वाला माध्यम विज्ञान है। विज्ञान की सहायता से संचार साधनों की पहुँच अब गाँव तक हो गयी है । आज टेलीफोन, तार रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, टेलीप्रिन्टर, जहाज़ ट्रैक्टर, अखबार आदि गाँव की जनता में जागरूकता लाने में विशेष सहयोग दे रहे है। "ब्रह्मपुत्र "आँचलिक उपन्यास में स्वाधीनता संघर्ष के समय ग्रामीण जनता निरन्तर अपने आपको राजनीतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक रखती है उपन्यासकार ने ग्रामीणों की बातचीत के माध्यम् से इस बात को अभिव्यक्त किया है । देवेन्द्र सत्यार्थी जी ने लिखा है -

कोई कहता" बता फिरंगी पट्ठे अब बोल अपने इस बापू के सामने । कोई कहता फिरंगी का दावा था, वह अजेय है । आया था हमारी सहायता को हमारा घर बार संभाल बैठा, हमें उल्लू बनाकर कोई कहता जिसका आरम्भ है उसका अन्त भी , अब नही टिक सकता फिरंगी "।[1]

यह पारस्परिक बात-चीत ग्रामीणों की समसामयिक नयी जागरूकता के परिचय के साथ-साथ यह भी बताती है कि वे राष्ट्रीय हित और अहित को उसी संदर्भ में सोचते हैं, जैसा सारा देश सोचता है। "अलग-अलग" बैतरणी" आँचलिक उपन्यास में उपन्यासकार ने नवयुवक जगेसर को ट्रांजिस्टर के माध्यम से मनोरंजन करते हुए दर्शाया है। उपन्यासकार ने लिखा है -

" धूप में पुआल पर बैठा जगेसर ट्रांजिस्टर से गाने सुन रहा था। वह रह रह कर गाने के साथ सीटी बजा बजाकर गर्दन हिलाता जाता । यह नया अंदाज उसने हेडकांस्टेबिल शोभा राम से सीखा था । उसे इस बात का बड़ा गर्व था कि वह एक सांस में सिटकारी पर पूरी पांत निबाह ले जाता है "।[2]

'परती परिकथा' आँचलिक उपन्यास के परानपुर गाँव में परती धरती पर हल बैल के स्थान पर विज्ञान के आधुनिक उपकरण ट्रैक्टर का प्रयोग करके फसल उगाने की कामना करते हुए ग्रामीण किसान दृष्टिगोचर

1- देवेन्द्र सत्यार्थी -"ब्रह्मपुत्र " पृ० सं० 381 ।

2- शिव प्रसाद सिंह- "अलग -अलग वैतरणी" पृ० सं० 358 ।

होते है। 'रेणु'जी ने लिखा है -

गाँव के लोग धरती पर बोई जाने वाली फसलों की कल्पना करते है। टुट्ठी पाँखर से लेकर सेमल बनी तक नयी जाति का पाट। ठुट्ठी पाखर से उत्तर मकई और बाजरे की खेती। पुलक उठते हैं बेजमीन लोग। सर्वे में भी जिन्हे एक धुर जमीन नही हासिल हुई उन्हे भी जमीन मिलेगी बिना किसी झंझट के। ढाई रूपया रोज मजदूरी। जो ट्रैक्टर चलाना सीखना चाहे अभी से नाम लिखाये, निगरानी कमेटी में "।[1]

"परती परिकथा" का जितेन्द्र नव चेतना सेउद्बुद्ध है। जितेन्द्र जायगा आपरेशन पार्टी में ट्रैक्टर लेकर। ये लोग डी०वी०सी० मे काम कर चुके, पहाड़ी पथरीली जमीन पर। उपन्यासकार ने एक स्थल पर इस वैज्ञानिक उपकरण का वर्णन करते हुए लिखाहै -

" एक दो तीन .....कुल डोजर। क्रॉलर्स एंगल्डोज़र्स और दो न जाने कौन सी मशीने जिनके पिछले दो पहिये धतूरे के बीज केबड़े बड़े संस्करण। जमीन को छलनी बना देगी सतर-सतर उधेड़ देगी। गाँव के अधिकांश लोग तमाशा देखने आए हैं।"[2]

मानसिकता की छाप हमें यहाँ अवश्य मिलती है ।

आज भारतीय ग्रामीण समाज अपने हक को अच्छी तरह पहचान चुका है।समाजवादी जन चेतना का उदय ग्रामीण जन मानस में फैल रहाहै । 'बलचनमा' आँचलिक उपन्यास में इस समाजवादी चेतना के दर्शन बलचनमा में दृष्टिगोचर होते हैं । जमींदारों की कठोर यातनाएं उसने भोगी है । आजादी के विषय में सोचता हुआ बलचनमा आखिर गुत्थी का समाधान कर ही लेता है । वह कहता है -

" लोगों को जब विश्वास हो जायगा कि जमींदार महाजन की फाजिल धन-सम्पदा उन्हीं में बंट जायगी रोजी रोटी का सवाल हल होगा, बच्चों की पढ़ाई लिखाई ...... बुढ़ापे की बेफिक्री, ... खान पान और रहन सहन का और ठिकाना... दवादारू, पथ पानी का इन्तजाम....... यह सब सभी के लिए सुलभ होगा । दरभंगा के महाराज हों, चाहे पटना के लाटसाहब मुफ्त का खाना किसी को नहीं मिलेगा । सब काम करेगा सब दाम पायेगा........ लूल, अपंग, बूढ़ बेकार सबकी जिम्मेवारी सरकार को उठानी पड़ेगी, पैसे केवल पर कोई किसी के बंधुआ गुलाम नहीं बना सकेगा ।"[1]

बलचनमा के विभिन्न कृत्य समाज परक है एक अन्य स्थल पर अपने हक के लिए घूस बाबू से लड़ना भी आवश्यक मानता हुआ वह कहता है -

" बनिहार, कुली, मजूर, और बहिया खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा"।[2]

1- नागार्जुन -"बलचनमा" पृ० सं० १६८ ।
2- नागार्जुन - "बलचनमा" पृ० सं० ११ ।

"वरुण के बेटे" आँचलिक उपन्यास में समाजवादी चेतना का उभरता रूप प्राप्त है । मलाही ग्राम मानों जमींदारों और माँझियों के संघर्ष का स्थल बन गया है। गढ़पोखर के स्वामित्व की दावेदारी को लेकर गाँव जाग उठता है/नव जागृत चेतना से उद्बुद्ध मोहन माझी उनका नेता है। संघर्ष की तीव्रता में उसके प्रयत्न अनन्य हैं। उसके स्वर के साथ ग्रामीण जनता का स्वर जुड़ गया था कि -

"छोडा नहीं जाए । गढ़पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है । जमींदार जमकर लेता था, हम देते थे । नया खरीदार दूसरे तीसरे गाँव के मछुओं को मछली निकालने का ठेका देता चलेगा और हम पुश्तैनी अधिकार से वंचित होकर रूलते फिरेंगे भला यह भी क्या मानने की बात है "।[1]

गाँव की जनता को सचेत कर जगाने का श्रेय मोहन माँझी को ही जाता है । उसने किसान प्रतिनिधियों का वार्षिक सम्मेलन बुलाया । पचास गांवो के किसान और खेतिहर मजदूरों ने उसमें भाग लिया, प्रस्ताव में गढ़पोखर के तथाकथित मालिकों और भावी ससधरा के जमींदारो को आगाह करते हुए कहा गया कि -

" वे युग की आवाज को अनसुनी न करें । मलाही गोढ़ियारी के मछुओं को गढ़पोखर से मछलियाँ निकालने के पुश्तैनी हकों से वंचित करने की उनकी कोई भी साजिश कामयाब नहीं होगी । रोजी रोटी के अपने साधनों की रक्षा के लिए संघर्ष करने वाले मजदूर असहाय नहीं हैं। उन्हें आम किसानों

1- नागार्जुन - "वरुण के बेटे" पृ० सं० ३५ ।

और खेत मजदूरों का सक्रिय समर्थन प्राप्त होगा "।[1]

गाँव का दलित वर्ग अब जाग रहा है ये युग की आवाज जन चेतना की आवाज है। लोग अब संघर्ष के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं । ग्रामीण जनता के मन में जमींदारों के विरोध-स्वरूप विद्रोह की आंधी चल रही है तथा मस्तिष्क में शोषण का प्रतिकार। 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में खेतिहार मजदूरों मे यह विद्रोह वृत्ति पारिश्रमिक के फलस्वरूप है। ठाकुर जगजीत सिंह की मार सहकर झिनकू साफ-साफ कहता है -

"और मारो बाबू । और मारो । मार के जान ले लो लेकिनहम एक बार नहीं सौ बार कह रहे हैं । हम बिना रोजिना बोन्नी के काम नहीं करेंगे । धरती खेत लेकर हमका ओम्मा अपनी कब्बर बनाएंगे ? हमारे छोटे-छोटे लड़िका चार दिन से भूखे सोए रहे हैं। हमसे अइसा काम नहीं होगा"।[2]

कितनी असहाय वेदना है जिसने बेचारे झिनकू को मार और विद्रोह के लिए तैयार किया मन ही मन उसने अपने लड़के पुरबिनवा को भी इसकी नौकरी से निकाल लेने का निश्चय किया-

"इन लोगो से अब कोई मतलब नहीं । जो लिखा होगा करम में भोगेंगे । ऐसे निर्दयी लोगों की बेगारी नही करेंगे "।[3]

'धरती धरिकथा' आँचलिक उपन्यास का जितेन्द्र नवजागृत चेतना के माध्यम से कुलों की राजनीति का भंडाफोड़ करता हुआ एवं वास्तविकता

1- नागार्जुन - "बलचनमा के बेटे" पृ० सं० 210 ।
2- शिव प्रसाद सिंह- "अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 240 ।
3- शिव प्रसाद सिंह- "अलग-अलग वैतरणी" पृ० सं० 242 ।

से परिचय कराता हुआ ग्रामीण जनसमूह से कहता है -

.... मुझे ऐसा लगता है कि जानबूझ कर ही आपको अंधकार में रखा जाता है । क्योंकि आपकी दिलचस्पी से उन्हें खतरा है ।..... इन कामों से आपका लगाव होते ही नौकरशाहों की मनमानी नहीं चलेगी । एक कप चाय पीने के लिए दो गैलन तेल जलाकर वे शहर नहीं जा सकेंगे । सीमेन्ट की चोर बाजारी नहीं कर सकेंगे एक दिन में होने वाले काम में एक महीने की देरी नहीं लगा सकेंगे । नदियों पर बिना पुल बनवाये ही कागज पर पुल बनाकर बाद में बाढ़ से पुल के बह जाने की रिपोर्ट वे नहीं दे सकेंगे "।[1]

उपरोक्त कथन में जित्तन के प्रगतिशील व्यक्तित्व एवं नव चेतना की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ती है ।

परानपुर गाँव में परती धरती को उपजाऊ बनने के लिए जित्तन बाबू ने नये उपकरणों को अपनाया है -

" नया ट्रैक्टर खरीदा हुआ है । बटाई करने वाले किसानों को जमीन से बेदखल किये बिना फार्म बनाना असम्भव है। दुलारी दाय जमा की जमीनो में पाठ और भदई धान की खेती करने के लिए रोज निकलते हैं जित्तन बाबू । ट्रैक्टर पर सवार, आखों पर धूप छाँही चश्मा तथा सिर पर ताड़ की पत्तियों का बड़ा कनटोप" ।[2]

जहाँ कृषक, मजदूर एवं जमींदार खुलकर आमने सामने खड़े हो जाते हैं। लेकिन स्थिति ऐसी बन गयी है कि मजदूर दिनोंदिन गिरता जा रहा है। अतः उसका उठना स्वाभाविक है। गाँव में किसान मजदूरों का संगठन डॉ० रहमान के नेतृत्व में बनता है। मजदूर अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे हैं इसका स्वर एक अन्य स्थल पर दृष्टव्य है अब वह जमींदार की धरती नहीं मानते क्योंकि -

"धरती किसकी, जोते बोये उसकी किसानकी आजादी आसमान से उतर कर नही आयेगी वो परगट होगी नीचे जुते धरती के भुरभुरे ढेलों को फोड़कर"।[1]

"वरुण के बेटे" आँचलिक उपन्यास के मलाही गाँव में यह भाव क्रान्ति बड़े ही उग्र रूप में चित्रित हुई है। जमींदार द्वारा चुपके चुपके गरोखर पोखर को बेचने की बात को लेकर वहाँ का मछुआ वर्ग मोहन माँझी के नेतृत्व में उठ खड़ा हुआ। मछुआ संघ की स्थापना होती है। जमींदार और पुलिस में संघर्ष होता है।

की स्थापना हुई है।

नागार्जुन ने अपने आँचलिक उपन्यास" बाबा बटेसर नाथ" में किसान सभा के संगठन का वर्णन करते हुए लिखा है –

" जीवनाथ अब अपने इलाके का किसान लीडर हो चला था। आसपास के पच्चीस गाँवों में घूमघूमकर किसान सभा के 1200 मेम्बर उसने बना लिये थे। नौ ग्राम कमेटियाँ चालू करा दी थी। अनेक प्रकार की सामाजिक और प्राकृतिक विपत्तियों से ग्रस्त मौजूदा शासन व्यवस्था की विषमताओं से तबाह, तीस चालीस गाँवों का वह परोपट्टा [परगना] इन किसान संगठनों की तरफ भरोसे की निगाहों से देखने लगा।"[1]

" सागर लहरें और मनुष्य" आँचलिक उपन्यास में मछली मारों की सुविधाओं को ध्यान में रखने के लिए सहकार समिति की स्थापना की गयी। उपन्यासकार के शब्दों में –

"इन्हीं दिनों बरसोवा में मछलीमार सहकार समिति की स्थापना हुई। लोग सदस्य चुने गये। चंदा करके एक ट्रक खरीदने का प्रश्न आया। हिसाब रखने के लिए रुक्कोजी को मंत्री बनाया गया। ......

हमें सभी उपाय करना चाहिए कि हम दो सौ चार सौ मील तक समुद्र में जा सकें और ढेर की ढेर मछलियों से देश की और अपनी गरीबी दूर कर सकें

राजनीति के क्षेत्र में नव जागृत चेतना के दर्शन हमें विभिन्न आँचलिक उपन्यासों में दृष्टिगोचर होते हैं ।

'पानी के प्राचीर' उपन्यास में यह नव जागृत चेतना हरिजन नेता फेकू के विचारों में दृष्टिगत होते हैं। उपन्यासकार के शब्दो में -

"हरिजन भाइयों अब फिर गान्धी जी नेहरू जी जाग उठे हैं अब सुराज मिलने ही वाला है। जाग जाओ आप लोग भी । जमींदारों का जुलुम अब मत बर्दाश्त करो । गान्धी जी कहते हैं कि सुराज मिलने पर हरिजनों का राज होगा वे कहते हैं कि सब हरिजन भाइयों एक होकर जमींदारों के जुलुम का मुकाबिला करो । बोलो गान्धी जी की जै । नेहरू जी की जै । भारत माता की जै "।[1]

'बलचनमा' आँचलिक उपन्यास में जमींदारों के प्रति विद्रोह की भावना के माध्यम से नवचेतना के स्वर को उपन्यासकार ने मुखरित किया है। उपन्यासके शब्दों में -

" उस राक्षस को [छोटे मालिक को] ललकारते हुए मै बोल उठा- बेशक । मैं गरीब हूँ । तेरे पास अपारसम्पदा है, कुल है, बापदादे का नाम है, अड़ोस पड़ोस की पहचान है, जिस बजार में मान है और मेरे पास कुछ नहीं । मगर आखिरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा । अपनी सारी ताकत को तेरे विरोध में लगा दूँगा । मां और बहन को जहर दे दूंगा . लेकिन उन्हें तू अपनी

"अलग-अलग वैतरणी" आँचलिक उपन्यास का विपिन भी यद्यपि जमींदार का बेटा है फिर भी नवचेतना के स्वर उसमें भी उद्बुद्ध होते हुए उपन्यासकार ने दिखाये हैं। उपन्यासकार के शब्दों में -

"मेरे दरवाजे पर तोआप इनको गिरफ्तार नहीं ही कर सकते थानेदार साहब। और उधर गली वली में किया भी तो मैं आपको बिना अदालत दिखाये छोडूंगा नहीं। जमाना बदल गया। मगर आप लोगों का रवैया नहीं बदला। दस आदमी यहाँ बैठे है। आप पूछते है कि क्या हुआ क्या नहीं ? बस आपने आते ही आते "गवर्नमेन्ट का आदमी" "सरकार का आदमी" जपना शुरू कर दिया औरसहकीकाम पूरी हो गयी।"[1]

'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास में गाव के लोगों में नव जागृत चेतना का मानों मंत्र फूंकता हुआ कालीचरन कहता है -

"जमीन किसकी- जोतने वालो की। जो जोतेगा वह बोयेगा, जो बोयेगा वह काटेगा। कमाने वाला खायेगा इसके चलते जो कुछ हो "।[2]

नवचेतना का ही परिणाम है कि गाँव के युवकों में गाँव की उन्नति करने का विचार पनपता है। प्रगतिशीलता का भाव बलदेव के उपरोक्त कथन में दृष्टव्य है -

" ... बलदेव अपने गाँव मे चले आओ। हमकहे कि चौधरी की

1- शिव प्रसाद सिंह - [illegible] वैतरणी" पृ० सं० 371।

2- फणीश्वर नाथ रेणु - मैला आँचल " पृ० सं० 125।

आप हमारा गुरु हैं आपका वचन हम नहीं काट सकते । लेकिन अपना गाँव तो उन्नति कर गया है। जो गाँव उन्नति नहीं किया है हम वहीं सेवा करेंगे । .... हम मेरीगंज को चन्नन पट्टी की तरह बनाना चाहते है "।[1]

इसी प्रकार डॉ० प्रशान्त ममता से कहता है -

ममता ! ... मैं काम शुरू करूँगा यहीं इसी गाँव में । मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ । आँसू से भीगी धरती पर प्यार के पौधे लहलहायेंगे ..... मैं साधना करूँगा । ग्राम वासनी भारत माता के मैले आँचल तले । कम से कम गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये ओठों पर मुस्कुराहट लौटा सकूँ उनके हृदय में आशा विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ ....[2] ।

पूर्णिया जिले के मेरीगंज ग्राम में भारत सरकार के नियोजन द्वारा नवीन चेतना पूर्ण जागृति आयी है । इस अँचल पर लिखे गये "मैला आँचल" आँचलिक उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ० रामगोपाल सिंह ने अपनी पुस्तक "आधुनिक हिन्दी उपन्यास"में लिखा है -

"देश की आजादी मिलने के बाद नई चेतना की लहर भी गाँव में प्रवेश कर रही है । नई विकास योजनाओं का प्रचार आरम्भ हो गया है । गाँव वासियों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए सरकारी मलेरिया सेन्टर स्थापित हो गया है, उसमें उत्साही देशभक्त नवयुवक डॉ० प्रशान्त

नियुक्त हो गया है "।[1]

इसी अंचल पर आधारित "परती परिकथा" का जितेन्द्र गाँव की जनता को नवीन चेतना के माध्यम से आवाहन करता हुआ कहता है " .... प्रीति बन्धन के खोए हुए सूत्र को खोजकर निकालना होगा। नहीं तो इस सार्वभौम रिक्तता से मुक्ति की कोई आशा नहीं "।[2]

डॉ० ब्रजभूषण सिंह आदर्श ने अपनी पुस्तक- हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन में "परती परिकथा" को पुनर्निर्माण का उपन्यास कहते हुए लिखा है -

"रेणु के दूसरे बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास 'परती परिकथा" को हम स्थूल रूप में पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कह सकते हैं .... लेखक ग्राम सुधार एवं विकास योजनाएं, जमींदारी उन्मूलन, लैंडसर्वे आपरेशन, कोसी योजना आदि समसामयिक घटनाओं से परिचित कराता चलता है "।[3]

इस प्रकार उपरोक्त विभिन्न आँचलिक उपन्यासों में दर्शाये गये नव चेतना के तत्वों के आधार पर यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि अब गाँव दीनता का दास नहीं है किसान जाग रहे हैं। उनके ऊपर जो जमींदारों साहूकारों एवं अन्य बड़े लोगों का दबाव या प्रभाव था अब धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है अब का ग्रामीण समाज अपनी शक्ति पहचानने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगा है। उनमें नवचेतना के स्वर मुखरित हो रहे हैं।

1- डॉ० राम गोपाल सिंह चौहान- आधुनिक हिन्दी उपन्यास"पृ०सं० 223।
2- फणीश्वर नाथ "रेणु"- परती परिकथा- पृ० सं० [illegible]।
3- डॉ० ब्रजभूषण सिंह आदर्श - हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन पृ० सं० 450।

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थ

फणीश्वर नाथ रेणु	मैला आँचल (1954)
फणीश्वर नाथ रेणु	परती: परिकथा (1957)
फणीश्वर नाथ रेणु	कलंक मुक्ति (1986)
रांगेय राघव	कब तक पुकारूँ (1958)
राही मासूम	आधा गाँव (1966)
नागार्जुन	वरुण के बेटे
नागार्जुन	बलचनमा (1952)
नागार्जुन	रतिनाथ की चाची (1949)
श्री लाल शुक्ल	रागदरबारी
यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र"	दिया जला दिया बुझा
नागार्जुन	नई पौध (1969)
नागार्जुन	बाबा बटेसर नाथ (1960)
शिव प्रसाद मिश्र "रूद्र"	बहती गंगा
अमृत लाल नागर	बूंद और समुद्र 1955
	सागर लहरें और मनुष्य 1956
	लोक परलोक
	अलग-अलग बैतरणी 1967
	दूध गाछ

राजेन्द्र अवस्थी	जंगल के फूल
राजेन्द्र अवस्थी	सूरज किरण की छाँव
बलभद्र ठाकुर	नेपाल की वो बेटी
बलभद्र ठाकुर	मुक्तावली
रामदरश मिश्र	पानी के प्राचीर {1962}
रामदरश मिश्र	जल टूटता हुआ
देवेन्द्र सत्यार्थी	ब्रह्मपुत्र {1956}
सच्चिदानंद धूमकेतु	माटी की महक {1969}
विवेकी राय	लोक ऋण {1977}
मार्कण्डेय	अग्नि बीज{1981}
डा0 मृत्युंजय उपाध्याय	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास
डा0 सुरेश सिन्हा	हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास
श्री शिव बी सिंह	भट्ट जी का आँचलिक उपन्यास
सुखदेव शुक्ल	हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता
भगवती प्रसाद शुक्ल	आँचलिकता से आधुनिक बोध
देवराज उपाध्याय	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान
	स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास
	फणीश्वर नाथ रेणु की उपन्यास कला
	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा

उषा डोंगरा	हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श
विमल शंकर नागर	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ
विमलेश कान्ति वर्मा	भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य में लोकतत्व
त्रिभुवन सिंह	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद
शिवनारायण श्रीवास्तव	हिन्दी उपन्यास✓
प्रकाश चन्द्र मिश्र	अमृत लाल नागर का उपन्यास साहित्य
समसामयिक हिन्दी साहित्य	सम्पादक डॉ 0बच्चन, नगेन्द्र एवं भारत भूषण अग्रवाल
साहित्य कोश 1958 ई	प्रथम संस्करण
जनपद	12 अक्टूबर 1952
सम्मेलन पत्रिका-	लोक संस्कृति विशेषांक चैत्र और असाढ
अंको से संयुक्त	
दिनमान	
आज-	
आलोचना	
रसवन्ती	
आलोचना उपन्यास	

सहायक ग्रन्थ

रामगोपाल सिंह चौहान	आधुनिक हिन्दी उपन्यास✓
दिनेश्वर प्रसाद	लोक साहित्य और संस्कृति
विद्याधर द्विवेदी	हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों की भाषा
गिरजा शंकर शर्मा	हिन्दी के आँचलिक उपन्यासो में आंचलिक तत्व
प्रकाश वाजपेयी	हिन्दी के आँचलिक उपन्यास
इन्द्र नाथ मादान	आज का हिन्दी उपन्यास✓
डॉ० कान्ति वर्मा	स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास
शिव प्रसाद सिंह	आँचलिकता और आधुनिक परिवेश
महेन्द्र चतुर्वेदी	हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण
भोला नाथ भ्रमर	हिन्दी साहित्य का इतिहास
ज्ञान चन्द्र गुप्त	स्वतंत्रोत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना
रमेश तिवारी	हिन्दी उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक अध्ययन
विवेकीराय	स्वतंत्रोत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम जीवन